इंगलैण्ड, अमेरिका, जापान तथा रूस के आर्थिक विकास के युग-प्रवर्तक चिन्ह

(सभी भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए)

Landmarks in Economic Development of U.K., U.S.A., Japan & U.S.S.R.

लेखक

प्रो० बी. एल. ओझा

एम. ए., एम. कॉम., आर. ई. एस.

अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय,

चित्तौड़गढ़

आदर्श प्रकाशन

जयपुर-३

प्रकाशक :
श्रादर्श प्रकाशन
चौड़ा रास्ता
जयपुर–३

प्रथम संस्करण, १९७०-७१

मूल्य : आठ रुपये पचास पैसे

मुद्रक :
देव फाइन आर्ट प्रेस
चूरूकों का रास्ता
जयपुर–३

आमुख

प्रयोगात्मक दौर से गुजर रहे भारतीय विश्वविद्यालयों के विभिन्न पाठ्यक्रमों में विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास तथा उनके आर्थिक पहलुओं के अध्ययन का महत्व बढ़ता जा रहा है जिससे भारतीय उनके अध्ययन से अपने देश के आर्थिक विकास की कठिनाइयों का समुचित हल ढूँढ़ने में सफल हो सकें।

इसी उद्देश्य से प्रेरित हो इस पुस्तक में मैंने इङ्गलैण्ड, अमेरिका, जापान तथा रूस के आर्थिक विकास के युग-प्रवर्तक चिन्हों का विस्तृत, शृंखलाबद्ध एवं तार्किक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इङ्गलैण्ड आधुनिक औद्योगिक विकास का अग्रदूत है और अमेरिका आर्थिक सम्पन्नता में सर्वोच्च है तो रूस ने २०वीं शताब्दी में द्रुत गति से औद्योगिक, राजनैतिक तथा सामाजिक क्रान्ति के एक नए युग का सूत्रपात किया है; जापान में लघु एवं बड़े उद्योगों के पारस्परिक सहयोग का अनुपम उदाहरण है। अतः इन देशों के आर्थिक विकास का अध्ययन हमें निश्चित रूप से लाभान्वित कर सकता है।

पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए मैंने नवीनतम तथ्य, आंकड़े तथा विकासोन्मुख प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। आशा है कृति विद्यार्थी-वर्ग एवं आर्थिक विकास के अध्ययन में रुचि लेने वाले पाठकों को लाभान्वित कर मेरे प्रयास को सफल बनायेगी।

मैं अपने सभी मित्रों एवं सहकर्मियों के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में मुझे अपने अमूल्य सुझाव व सहयोग देकर पुस्तक को उपयोगी बनाने में अपना सहयोग दिया है। मैं माननीय श्री के के. महर्षि, संयुक्त निदेशक, महाविद्यालय शिक्षा, राजस्थान का विशेष रूप से आभारी हूँ जो मेरी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं।

मैं पुस्तक के प्रकाशक मेसर्स आदर्श प्रकाशन व उनके श्री आनन्द मित्तल का तो आभारी हूँ ही, जिनके सौजन्य से यह संस्करण आपके हाथों में समय पर पहुँच पाया है।

सभी प्राध्यापकों, पाठकों एवं मेरे शुभ चिन्तकों से अनुरोध है कि वे यथा सम्भव अपने परिपक्व अनुभवों पर आधारित न्यायोचित सुझाव देकर आगामी संस्करण को अधिक उपयोगी बनाने में मुझे अनुग्रहीत करें।

चित्तौड़गढ़ **बन्शीलाल ओझा**

दिनांक १ जुलाई १९७० लेखक

SYLLABUS OF ECONOMICS FOR FINAL YEAR OF THREE YEARS DEGREE COURSE (ARTS) OF RAJASTHAN UNIVERSITY

U. K.

Industrial Revolution and its effects. Economic aspects of colonial expansion. Policies of Economic stabilisation during 1930. Planning for full Employment.

U. S. A.

Westward expansion. Development of rail roads and communications. Discovery and exploitation of mineral and oil resources. Great Depression. New Deal. Farm price support. Growth of the Trade Unionism. Economic planning for employment.

Japan

Development of the Japanese economy during the Meiji Restoration. Agricultural development. A few important facts about principal modern industries. Role of small scale industries. Salient features of Japanese foreign trade. Role of state in economic development. Factors causing post World War II economic expansion.

U. S. S. R.

New Economic Policy. Economic condition on the eve of the First Five Year Plan. Collectivisation. Soviet agricultural development since 1954. Problems of rapid industrialisation. Recent trends in planning and economic development.

अनुक्रम

भाग 1—इंगलैण्ड (U.K.)

भाग 2—अमेरिका (U.S.A.)

भाग 3—जापान (Japan)

भाग 4—रूस (U.S.S.R.)

भाग-1

इंगलैण्ड
के
आर्थिक विकास के
युग-प्रवर्तक-चिन्ह

अध्याय **1**

इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति और उसके प्रभाव

(Industrial Revolution in U. K. and its effects)

आज विभिन्न आर्थिक समस्याओं से त्रस्त ब्रिटेन 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रथम विश्व युद्ध तक विश्व के समस्त आर्थिक क्षितिज का सर्वाधिक जगमगाता सितारा था। 1760 से 1914 की अवधि में इङ्गलैण्ड के औद्योगिक, व्यापारिक तथा कृषि क्षेत्र में इतने व्यापक, मौलिक तथा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए कि जिनसे न केवल इङ्गलैण्ड में परम्पराओं के विरोध में नई शक्तियों, नये विचारों, नई उत्पादन पद्धतियों और आर्थिक संस्थाओं का आविर्भाव हुआ बल्कि सम्पूर्ण विश्व में औद्योगिक तथा व्यापारिक पद्धतियों में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति तथा व्यापारिक क्रान्ति के कारण विशाल साम्राज्य कायम कर उनके शोषण से सम्पन्न हो विश्व का अग्रणी देश बनने में सफल हुआ। प्रथम विश्व युद्ध, 1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी तथा द्वितीय विश्व युद्ध ने इसकी अर्थ-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर अस्त-व्यस्त कर दिया और अब इसका वैभव इतिहास की वस्तु बन कर रह गया है। युद्धोत्तर काल से अब तक उसके द्वारा अपनी अर्थ-व्यवस्था के पुनरुत्थान के प्रयत्न चालू हैं। इस तरह इङ्गलैण्ड का आर्थिक इतिहास उत्थान और पतन तथा पतन और उत्थान का उज्ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। यद्यपि ब्रिटेन अब भी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पर आधारित राष्ट्रों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है पर उसकी आर्थिक सर्वोच्चता (Supermacy) का सरताज अमेरिका ने पहन लिया है।

औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ
(Meaning of Industrial Revolution)

ब्रिटेन के आर्थिक इतिहास में 'क्रान्ति' (Revolution) शब्द का विशेष महत्व है। साधारणतया यह शब्द रक्त-रंजित विद्रोह, या विप्लव अथवा हिंसात्मक विस्फोट का संकेत करता है जिससे राजनैतिक या सामाजिक क्षेत्र में आमूल-चूल

परिवर्तन हो जाता है जैसा कि 1789 में फ्रांस की क्रान्ति तथा 1917 में रूस की क्रान्ति में हुआ। आर्थिक जगत में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रायः धीमी होती है। उसमें परिवर्तन रातों-रात सम्भव नहीं होता। इसलिए 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्षेत्र में जो मौलिक तथा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए उनसे उत्पादन की पद्धतियों, मात्रा, संगठन में आमूल-चूल परिवर्तन हो गये और आर्थिक जगत में नये युग का सूत्रपात हुआ। इसीलिए इन परिवर्तनों को क्रान्ति की संज्ञा दी गई है। क्रान्ति शब्द के प्रयोग को प्रो० ए० बिर्नी (A. Birnie) ने उचित ठहराते हुए लिखा है : "इसके अन्तर्गत परिवर्तन इतने गहरे एवं व्यापक थे, गुण एवं दोषों के अनोखे सम्मिश्रण में इतने दुख:दायी तथा भौतिक उत्थान और सामाजिक त्राण के संयोग में इतने नाटकीय थे कि उन्हें क्रान्तिकारी कहना ही उचित है।" इन परिवर्तनों के लिये 'औद्योगिक क्रान्ति' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम (Arnold Toynbee) ने अपनी पुस्तक (Lectures on the Industrial Revolution of England) में किया। वैसे ब्लान्की (Blanqui), जेवन्स, मार्क्स मिल का भी नाम लिया जाता है।

अत: 'औद्योगिक क्रान्ति' शब्द का प्रयोग शीघ्र परिवर्तनों के कारण नहीं बल्कि परिवर्तनों की मौलिकता के कारण किया जाता है जिसके फलस्वरूप ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था (Take off) गतिशील अर्थव्यवस्था में प्रवेश कर सकी। मिसेज नोवेल्स (Mrs. L. C. A. Knowles) ने भी इस कथन की पुष्टि करते हुए लिखा है : "औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग इसलिए नहीं किया जाता कि परिवर्तन की प्रक्रिया तीव्र थी वरन् इसलिये कि पूर्ण होने पर यह परिवर्तन पूर्णतया मौलिक था।"

प्रो० साउथ गेट के अनुसार "अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 19 वीं शताब्दी में ब्रिटिश उद्योगों को ऐसे महत्वपूर्ण एवं व्यापक परिवर्तनों से गुजरना पड़ा जिनके कारण इन परिवर्तनों को संयुक्त रूप में औद्योगिक क्रान्ति कहा जाने लगा।" उद्योगों में हाथ के बजाय शक्ति संचालित मशीनों से काम होने लगा तथा औद्योगिक संगठन घरों से फैक्ट्रियों में परिवर्तित हो गया।

इस तरह उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन पद्धति, संगठन तथा प्रबन्ध में जो मौलिक परिवर्तन हुए उन्हें सामूहिक रूप से औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है। इन परिवर्तनों में तीव्रता भी थी इसलिये परि-वर्तनों में मौलिकता, तीव्रता तथा व्यापकता सभी होने के कारण क्रान्ति शब्द के प्रयोग का औचित्य भी प्रकट हो जाता है। इन परिवर्तनों का प्रभाव ब्रिटेन तक ही सीमित नहीं रहा वरन् विश्व के दूसरे राष्ट्रों में भी औद्योगीकरण के नये युग की शुरूआत हुई।

औद्योगिक क्रान्ति का काल
(Period of Industrial Revolution)

विभिन्न इतिहासकारों में औद्योगिक क्रान्ति के काल के सम्बन्ध में मत-भेद है। जहां एक ओर Prof. Hef इसकी अवधि 1550 से 1890 बताते हैं तो दूसरी ओर अरनोल्ड टोयन्बी इसे 1760–70 से 1830–40, और मिसेज नोवेल्स 1770 से 1914 बताते हैं। पर अनेक अर्थशास्त्री इसे 1760 से 1914 तक स्वीकार करते हुए औद्योगिक क्रान्ति का प्रथम चरण 1760 से 1830 मानते हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के आविष्कार तथा कारखाना प्रणाली का विकास हुआ तथा द्वितीय चरण 1830 से 1914 माना जाता है जबकि औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि, विविधता, जटिलता और यातायात तथा व्यापारिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी विकास हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इङ्गलैण्ड की आर्थिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि
(Economic & Social background of England before Industrial Revolution)

आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तनों की प्रक्रिया धीमी और परिवर्तन धीरे-धीरे आते हैं पर आर्थिक क्षेत्र में ये परिवर्तन ही भावी विकास या पतन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अतः इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व आर्थिक तथा सामाजिक दशाओं का अवलोकन क्रान्ति को समझने में लाभप्रद है।

आर्थिक दशा
(Economic Condition)

(i) **कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था**—अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक इङ्गलैण्ड मुख्य रूप से कृषि प्रधान देश था। 77 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से अपना जीविकोपार्जन करती थी। कृषि के पुरातन तरीकों, खुले खेतों की पद्धति, भूमि का उपखण्डन एवं उपविभाजन, अवैज्ञानिक कृषि संगठन से कृषि पिछड़ी अवस्था में थी। सहायक धन्धे के रूप में पशुपालन का कार्य था। प्रो० मिसेज नोवेल्स के अनुसार "औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व जान बुल (John Bull) की सामान्य तस्वीर उन्हें एक उद्योग के मालिक के रूप में नहीं बल्कि एक सम्पन्न कृषक के रूप में प्रकट करती है।" घेराबन्दी आन्दोलन के अन्तर्गत 3·35 लाख एकड़ भूमि की घेराबन्दी की जा चुकी थी पर बहुत से भागों में मध्ययुगीन कृषि प्रणाली प्रचलित थी।

(ii) **उद्योग**—देश की केवल 5% जनसंख्या ही उद्योगों में संलग्न थी। लोहा-इस्पात, ऊन-सूती वस्त्र उद्योग, कोयला तथा अन्य उद्योग अपने वर्तमान रूप

में नहीं पाये जाते थे। सूती एवं ऊनी वस्त्र का उत्पादन कार्य कुटीर उद्योग के रूप में किसानों द्वारा सहायक पेशे के रूप में किया जाता था। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में लोह उद्योग, जहाज निर्माण उद्योग तथा कागज, छपाई, शीशा तथा तांबा उद्योग कुछ विकसित हो चुके थे। यार्कशायर, नारेफोक और ब्रिटेन का दक्षिणी पश्चिमी भाग उद्योगों के लिये प्रसिद्ध थे। लोह उद्योग की वार्षिक उत्पादन क्षमता 1760 में 1400 टन थी और इस क्षेत्र में प्रावधिक विकास प्रगति पर था। 1760 तक रोइ बुक कैरोन में अभिधिमन (Blast) भट्टियों का सुधरा रूप काम में आने लगा था। ऊनी उद्योग से निर्यात लगभग 30 लाख पौण्ड था। सूती वस्त्र का उत्पादन 1760 में 6 लाख पौण्ड ही था और निर्यात 2 लाख पौण्ड मूल्य का था। रेशम उद्योग जर्मन वासियों के प्रयत्नों से (Spital fields) तथा (Harwich) केन्द्रों में एक विकासोन्मुख उद्योग बन चुका था। इसके अलावा लीनन तथा होजरी उद्योग में विकसित प्रयत्नों का दौर चल रहा था। इस तरह यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि ब्रिटेन 1750 तक उद्योगों में समृद्धि तथा विविधता के लिये प्रसिद्ध हो चुका था।

(iii) **व्यापार**—औद्योगिक विकास तथा यातायात साधनों के विकास में प्रगति मन्द होने से आन्तरिक व्यापार विदेशी व्यापार की तुलना में कहीं अधिक था। व्यापार का विकास वाणिज्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित था। 1700 में कुल निर्यात 70 लाख पौण्ड था वह 1760 तक 145 लाख पौण्ड हो गया था। परिस्थितियों में परिवर्तन ने इङ्गलैण्ड का विदेशी व्यापार हालैण्ड, पुर्तगाल तथा फ्रांस जैसे यूरोपीय देशों से धीरे-धीरे घटता जा रहा था जबकि उपनिवेशों के साथ व्यापार में प्रगति हो रही थी। विदेशी व्यापार में वृद्धि ने जहाजरानी उद्योग के विकास को बढ़ावा दिया। वाणिज्यवादी नीति के कारण अनुकूल व्यापाराधिक्य की प्रवृति प्रबल थी।

(iv) **यातायात**—यातायात के साधन औद्योगिक क्रांति से पूर्व अत्यन्त अविकसित थे। सड़कों के विकास की जिम्मेदारी पैरिश अधिकारियों पर होने के कारण सड़कों की दशा दयनीय थी। स्थल यातायात खर्चीला, धीमा तथा खतरे से परिपूर्ण था। 1660 से 1760 तक आन्तरिक जलमार्गो के विकास में नदियों को गहरा करने के लिये अधिनियम पारित किये गये थे। 1755 में लिवरपूल में दस मील लम्बी नहर का निर्माण हो चुका था फिर भी कोई ठोस विकास नहीं हो पाया था। ओग एण्ड शार्प (Ogg & Sharp) के अनुसार "सड़कें केवल यात्रा के अयोग्य ही न थीं वरन् वहां चोर डाकुओं का बाहुल्य था जिससे यात्रा असुरक्षित थी।" आर्थर यंग ने भी सड़क यातायात को उस समय खर्चीला, धीमा और असुविधा जनक बताया है।

सामाजिक स्थिति
(Social Conditions)

देश की जनसंख्या 1696 में 55 लाख थी जो बढ़ कर 1760 में लगभग 90 लाख हो गई थी। देश की जनसंख्या का लगभग 77% कृषि में संलग्न था जबकि उद्योगों में कुल जनसंख्या का 5 से 8% भाग था। देश की 70% जनसंख्या गांवों में तथा 30% ही शहरों में रहती थी जबकि अब 80% जनसंख्या शहरों में और केवल 20% जनसंख्या ही गांवों में निवास करती है। समाज में दो वर्ग ही प्रमुख थे पहला उत्पादक वर्ग तथा दूसरा श्रमिक वर्ग। उत्पादन की घरेलू पद्धति (Domestic System) होने के कारण नियोजक तथा नियोजित में परस्पर सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण था। श्रमिक संघों का विकास नहीं हो पाया था क्योंकि 1717 तथा 1727 के संयोग अधिनियम (Combination Laws) के अन्तर्गत उनका संगठन अवैध माना जाता था। 1701 में (Anti Truck Act) पारित होने के बावजूद भी मजदूरी वस्तुओं के रूप में चुकाने की प्रथा प्रचलित थी। मजदूरों का शोषण प्रारम्भिक अवस्था में था अत: वर्ग संघर्ष का जन्म नहीं हो पाया था। महामारियों, प्लेग तथा बीमारियों का प्रकोप प्रबल होने से मृत्यु दर अधिक थी यहां तक कि लन्दन में भी मृत्यु दर 50 व्यक्ति प्रति हजार थी। पारिवारिक व्यवस्था मजबूत थी जिससे श्रम की गतिशीलता पर बुरा प्रभाव पड़ता था।

राजनैतिक स्थिति
(Political Conditions)

भूमिपतियों का ब्रिटिश संसद में प्रभुत्व था। व्यापारी, उद्योगपति तथा महाजनों को प्रतिनिधित्व प्राप्त न होने से उनके हितों की सुरक्षा कम थी। सरकार द्वारा व्यापारवादी नीति का अनुसरण किया जाने से अनुकूल व्यापाराधिक्य का प्रयत्न किया जाता था। उद्योगों तथा व्यापार के विकास में सरकार की रुचि प्रेरणा-स्पद नहीं कही जा सकती क्योंकि विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में सरकारी हस्तक्षेप का पूर्ण वैधानिक अधिकार प्राप्त होने पर भी आर्थिक प्रणाली की जटिलताओं के कारण इन विधानों को कार्यान्वित करना कठिन था। उपनिवेशों का शोषण करना सरकारी नीति का उद्देश्य था।

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन यह स्पष्ट कर देता है कि औद्योगिक क्रांति के समय इङ्गलैण्ड एक कृषि प्रधान देश होते हुए भी उद्योगों में एक विकासोन्मुख देश बन गया था। व्यापारिक दृष्टि से यूरोपीय देशों के साथ व्यापार में कमी की प्रवृति होने पर भी विदेशी उपनिवेशों से व्यापार में लगातार वृद्धि हो रही थी। 50 वर्षों में ही व्यापार (निर्यात, दुगना हो गया था। विदेशी सामुद्रिक व्यापार ने जहाज रानी उद्योग को

बढ़ावा दिया। कृषि में व्यवसायिक दृष्टिकोण तथा वाणिज्यवादी नीति से सरकार भी आर्थिक कार्यों में सतर्क लगती थी। क्रान्ति के पूर्व पूंजीवादी अर्थ तन्त्र का विकास न हो पाया था, अब भी कृषि हितों की प्रमुखता थी और कारीगर उद्योगपति तथा व्यापारिक पूंजीपति की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था। प्रो० जी० डी० एच० कोल के शब्दों में औद्योगिक क्रांति से पूर्व "इङ्गलैण्ड एक व्यापारिक दृष्टि से उन्नत तथा औद्योगिक प्रगति में प्रेरणास्पद था न कि औद्योगिक दृष्टि से उन्नत एवं व्यापारिक खोज करने वाला राष्ट्र।" इस तरह 1760 तक इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के लिये आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार हो गई थी।

इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के कारण
(Causes of Industrial Revolution in England)

किसी भी देश में औद्योगिक क्रान्ति के लिये मुख्य रूप से पाँच बातें महत्वपूर्ण हैं—(1) प्राकृतिक साधन, (2) पूंजी एवं कुशलता, (3) विस्तृत बाजार (4) औद्योगिक प्रभुत्व तथा (5) राजनैतिक शान्ति और सामाजिक सहयोग। सौभाग्य से औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इङ्गलैण्ड में इन सब तत्वों के साथ-साथ जनता में वाणिज्यवादी दृष्टिकोण, आविष्कारों के प्रति रुचि तथा समृद्धि के लिये लगन से औद्योगिक क्रान्ति के लिये आवश्यक पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था और इसी कारण इङ्गलैण्ड इस क्रान्ति में विश्व के सभी देशों से अग्रणी रहा। इन कारणों का अवलोकन निम्न विवरण से स्पष्ट है।

(अ) प्राकृतिक कारण
(Natural Causes)

इङ्गलैण्ड की स्थिति, जलवायु, भूमि की बनावट, समुद्रतट तथा प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता से औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(i) **भौगोलिक स्थिति**—इङ्गलैण्ड की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त लाभप्रद थी और है क्योंकि ब्रिटेन की भौगोलिक स्थिति के दो गुण—एक संसार से पृथकता और दूसरा संसार से निकट सम्पर्क—से विदेशी व्यापार में आशातीत सफलता मिली। इङ्गलिश चेनल द्वारा यूरोप से पृथक होने के कारण आक्रमणों से सुरक्षित रहा। एशिया तथा अमेरिका के केन्द्र बिन्दु के रूप में स्थिति लाभदायक रही।

(ii) **अनुकूल जलवायु**—यहां की समशीतोष्ण जलवायु तथा स्वास्थ्य प्रद वातावरण से यहां के निवासियों को कठिन परिश्रम तथा बौद्धिक विकास ने प्ररित किया। सूती वस्त्र उद्योग का विकास इस अनुकूल जलवायु के कारण सम्भव हुआ। अनेक आविष्कार सर्वप्रथम इङ्गलैण्ड में ही हुए जिससे औद्योगिक क्रान्ति हो सकी।

(iii) **उत्तम सामुद्रिक किनारा**—ब्रिटेन का समुद्रतट न केवल 7000 मील लम्बा है बल्कि इतना कटा फटा है कि सुरक्षित खाड़ियां तथा उत्तम बन्दरगाहों का

निर्माण हो गया। देश का कोई आन्तरिक भाग 80 मील से अधिक दूर नहीं है। सौभाग्य से गल्फ स्ट्रीम की गर्म सामुद्रिक धारा के कारण पूर्वी किनारा हमेशा व्यापार के लिये खुला है। समुद्रतट छिछला—पर ज्वार भाटे के कारण जहाज तथा मत्स्य उद्योगों का विकास हुआ। निर्भीक नाविकों के प्राकृतिक संयोग से न केवल नये साम्राज्यों की स्थापना सम्भव हुई पर विस्तृत बाजार का शोषण सम्भव हुआ।

(iv) **प्राकृतिक साधन**—देश के विकास में वहां के प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता विकास को गति प्रदान करती है। इङ्गलैण्ड में लोहा और कोयला, जो औद्योगिक क्रान्ति के जनक कहे जाते हैं, पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने के साथ-साथ पास-पास मिलने से लोह एवं इस्पात उद्योग के विकास ने दूसरे क्षेत्रों में विकास को सम्भव बनाया। कोयला शक्ति का महत्वपूर्ण स्रोत रहा। जिस कच्चे माल की इङ्गलैण्ड में कमी थी उसकी पूर्ति साम्राज्य उपनिवेशों से पूरी की जा सकती थी। इस तरह प्राकृतिक साधनों की विपुलता से औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि ब्रिटेन की भौगोलिक स्थिति तथा प्राकृतिक परिस्थितियों ने औद्योगिक क्रान्ति को सफल बनाने में अकथनीय सहयोग प्रदान किया।

(ब) आर्थिक कारण
(Economic Causes)

इङ्गलैण्ड में प्राकृतिक कारणों के समान ही आर्थिक पृष्ठभूमि भी औद्योगिक क्रान्ति के लिये उपयुक्त थी। पूंजी की पर्याप्तता, श्रम का अभाव, कुशलता, विस्तृत बाजार, वैज्ञानिक प्रगति, यातायात के साधनों का विकास, बैंकिंग सुविधाओं आदि ने सामूहिक रूप से औद्योगिक क्रान्ति में अद्वितीय योग दिया।

(i) **आवश्यक पृष्ठभूमि का पाया जाना** इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व अर्थ व्यवस्था में औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक वातावरण बन चुका था। लोहा, ऊनी तथा जहाजी उद्योग प्रगति पर थे ही और ब्रिटेन वासियों में बड़े पैमाने की उत्पत्ति और विदेशी व्यापार से लाभोपार्जन की तीव्र लालसा ने नये आविष्कारों, संयुक्त पूंजीवाली कम्पनियों और बैंकिंग विकास का मार्ग खोल दिया था। नये आविष्कारों के प्रारम्भ होने तक इङ्गलैण्ड में व्यापारिक दृष्टिकोण के अनुकूल सरकार, आन्तरिक स्वतन्त्र व्यापार, सम्पन्न सूती वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित विस्तृत विदेशी व्यापार, संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियां तथा बैंकिंग व्यवस्था आदि ने समुचित पृष्ठ-भूमि का निर्माण कर लिया था जिससे इङ्गलैण्ड को औद्योगिक क्रान्ति का नेता बनने का सुअवसर मिल सका।

(ii) **श्रम का अभाव**—इङ्गलैण्ड में उद्योग तथा व्यापार के लिये निरन्तर बढ़ते हुए श्रम की मांग के मुकाबले में श्रमिकों का अभाव था। श्रमिकों के अभाव

के कारण ही अधिकाधिक यन्त्रों और मशीनों का प्रयोग तथा नये-नये आविष्कारों को प्रोत्साहन मिला। इससे इङ्गलैण्ड को दुहरा लाभ प्राप्त हुआ—एक ओर श्रमिकों के रोष का अभाव तथा दूसरी ओर पर्याप्त पूंजी का सदुपयोग। नोवेल्स के अनुसार जहां फ्रांस के पास 4 करोड़ पौण्ड विदेशी व्यापार के लिये 260 लाख जनसंख्या थी वहां इङ्गलैण्ड में 3·20 करोड़ पौण्ड व्यापार के लिये सिर्फ 90 लाख जन-संख्या ही थी। इस तरह उद्योग और व्यापार में बढ़ते हुई श्रम की मांग की पूर्ति श्रमिकों के अभाव में यन्त्रों के आविष्कार तथा उनके प्रयोग से की गई। मेनोरियल प्रथा की समाप्ति से भी श्रमिकों की पूर्ति बढ़ी थी और इससे नगरों में कुछ सीमा तक श्रमिक उपलब्ध होगये।

(iii) **पूंजी की पर्याप्तता**—औद्योगीकरण के लिये पर्याप्त पूंजी की उपलब्धता एक आवश्यक शर्त है। इङ्गलैण्ड की तात्कालिक परिस्थितियां पूंजी संग्रह तथा उसके उपयोग को प्रोत्साहित करने के अनुकूल थीं। जहां एक ओर इङ्गलैण्ड के व्यापारियों ने भारत तथा अन्य उपनिवेशों से असामान्य लाभ कमा कर धन एकत्रित किया वहां 17वीं शताब्दी में प्युरिटन (Puritan) तथा 18वीं शताब्दी में मेथोडिस्ट (Methodist आन्दोलनों ने सादा जीवन, कम मे कम व्यय और अधिक बचत को व्यवसायों में विनियोग को प्रोत्साहन दिया। बैंक आफ इङ्गलैण्ड के नेतृत्व में ब्रिटेन की बैंकिंग व्यवस्था ने भी पूंजी संचय और विनियोग को संभव बनाया। इस तरह व्यापारिक लाभ, निजी बचतें तथा बैंकिंग व्यवस्था के पूंजी निर्माण से औद्योगिक क्रान्ति के लिये पर्याप्त पूंजी उपलब्ध कर उसकी आधार शिला का कार्य किया। साहसी प्रवृत्ति के ब्रिटिश व्यापारियों ने नये आर्थिक कार्यों में पूंजी लगाने में जोखिम उठाई।

(iv) **वैज्ञानिक आविष्कार**—पूंजी की पर्याप्तता, विस्तृत व्यापार तथा श्रम के अभाव से इङ्गलैण्ड में वैज्ञानिक आविष्कारों की शृंखला से औद्यौगिक क्रान्ति सफल हुई। जैम्स वाट द्वारा वाष्प चलित इंजिन, आर्कराइट द्वारा वाटरफ्रेम, क्रोमटन का म्यूल, कार्टराइट का पावरलूम, हारग्रीव्स का स्पीनिंग जैनी, हेनरी कोर्ट, हन्टसमेन, डर्बी परिवार द्वारा अनेक नये आविष्कारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

(v) **विस्तृत व्यापार क्षेत्र**—1760 तक इङ्गलैण्ड का विदेशी व्यापार का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो चुका था क्योंकि भारत तथा अन्य उपनिवेशों के बाजार इङ्गलैण्ड के बड़े पैमाने के उद्योगों के माल की खपत के लिये खुले थे। इसके अलावा 1760 के बाद भी इङ्गलैण्ड का शासन कई महाद्वीपीय देशों में स्थापित हो चुका था जिससे उन देशों से कच्चा माल प्राप्त करने तथा निर्मित माल को वेचने की संभावनाएँ बढ़ने से इङ्गलैण्ड ने इन उपयुक्त परिस्थितियों का लाभ उठाया और औद्योगिक क्रान्ति की सफलता में योग मिला।

इङ्गलैण्ड का आन्तरिक व्यापार भी स्थानीय करों से मुक्त होने के कारण बढ़ता जा रहा था। इस प्रकार आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार वृद्धि ने औद्योगिक क्रान्ति को प्रोत्साहित किया।

(vi) **यातायात के साधनों का विकास तथा सुदृढ़ सामुद्रिक शक्ति**—इङ्गलैण्ड के विशाल साम्राज्य की स्थापना तथा व्यापार क्षेत्र में विस्तार का क्षेत्र इङ्गलैण्ड को सुव्यवस्थित तथा सुदृढ़ सामुद्रिक शक्ति को ही जाता है। क्योंकि इसी के कारण इङ्गलैण्ड अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता तथा विश्व व्यापी व्यापार की रक्षा कर सका। इङ्गलैण्ड उस समय अपनी सामुद्रिक शक्ति की दृष्टि से तो श्रेष्ठ था पर साथ २ सड़कों, नहरों तथा नदियों में जल यातायात का विकास होने से न केवल आन्तरिक व्यापार में वृद्धि हुई बल्कि श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि और कारखानों से निर्मित माल समुद्रतट तक भेजना तथा वहाँ से विदेशों से आये कच्चे माल को कारखानों तक पहुँचाना सुलभ हो गया। इस तरह यातायात के साधनों के विकास का सामूहिक प्रयत्न औद्योगिक क्रान्ति के लिये बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ।

(vii) **कुशल कारीगरों की उपलब्धता**—औद्योगिकरण की सफलता बहुत कुछ कुशल श्रमिकों पर निर्भर करती है। जहाँ एक ओर इङ्गलैण्ड में श्रमिकों की कमी थी वहाँ कुशल एव योग्य श्रमिकों की पूर्ति संभव थी। क्योंकि यूरोप के अन्य देशों में आन्तरिक अशान्ति से वहाँ के कुशल श्रमिक भागकर इङ्गलैण्ड आ गये और इङ्गलैण्ड में भी आवश्यक औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि के कारण प्रशिक्षित और कुशल श्रमिक औद्योगिक केन्द्रों पर एकत्रित हो गये थे। इस तरह से नये आविष्कारों को प्रयोग में लाना अधिक सुविधाजनक हो गया था।

(viii) **संगठन सम्बन्धी योग्यता**—संगठन उत्पादन का महत्वपूर्ण अङ्ग तथा व्यापार एवं उद्योग की प्रगति का सूत्रधार माना जाता है। ब्रिटेन निवासियों में विस्तृत व्यापार के सगठन की दक्षता तथा बड़े पैमाने की उत्पत्ति की कुशलता ने उन्हें समस्त संसार में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर औद्योगिक क्रान्ति की सफलता का मार्ग प्रशस्त किया। वे विश्व के किसी भी भाग में माल बेचने तथा कच्चा माल प्राप्त करने में सक्षम थे।

(ix) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता**—आर्थिक विकास में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता निजी साहस और आर्थिक साधनों के शोषण को प्रोत्साहित करती है। इङ्गलैण्ड में उस समय व्यक्तिगत स्वतन्त्रता होने से व्यापार तथा व्यवसाय में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के इच्छुक अधिकांश अन्य यूरोपीय देशों के निवासी आकर बस गये और इङ्गलैण्ड तथा विदेशी निवासियों ने व्यक्तिगत इच्छानुसार व्यवसाय तथा व्यापार प्रारम्भ कर औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में प्रगति करने में योग दिया।

(x) **सरकार की आर्थिक नीति**—औद्योगिक क्रान्ति के समय इङ्गलैण्ड की

तात्कालिक सरकार ने भी उद्योग-धन्धों के विकास के लिये विदेशी निर्मित माल के इङ्गलैण्ड में आयात तथा वहाँ से कच्चे माल के निर्यात पर रोक लगाई। भारतीय वस्तुओं पर 70-80% शुल्क लगाया तथा सूती कपड़ों के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। अन्यथा भारतीय सूती तथा रेशमी वस्तुओं की प्रतिस्पर्द्धा में पैसले और मेनचैस्टर की मिलें बन्द हो गई होतीं। इङ्गलैण्ड में स्थानीय करों से मुक्ति होने के कारण आन्तरिक व्यापार में वृद्धि हुई। वालपोल (Walpole) ने तटकर नीति में कई बार परिवर्तन किये। व्यापारवादियों (Mercantalists) ने भी अपनी आर्थिक नीतियों द्वारा औद्योगिक विकास को योग दिया। व्यापार क्षेत्र में विस्तार हो जाने पर सरकार ने स्वतन्त्र व्यापार नीति का अनुसरण कर सामयिक नीति का उदाहरण प्रस्तुत किया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से भी औद्योगिक क्षेत्र में पूंजी विनियोग तथा उद्योगों में विविधता उत्पन्न हुई।

इस तरह सरकार की संरक्षण नीति (Policy of protection) से विदेशी निर्मित माल के आयात में कमी तथा कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध से इङ्गलैण्ड अपने उद्योगों को विकसित कर विश्व पर अपनी सार्वभौमिकता स्थापित करने में सफल हो सका। Royal Society of Arts ने भी आविष्कारों को प्रोत्साहित किया तथा सरकार ने आविष्कारों को पेटेन्ट कराने की सुविधाएँ दीं।

(xi) **भारतीय धन की लूट-खसोट**—कुछ विद्वानों के अनुसार प्लासी के युद्ध के बाद भारतीय पूंजी बड़ी मात्रा में इङ्गलैण्ड भेजी गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों द्वारा बंगाल से अत्यधिक धन लूटकर इङ्गलैण्ड में उद्योग धन्धों के विस्तार में लगाया गया। इससे साख में अभिवृद्धि हुई। प्लासी के युद्ध के बाद ही अनेक महत्वपूर्ण आविष्कार हुए। अगर प्लासी के युद्ध के बाद लूट-खसोट से प्राप्त अथाह धन का प्रयोग औद्योगिक क्रान्ति की शक्तियों को तीव्रता प्रदान करने में नहीं आता तो जैम्सवाट तथा अनेक आविष्कार निश्चय ही समाप्त हो गये होते।

(स) राजनैतिक कारण
(Political Causes)

देश में औद्योगिक विकास के लिये प्राकृतिक तथा आर्थिक वातावरण की उपयुक्तता के साथ २ राजनैतिक स्थायित्व, शान्ति और आक्रमण से सुरक्षा भी आवश्यक माना जाता है। इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के समय स्थिति उपयुक्त थी और यह क्रांति को सफल बनाने में सहयोगी रही।

(i) **राजनैतिक स्थायित्व और शांति**—1688 की विग (Whig) क्रान्ति के बाद में इङ्गलैण्ड का संविधान जिन सुदृढ़ सिद्धान्तों पर आधारित किया गया उनसे आन्तरिक शान्ति बनी रही। वालपोल (Walpole) की कुशल नीति से राजनैतिक तथा वित्तीय स्थायित्व बढ़ा। जब यूरोप के अनेक देश गृहयुद्धों तथा बाहरी आक्र-

मणों से आतंकित रहे, ब्रिटेन को राजनैतिक शान्ति में व्यापार तथा उद्योगों के विकास का अवसर मिल गया। यद्यपि ब्रिटेन को 18वीं शताब्दी में महायुद्धों में भाग लेना पड़ा पर इङ्गलैण्ड की भूमि पर ये युद्ध न लड़े जाने से औद्योगिक विकास को बल मिला। नोवेल के अनुसार "ब्रिटेन की राजनैतिक सुरक्षा इतनी अच्छी थी कि लोग बड़े उद्योगों में आवश्यक स्थायी पूंजी लगाने में बिल्कुल भी संकोच नहीं करते थे।"

(ii) **वाह्य आक्रमणों से मुक्ति**—इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति की सफलता का एक प्रमुख कारण उसकी विदेशी आक्रमणों से मुक्ति थी। क्योंकि एक तो सुदृढ़ सामुद्रिक बेड़ा तथा दूसरा इङ्गलिश चेनल के कारण यूरोपीय देशों से पृथकता होने से राजनैतिक सुरक्षा सुदृढ़ थी। जिन युद्धों में ब्रिटेन ने भाग लिया वे भी ब्रिटेन की भूमि पर नहीं पर यूरोपीय देशों, जल, या अमेरिका और एशिया की भूमि पर लड़े गये। इस वाह्य आक्रमणों के भय से मुक्ति होने से उद्योगपतियों और व्यापारियों का पूंजी विनियोग को प्रोत्साहन मिला।

(iii) **दास मुक्ति**—यूरोप के अन्य देशों में दास प्रथा प्रचालित थी। श्रमिक वैधानिक रूप से भूमि से बंधा होने के कारण कारखानों, निर्माणशालाओं और खानों में काम नहीं कर पाते थे। उसके विपरीत इङ्गलैण्ड में निवासियों को दास प्रथा से मुक्ति और पूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी। उन्हें इच्छानुसार कार्य करने, व्यापार-व्यवसाय प्रारम्भ करने, विचरण करने और पूंजी के संचय तथा विनियोग की पूर्ण स्वतंत्रता थी। इससे निजी साहस को बढ़ावा मिला और औद्योगिक क्रान्ति की सफलता सम्भव हो गई।

(द) उदार सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण

औद्योगिक क्रान्ति के समय इङ्गलैण्ड में सामाजिक तथा धार्मिक वातावरण भी औद्योगिक विकास के अनुकूल था। मध्ययुगीय कट्टरता और जड़ता समाप्ति की ओर अग्रसर थी। लोगों में शिक्षा के स्तर में विकास से तथा आर्थिक समृद्धि के लिये विकास शील दृष्टिकोण अपना रखा था। नये आविष्कारों तथा नई उत्पादन पद्धतियों को अपनाने में सक्रियता थी। इस तरह जन सहयोग इसकी सफलता का प्रमुख कारण था।

औद्योगिक-क्रान्ति के उपर्युक्त कारणों को संक्षेप में निम्न तालिका से स्पष्ट करना परीक्षार्थियों की दृष्टि से उपयुक्त है—

औद्योगिक क्रान्ति के कारण
(Causes of Industrial Revolution)

(अ) प्राकृतिक कारण

(1) भौगोलिक स्थिति
(2) उपयुक्त जलवायु
(3) उत्तम सामुद्रिक किनारा
(4) पर्याप्त प्राकृतिक साधन

(ब) आर्थिक कारण

(i) आवश्यक पृष्ठभूमि
(ii) श्रम का अभाव
(iii) पूंजी पर्याप्तता
(iv) वैज्ञानिक आविष्कार
(v) विस्तृत बाजार
(vi) यातायात का विकास और सुदृढ़ सामुद्रिक शक्ति
(vii) कुशल कारीगरों की उपलब्धता
(viii) संगठन की योग्यता
(ix) व्यक्ति स्वतन्त्रता
(x) सरकार की आर्थिक नीति
(xi) भारतीय धन की लूट खसोट
(xii) बैंकिंग व्यवस्था का विकास

(स) राजनैतिक कारण

(i) राजनैतिक स्थायित्व और शाँति
(ii) बाह्य आक्रमणों से मुक्ति
(iii) दास मुक्ति एवं स्वतन्त्रता

(द) सामाजिक तथा धार्मिक उदारता

संक्षेप में यही पर्याप्त है कि 18 वी शताब्दी में, जब इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत हुई, फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड, पुर्तगाल तथा स्पेन आदि देश भी औद्योगिक विकास तथा व्यापार वृद्धि की दृष्टि से इङ्गलैण्ड के समकक्ष थे और इनमें व्यापार वृद्धि की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा थी, पर इङ्गलैण्ड ही एक ऐसा देश था जहाँ औद्योगिक क्रान्ति के पोषक तत्व और ऐसे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा प्राकृतिक कारणों ने अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर यूरोपीय देशों को पीछे धकेल कर इङ्गलैण्ड को औद्योगिक क्रान्ति का अगुआ और विश्व में अपनी आर्थिक प्रभुसत्ता कायम करने में सफल बनाया । हेमन्ड के अनुसार "इन महत्वपूर्ण आविष्कारों के प्रारम्भ होने के पूर्व इङ्गलैण्ड में वाणिज्य के अनुकूल सरकार, मुक्त आन्तरिक व्यापार, समृद्ध एवं विकासशील वस्त्र उद्योग जिसका निर्मित माल महाद्वीप (यूरोप) को निर्यात होता था, जिसके विस्तृत व्यापार सम्बन्ध थे, संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियां

थीं और उन्नत बैंकिंग व्यवस्था थी।" इन सब के संयोग से इङ्गलैण्ड ही विजयी बन सका।

इङ्गलैण्ड में ही सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति क्यों ?

(Why did the Industrial Revolution occur first in England ?)

जब इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ हुई उस समय यूरोप में फ्रान्स, जर्मनी, पुर्तगाल, हालैण्ड तथा स्पेन आदि देश औद्योगिक विकास तथा व्यापार विस्तार की दृष्टि से इङ्गलैण्ड की अपेक्षा अधिक सम्पन्न या समकक्ष थे और वे इङ्गलैण्ड से प्रतिस्पर्द्धा करते थे। पर इङ्गलैण्ड ही औद्योगिक क्रान्ति का जन्म-दाता और अग्रणी क्यों रहा ? यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से पाठकों के मन में उत्पन्न हो जाता है। 1760 से 1830 के 70 वर्षों में औद्योगिक क्रान्ति ने इङ्गलैण्ड को कृषि प्रधान देश से उद्योग प्रधान देश बनाकर उसका रूप ही बदल दिया। फ्रास और अमेरिका में औद्योगिक क्रान्ति उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक 4-5 दशकों में, जर्मनी में 1870 से 1880, रूस में 1860-70 में ही प्रारम्भ हुई पर इन सब राष्ट्र में औद्योगिक विकास की गति इतनी मंद थी कि 1914 के प्रथम विश्व युद्ध तक ये राष्ट्र इङ्गलैण्ड के मुकाबले औद्योगिक दृष्टि से बहुत तुच्छ थे। इङ्गलैण्ड ही औद्योगिक क्रान्ति का नेता था। इन कारणों के सन्दर्भ में यह कहना उपयुक्त है कि इङ्गलैण्ड को जो सुविधाएँ तथा अर्थ व्यवस्था की विशेषताएँ प्राप्त थीं उसके प्रतिस्पर्द्धियों को प्राप्त नहीं थीं और इसके अलावा उनमें पारस्परिक स्पर्द्धा, आन्तरिक अशान्ति, बाह्य आक्रमणों और बैंकिंग व्यवस्था का अभाव था। इनके सम्बन्ध में अलग २ विवरण पूर्ण स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है।

फ्रांस में औद्योगिक क्रान्ति पहले क्यों नहीं ?

फ्रान्स अपने कुशल कारीगरों, चतुर आविष्कारकों और विस्तृत व्यापार सम्बन्धों के लिये प्रसिद्ध होने के साथ २ इङ्गलैण्ड से अधिक सम्पन्न था पर फिर भी औद्योगिक क्रान्ति में पिछड़ जाने के निम्न कारण उत्तरदायी थे:—

(1) **आन्तरिक अशांति तथा बाह्य आक्रमण**—1789 की राज्य क्रान्ति से उसे पड़ोसियों ने युद्ध में उलझाये रखा और 1880 तक राजनैतिक अशान्ति के कारण औद्योगीकरण की ओर ध्यान न देने मे प्रगति मंद रही। सामन्त शाही प्रथा से भी राजनैतिक स्थायित्व नहीं था। अतः बहुत से कुशल कारीगर भागकर इङ्गलैण्ड चले गये।

(2) **व्यापार पर नियंत्रण तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभाव**—सामन्तशाही, दास प्रथा तथा व्यापार पर नियंत्रण से व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आघात पहुँचा और औद्योगिक विकास तथा व्यापार विस्तार का उपयुक्त वातावरण न बन सका।

(3) **पूंजी विनियोग का अभाव**—देश में पूंजी की पर्याप्तता होते हुए भी सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था के अभाव में उद्योगों में पूँजी विनियोग को प्रोत्साहन न मिला।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अभाव में भी पूंजी विनियोग प्रेरित न हुआ।

(4) **अधिक जनसंख्या**—इङ्गलैण्ड में जनसंख्या की कमी से श्रम शक्ति की पूर्ति के लिये यंत्रों और मशीनों के आविष्कारों तथा प्रयोगों को प्रोत्साहन मिला पर फ्रान्स में जनसंख्या इङ्गलैण्ड के मुकाबले अधिक थी। 1700 में जहां फ्रांस की जनसंख्या 2 करोड़ थी इङ्गलैण्ड की 22 लाख थी। 1780–90 में फ्रान्स की जन संख्या 2.6 करोड़ थी जबकि इङ्गलैण्ड में केवल 90 लाख थी। इस तरह इङ्गलैण्ड को मशीनों के उपयोग की अधिक आवश्यकता थी और फ्रान्स से इङ्गलैण्ड को पहल करनी पड़ी।

(5) **प्राकृतिक स्थिति तथा साधन**—फ्रांस की भौगोलिक स्थिति इङ्गलैण्ड की अपेक्षा कम लाभदायक थी और है तथा प्राकृतिक साधनों की भी इङ्गलैण्ड के मुकाबले कमी थी।

(6) **आवश्यक पृष्ठभूमि का अभाव**—इङ्गलैण्ड में जिस पृष्ठभूमि का निर्माण विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक कारणों के संयोग से हो गया था। उस पृष्ठभूमि का निर्माण फ्रांस में उस समय न हो पाया था और इस पृष्ठभूमि के अभाव में औद्योगिक क्रान्ति देर से हुई।

इस तरह उपर्युक्त विवरण फ्रांस की तात्कालीन कमजोरियों की ओर संकेत है और इन्हीं कारणों से औद्योगिक क्रान्ति में वह पहल करने में असमर्थ रहा जबकि इङ्गलैण्ड में सब परिस्थितियां अनुकूल थीं।

जर्मनी में औद्योगिक क्रान्ति देर से क्यों ?

जर्मन में औद्योगिक क्रान्ति 1870–80 में हुई जब कि इङ्गलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति काफी जोर पकड़ चुकी थी। जर्मनी भी फ्रांस की भांति क्रान्ति का नेता बनने में असमर्थ रहा क्योंकि:—

(1) **राजनैतिक अस्थिरता**—जर्मनी आरम्भ में छोटे राज्यों में विभक्त था और वे अपने आपसी झगड़ों में ही इतने उलझे रहते थे कि औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में सोचने की आवश्यकता ही महसूस न की गई। 1870 तक बिस्मार्क किसी प्रकार जर्मन राष्ट्र को संगठित कर औद्योगिक विकास की ओर अग्रसर कर सका।

(2) **सैनिकीकरण तथा युद्ध रत्त राष्ट्र** :—जर्मनी बराबर युद्ध रत्त रहा। 1815 में भी युद्ध से जर्मनी की सारी अर्थ व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। बड़े पैमाने पर सेना रखने तथा सैनिक सामान की वृद्धि से औद्योगिक विकास में बाधा रही।

(3) **पूंजी का अभाव**—औद्योगिक क्रान्ति को सम्पादन करने के लिये विशाल पूंजी की पूर्ति जर्मनी जैसे कृषि प्रधान निर्धन देश में उस समय सम्भव न थी। बैंकिंग व्यवस्था भी कमजोर थी। अतः पूंजी निर्माण और विनियोग की दृष्टि से स्थिति काफी कमजोर थी।

(4) **बाजार का अभाव**—विस्तृत बाजार का अभाव और व्यापारिक सम्वन्धों की कमी से भी जर्मनी को कोई प्रलोभन सामने न था। जैसे कि इङ्गलैण्ड के सामने उपनिवेशों के रूप में था।

नोवेल्स के शब्दों में 1850 तक जर्मनी सब प्रकार से गरीव राष्ट्र था और गरीवी सब वर्गो में व्याप्त थी। शहरी तथा ग्रामीण जनता में गरीवी से अक्सर अकाल पड़ते थे।

हालैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल और रूस में औद्योगिक क्रान्ति

फ्रांस और जर्मनी के अलावा हालैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल और रूस आदि प्रसिद्ध यूरोपीय देश भी राजनैतिक प्रभाव और आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से इंगलैण्ड के समकक्ष होने पर भी औद्योगिक क्रान्ति में इंगलैण्ड की समता न कर सके और पिछड़ गये।

हालैण्ड के पास पूँजी का अभाव था, वैंकिंग व्यवस्था विकसित न होने से पूँजी निर्माण और विनियोग सही दिशा में न हो सके। उपनिवेश जीतने की होड़ होने पर भी जहाज रानी के अविकसित होने तथा आन्तरिक अशान्ति और वाह्य आक्रमणों के भय से इंगलैण्ड के सामने न टिक सका।

स्पेन में सैनिक वाद का प्रसार होने से औद्योगीकरण पर उचित ध्यान नहीं दिया जा सका। असन्तुलित अर्थव्यवस्था, धार्मिक रूढ़िवादिता और अप्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था ने प्रगति का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। सैनिकवाद और उपनिवेश जीतने की प्रतिस्पर्द्धा ने औद्योगिक विकास की रही-सही आशा को भी धूमिल कर दिया था।

पुर्तगाल में भी आवश्यक पृष्ठभूमि का अभाव, सामाजिक रूढ़िवादिता, सैनिकवाद और उपनिवेश जीतने की होड़ में इंगलैण्ड के सामने टिक न सका। पूँजी का अभाव होने के साथ प्राकृतिक साधनों की कमी थी।

रूस भी कृषि प्रधान राष्ट्र था। परम्परागत सामन्तवादी शासन में दास प्रथा प्रचलित थी। पूँजी का अभाव था। राजनैतिक दृष्टि से उद्योगों के विकास की रुचि बिल्कुल न थी। साहस और पूँजी के अभाव में भी विस्तृत प्राकृतिक साधनों का औद्योगीकरण में उपयोग की पहल न की जा सकी।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि यूरोप महाद्वीप के फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल तथा रूस आदि राष्ट्र विगत 16वीं से 18वीं शताब्दियों में प्रथम श्रेणी के इंगलैण्ड के समकक्ष तथा प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र थे, पर उनकी उपर्युक्त कमजोरियों तथा इसके विपरीत इंगलैण्ड में प्राकृतिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों का ऐसा अनुकूल संयोग था जिससे इंगलैण्ड औद्योगिक क्रान्ति का सिर्फ जन्मदाता ही नहीं अपितु यूरोप के अन्य प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों को पीछे धकेल कर स्वयं विश्व का आर्थिक नेता बन गया।

औद्योगिक क्रान्ति की मुख्य विशेषताएँ
(Main Features of Industrial Revolution)

औद्योगिक क्रान्ति से इङ्गलैण्ड की अर्थव्यवस्था में जो मौलिक परिवर्तन हुए और जिनसे इंगलैण्ड की आर्थिक प्रभुसत्ता विश्व पर छा गई। प्रो० नोवेल्स (Knowles) ने औद्योगिक क्रान्ति को 6 महान् परिवर्तनों–जो परस्पर एक दूसरे पर निर्भर थे—सम्बन्धित किया है और इन परिवर्तनों को ही औद्योगिक क्रान्ति की मुख्य विशेषताओं की संज्ञा दी जा सकती है।

(1) **सूती वस्त्र उद्योग में मशीन और यंत्रों का उपयोग एवं आविष्कार**—औद्योगिक क्रान्ति की पहली विशेषता विस्तृत बाजार के लिये बड़े पैमाने की उत्पत्ति के लिये वस्त्र उद्योग में जल तथा वाष्प चालित यंत्रों का वृहत्तर प्रयोग था। अधिक सूत कातने के लिये हारग्रीव्स का स्पिनिंग जेनी (Spinning Jenny), रिचार्ड आर्कराईट का वाटर फ्रेम (Water Frame) तथा क्रोम्पटन का म्यूल (Mule) तथा बुनाई के लिये के (Kay) का फ्लाईंग शटल (Flying Shuttle) और कार्ट राईट का पावरलूम (Power-loom) का प्रयोग होने से सूती वस्त्र उद्योग की काया पलट होगई। इन परिवर्तनों ने प्रारम्भिक प्रेरणा का सृजन कर औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

(2) **अभियांत्रिकी का विकास**—औद्योगिक क्रान्ति की दूसरी बड़ी विशेषता अभियांत्रिकी का विकास था। मशीनों और यंत्रों के प्रयोग बढ़ने से यंत्रों के निर्माण तथा उनमें सुधार के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता बढ़ी फलतः यातायात, लोह-इस्पात, वस्त्र उद्योग, खानों में कोयला तथा लोहा निकालने आदि के यंत्रों का निर्माण और सुधार हुए। अनेक आविष्कार हुए और इस प्रकार अभियांत्रिकी का तीव्र गति से विकास औद्योगिक क्रान्ति की देन और सफलता का सूत्र था।

(3) **लोहा और इस्पात उद्योग का विकास**—मशीनों और यंत्रों के निर्माण तथा अभियांत्रिकी का विकास लोहा-इस्पात उद्योग पर निर्भर था क्योंकि मशीनें बनाने में इस्पात की आवश्यकता की पूर्ति इस उद्योग के विकास से ही सम्भव थी। बड़े पैमाने पर लोहा खोदने, गलाने और इस्पात में परिवर्तित करने के लिये अनेक आविष्कार किये गये जिनमें लोहा गलाने के लिये डर्बी परिवार द्वारा लकड़ी के कोयले के स्थान पर खानों के कोयले का प्रयोग, 1784 में हेनरी कोर्ट द्वारा लोहे को शुद्ध करने की प्रक्रिया, 1790 में नेलसन (Neilson) द्वारा उष्ण भट्टी, हेनरी बेसमेर (H. Bessemer) द्वारा इस्पात द्वारा तैयार करने की नई पद्धति तथा सीमेनस् (Seimens) द्वारा बिजली की भट्टी से लोहा गलाने की पद्धति आदि

उल्लेखनीय हैं। इससे लोहे-इस्पात उद्योग में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और लोहे के कारखाने कोयले की खानों के समीप केन्द्रित होने लगे।

(4) **कोयले के महत्व में वृद्धि और कोयला उद्योग का विकास**—वाष्प चालित यंत्रों का प्रयोग, लोहा-इस्पात उद्योग में कोयले का प्रयोग तथा इन्जिनियरिंग प्रगति से कोयले का महत्त्व बहुत बढ़ गया और कोयला उद्योग का भाग्य सितारा चमका। कोयले के उत्पादन के लिए खोदने में मशीनों का प्रयोग होने लगा। उन क्षेत्रों में उद्योग केन्द्रित होने लगे और उस क्षेत्र में घनत्व भी बढ़ा। यातायात के भी साधन बढ़े।

(5) **रसायनिक उद्योग का विकास**—सूती वस्त्र उद्योग के विकास से उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ वस्त्रों को अधिक आकर्षक बनाने के लिये धोने, रंगने तथा छपाई के लिए अनेक प्रकार के रसायनों की पूर्ति के लिये रसायनिक उद्योगों का विकास हुआ। इसके अलावा अन्य उद्योगों में भी रसायनों का उपयोग उनके विकास के लिये आवश्यक था। इस तरह एक-दूसरे का विकास संभव हुआ।

(6) **यातायात के साधनों का विकास**—सस्ते एवं तीव्रगामी यातायात के साधनों के अभाव में कच्चे माल को औद्योगिक केन्द्रों तक पहुँचाना तथा निर्मित माल को बाजार में पहुँचाना, बडे पैमाने पर उत्पत्ति का आयोजन, लोहा एवं इस्पात तथा कोयला उद्योग का विकास और सूती वस्त्र उद्योग सम्पन्नता असंभव थी। अतएव 1782 में जेम्स वाट द्वारा वाष्प चालित इंजन द्वारा यातायात क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। रेलवे के विकास से क्रान्ति की सफलता निश्चित हो गई। यातायात विकास में 1770 से 1840 तक की अवधि में पक्की सड़कों और नहरों के विकास से वस्त्र उद्योग, अभियांत्रिकी, लोहा और कोयला उद्योग का विकास हुआ। व्यापार सीमित तथा श्रमिकों का संगठन स्थानीय स्तर पर था। इस अवधि को (Period of Metalled Roads) कहा जाता है। इसके बाद 1840 से 1914 तक रेलवे तथा वाष्प चालित जहाजों का तीव्र गति से विकास होने से विकास की प्रक्रिया तीव्र हुई और उद्योगों में विविधता, व्यापार का विस्तार, लोहा-इस्पात तथा कोयला उद्योग का विकास, बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं की वृद्धि और भीषण प्रतियोगिता से संयोग आन्दोलन (Combination Movement) को बल मिला। श्रमिक संगठनों का विकास न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने लगा।

इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात सूती वस्त्र उद्योग से होकर धीरे-धीरे ऊनी, रेशमी, अभियांत्रिकी, लोहा, कोयला और रसायनिक उद्योगों से यातायात क्षेत्र में चमत्कारी परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने जो एक दूसरे पर निर्भर तथा परस्पर सम्बन्धित थे—औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर औद्योगिक क्रान्ति को सफल बनाया। इन छः विशेषताओं के अलावा इंगलैण्ड निवासियों का विकासशील

दृष्टिकोण, परम्पराओं के स्थान पर नवीन यंत्रों का प्रयोग, नये आविष्कार, आर्थिक समृद्धि के प्रति लालसा और साहस तथा जोखिम उठाने की प्रवृत्ति आदि भी महत्व-पूर्ण थी ।

औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव
(Effects of Industrial Revolution)

इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति सम्पूर्ण विश्व के लिए एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना थी जिसने न केवल इंगलैण्ड के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन को प्रभावित किया, अपितु समस्त मानव जाति की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में हलचल मचादी । औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम इंगलैण्ड में ही हुई । इसलिये उस पर क्रान्ति का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा और आमूल चूल परिवर्तनों से नये युग का सूत्र-पात हुआ । प्रो. नोवेल्स के अनुसार "क्रान्ति का परिणाम था नई जनता, नये वर्ग, नई नीतियां, नयी समस्याएँ और नये साम्राज्य ।" क्रान्ति से नये-नये आविष्कारों से उद्योगों की विशालता, विविधता, बड़े पैमाने पर उत्पत्ति, यातायात साधनों का तीव्र विकास और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अत्यधिक वृद्धि से इंगलैण्ड सम्पूर्ण विश्व पर अपनी आर्थिक प्रभुसत्ता (Supermacy) स्थापित कर विश्व नेता वना ।

औद्योगिक क्रान्ति के इन प्रभावों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है । यह तालिका के रूप में निम्नानुसार है—

औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव
(Effects of Industrial Revolution in U K.)

(अ) आर्थिक प्रभाव	(ब) सामाजिक प्रभाव	(स) राजनैतिक प्रभाव
(1) विकास दर में वृद्धि	(1) मध्यम वर्ग का उदय	(1) राजनैतिक सुदृढ़ता
(2) बडे पैमाने की उत्पत्ति एवं कारखाना प्रणाली का विकास	(2) वर्ग संघर्ष का जन्म	(2) उपनिवेशवाद में सफलता
(3) संयुक्त प्रमण्डलों का प्रादुर्भाव	(3) जनसंख्या में वृद्धि	(3) राजनैतिक चेतना
(4) उत्पादन में तेजी से वृद्धि	(4) श्रमिकों की स्वतंत्रता का ह्रास ।	(4) संसदीय सुधार
(5) व्यापार में क्रान्ति	(5) श्रमिकों का शोषण	(5) स्वतंत्र व्यापार नीति तथा कार-खाना अधिनियम ।

(6) नये-नये उद्योगों का जन्म	(6) सामाजिक उत्पीड़न	(6) नेपालियन विजय
(7) व्यवसायिक संस्थाओं की प्रगति	(7) पारिवारिक जीवन का ह्रास।	(7) अन्तराष्ट्रीय नेतृत्व
(8) यातायात के साधनों का विकास	(8) जनस्वास्थ्य एवं नैतिकता की समस्या।	
(9) श्रम और पूंजी सम्बन्धों में नया मोड़	(9) ग्रामीण जनसंख्या का ह्रास।	
(10) पूँजीपति वर्ग का औद्योगिक एकाधिकार तथा बढ़ता प्रभाव	(10) ट्रक प्रथा का विकास	
(11) नवीन क्षेत्रों का महत्व	(11) सामाजिक चेतना	
(12) नगरों का विकास		
(13) बड़े पैमाने पर ह्रास		
(14) रोजगार में वृद्धि तथा श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार		
(15) उद्योगों का स्थानीयकरण		
(16) आर्थिक असमानता		
(17) आर्थिक सकटों की आवृत्ति		

औद्योगिक-क्रान्ति के आर्थिक प्रभाव
(Economic Effects)

औद्योगिक क्रान्ति से ब्रिटेन की आर्थिक समृद्धि में वृद्धि हुई तथा उत्पादन में वृद्धि, विविधता, सयुंक्त प्रमण्डलों का विकास, व्यापार में क्रान्ति, यातायात के साधनों का विकास प्रमुख विशेषताएँ थीं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न है:—

(1) **विकास दर में वृद्धि तथा राष्ट्रीय आय का विस्तार**—औद्योगिक क्रान्ति से अर्थव्यवस्था में मौलिक परिवर्तनों से विकास की दर (Rate of

Growth) जो 1700-1780 में लगभग 1% वार्षिक थी वह 1781-1913 की अवधि में बढ़कर 3% वार्षिक हो गई। 1701 से 1781 की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की दर 2% वार्षिक थी वह 1782-85 में ही बढ़कर 3 से 4% वार्षिक हो गई। उत्पादन में जन संख्या की अपेक्षा तीव्र गति से वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय दोनों में वृद्धि हुई।

(2) **बड़े पैमाने की उत्पत्ति तथा कारखाना प्रणाली का विकास**—औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पादन का कार्य बड़े पैमाने पर विशालकाय यंत्रों की सहायता से किया जाने लगा। गृह प्रणाली का स्थान कारखाना प्रणाली ने ले लिया। हजारों की संख्या में मजदूर कार्य करने लगे। श्रम विभाजन की प्रणाली अधिक लोकप्रिय होने लगी और उत्पादन की छोटी इकाइयां विशालकाय इकाइयों में परिवर्तित होकर बड़े पैमाने पर उत्पत्ति करने लगीं।

(3) **संयुक्त प्रमण्डलों का प्रादुर्भाव**—विशाल औद्योगिक इकाइयों के लिये एक या कुछ ही व्यक्तियों द्वारा पूंजी की पूर्ति अपर्याप्त तथा कठिन समस्या थी। अतः अंशों में विभाजित पूंजी एकत्रीकरण के लिये संयुक्त पूंजी कम्पनियों का विकास हुआ। प्रारम्भ में ऐसी कम्पनियों की स्थापना सम्राट की विशेष आज्ञा से होती थी तथा Bubble Act के अन्तर्गत पूंजी उधार लेने का अधिकार सीमित था, पर 1825 में इस बबल अधिनियम को समाप्त कर दिया तथा असीमित दायित्व की कम्पनियों का निर्माण होने लगा। यह 'असीमित दायित्व' इन प्रमण्डलों के विकास में बाधा थी। अतः 1862 में 'सीमित उत्तरदायित्व' (Limited Liability) का सिद्धान्त स्वीकार किया गया यहां तक कि 1907 में फर्म व साझेदारी में भी इसे लागू किया गया। परिणाम स्वरूप संयुक्त प्रमण्डलों की संख्या तथा उनकी पूंजी में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई जो संक्षेप में निम्न तालिका से स्पष्ट है—

वर्ष	संख्या	पूंजी (लाख पौण्ड)
1844	1000	0.3
1885	10,000	5
1900	30,000	15
1930	1,13,327	33000

(4) **औद्योगिक उत्पादन में तेजी से वृद्धि तथा लागत में कमी**—बड़े पैमाने की उत्पत्ति तथा यंत्रों के प्रयोग से उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। लोहे के उत्पादन में 60 साल में 37 गुणी वृद्धि, कोयला उत्पादन में 10 गुणी वृद्धि, कपास के उपयोग में 40 गुणी वृद्धि तथा ऊन के आयात में 10 गुणी वृद्धि हुई। 1800 से 1850 की अवधि में उत्पादक वस्तुओं (Production Goods) के उत्पादन में

3.4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि और उपभोग उद्योगों (Consumer Goods Industries) के उत्पादन में 2.4% वार्षिक वृद्धि हुई। बड़े पैमाने की उत्पत्ति से आंतरिक और वाह्य बचतें मिलने से उत्पादन लागत भी बहुत कम होगयी थी। इससे सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध होने लगी थीं। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि

वस्तुएँ	अवधि	उत्पादन में वृद्धि	स्तर वृद्धि
कच्चा लोहा	1788-1851	68 हजार टन से बढ़कर 25 लाखटन	37 गुणा वृद्धि
कोयला	1780-1854	64 लाख टन से बढ़कर 646 लाख टन	10 गुणा
कपास खपत	1760-1830	8 हजार टन से 32 लाख टन	40 गुणा
कच्चे ऊन का आयात	1801-1849	70 लाख पौण्ड से 740 लाख पौण्ड	$10\frac{1}{2}$ गुणा

(4) **व्यापार में क्रान्ति तथा नवीन व्यापारिक नीति**—बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा लागत में कमी से आन्तरिक तथा विदेशी बाजारों में इङ्गलैण्ड का उत्पादन बड़ी मात्रा में खपने लगा और निर्यात में वृद्धि हुई। साथ ही कच्चे माल की पूर्ति के लिये विदेशों से आयात बढ़ने लगा। व्यापार की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ। जहां क्रांति के पूर्व विदेशी व्यापार में धनी वर्गों के प्रयोग की विलासिता की वस्तुओं की प्रधानता थी, वहाँ क्रान्ति के बाद जन साधारण के दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का व्यापार बढ़ा। इङ्गलैण्ड अपने उद्योगों के लिये कच्चे माल तथा खाद्यान्न का आयातक और बदले में निर्मित वस्तुओं, जहाजी और वित्तीय सेवाओं का निर्यातक हो गया।

सरकार की व्यापारिक नीति वाणिज्यवादी नीति थी और इङ्गलैण्ड के उद्योगों को संरक्षण प्राप्त था, पर क्रान्ति के बाद वाणिज्यवादी नीति का परित्याग कर स्वतंत्र व्यापार नीति (Laissez Faire Policy) का अनुसरण किया गया। परिणामस्वरूप इङ्गलैण्ड आर्थिक जगत में सर्वश्रेष्ठता प्राप्त करने में समर्थ हुआ।

(6) **नये नये उद्योगों का विकास**—औद्योगिक क्रान्ति में नई उत्पादन विधियों का प्रयोग होने से औद्योगिक क्षेत्रों में विविधता का विकास हुआ। लोहा, सूती वस्त्र उद्योग तथा ऊन उद्योग के विकास यंत्रों के अधिकाधिक उपयोग इंजिनियरिंग और रसायनिक उद्योगों का भी विकास हुआ। इसके अलावा अनेक सहायक और पूरक उद्योग खोले जाने लगे। इस तरह औद्योगिक क्रान्ति से अनेक नये २ उद्योगों का विकास सम्भव हो सका और औद्योगिक क्षेत्र में विविधता आई।

(7) **व्यवसायिक संस्थाओं की प्रगति**—बड़े पैमाने की उत्पत्ति, विविधता

तथा व्यापारिक क्रान्ति से बड़ी मात्रा में पूंजी तथा व्यवसायिक जोखिमों से सुरक्षा के लिये बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियों का विकास हुआ। वैंकिंग कम्पनियों ने पूंजी निर्माण, धन हस्तान्तरण और विनियोग में सहयोग दिया। बीमा कम्पनियों ने आग, जीवन तथा सामुद्रिक जोखिमों से सुरक्षा की व्यवस्था कर साहसियों का हौसला बढ़ाया। व्यापार के भी थोक एवं फुटकर आदि कई रूप हो गये।

(8) **यातायात के साधनों का विकास**—बड़े पैमाने पर उत्पत्ति तथा व्यापारिक विस्तार से 18वीं और 19वीं शताब्दी में यातायात के साधनों का तीव्र गति से विकास हुआ। कारखाना प्रणाली, व्यापार तथा यातायात के साधनों का विकास परस्पर एक दूसरे के विकास से प्रभावित हुए। सड़क, नहर, रेल तथा जहाजरानी का विकास और औद्योगिक क्रान्ति का कारण और परिणाम कहा जाय तो भी कोई अतिश्योक्ति न होगी। सुविधाजनक, मितव्ययता पूर्ण, तीव्रगामी तथा सुरक्षित यातायात व्यवस्था औद्योगिक क्रान्ति की महत्वपूर्ण देन थी।

(9) **श्रम और पूंजी सम्बन्धों में नया मोड़**—बड़े पैमाने पर मशीनों के उपयोग तथा कारखाना प्रणाली से श्रम और पूंजी में सामिप्य समाप्त होने लगा। पूंजीपति श्रम पर हावी होने लगे। श्रमिकों को अपने रोजगार के लिए पूंजिपतियों का मुंह ताकना पड़ता था। पर साथ ही अधिकाधिक संख्या में श्रमिकों के एक ही स्थान पर एकत्रित होने से संगठित होकर अपने अधिकारों की सुरक्षा की प्रवृति प्रबल होने लगी। अतः अधिक मजदूरी, काम के घन्टों में कमी, सुविधाओं की वृद्धि तथा शोषण से मुक्ति के लिए श्रमिक संघों (Trade Unions) का गठन होने लगा। अब दोनों सामुहिक हित के स्थान पर निजी हितों की सुरक्षा के प्रति अधिक जागरूक हुए।

(10) **पूंजीपतियों का औद्योगिक एकाधिकार तथा बढ़ता प्रभाव**—औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व व्यापारिक वर्ग उद्योगपतियों पर हावी था और व्यापारिक वर्ग अधिक प्रभावशाली था, पर औद्योगिक क्रान्ति में बड़े उद्योगों की स्थापना तथा विकास विशाल पूंजी पर निर्भर था जो पूंजीपति तथा उद्योगपतियों द्वारा ही उपलब्ध की जा सकती थी। अतः विशालकाय कारखानों और उत्पादन की इकाइयों पर पूंजीपतियों का एकाधिकार हो गया। धीरे-धीरे आर्थिक और राजनैतिक सत्ता का केन्द्रीकरण पूंजीपति वर्ग के हाथों में हो गया। वे समाज में प्रभावशाली हो गये। आपसी प्रतियोगिता को समाप्त करने की कोशिश की प्रवृत्ति ने उन्हें संगठित होकर अधिक प्रभावशाली बना दिया।

(11) **नये नये क्षेत्रों का विकास**—औद्योगिक क्रान्ति से नये क्षेत्रों की प्राकृतिक सम्पदा और औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त हुआ। क्रांति से पूर्व दक्षिणी-पूर्वी भाग अधिक महत्वपूर्ण थे, पर औद्योगिक क्रान्ति से लोहे व कोयले के क्षेत्रों का विकास तथा उन क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना से उनका महत्व जो पहले

नगण्य था–बहुत बढ़ गया । लंकाशायर, यार्कशायर, लेनार्कशायर, दक्षिणी वेल्स, ग्लासगो, एवरडीन, और एडिनवरा क्षेत्रों का महत्व बहुत बढ़ गया । इस तरह औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरुप उत्तरी-पश्चिमी भागों का आर्थिक महत्व बढ़ गया और अधिक जनसंख्या बसने लगी ।

(12) **नगरों का विकास**—फैक्टरी प्रणाली, उद्योगों के केन्द्रीकरण और रोजगार की तलाश में गांवों से औद्योगिक क्षेत्रों की ओर बसने की प्रवृति से नगरों का विकास सम्भव हुआ, पर अत्यधिक भीड़ और अव्यवस्थित ढंग से बसने के कारण गंदी वस्तियों का निर्माण हुआ जिनमें स्वच्छता, रोशनी और पेयजल की अव्यवस्था से अस्वास्थ्यप्रद वातावरण, बीमारियों का प्रकोप, अधिक मृत्यु दर के कारण बन गये ।

(13) **बड़े पैमाने पर कृषि**—औद्योगिक क्रान्ति मे जहां एक ओर कृषि से उद्योगों की ओर आकर्पित होने से जनभार में कमी हुई वहां दूसरी ओर अधिक उत्पादन की आवश्यकता महसूस हुई । श्रमिकों की कमी के कारण कृषि में यंत्रीकरण अधिक सुविधाजनक हो गया और कृषि में व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाया जाने से बड़े पैमाने पर कृषि की जाने लगी । इस तरह औद्योगिक क्रांति से कृषि क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ । कृषि में वैज्ञानिक पद्धतियाँ अपनाई जाने लगीं । इससे ग्रामीण-कृषि क्षेत्र में भी समृद्धि का द्वार खुला ।

(14) **रोजगार में वृद्धि तथा श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार**—औद्योगिक क्रान्ति से उत्पादन में विविधता, सहायक और पूरक उद्योगों के विकास परिवहन व व्यापार में क्रांति से अर्थव्यवस्था में रोजगार का आधार अधिक विस्तृत हो गया । उत्पादन वृद्धि के लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई । बैंकिंग, बीमा, उद्योग, यातायात और व्यापार सभी क्षेत्रों में अधिक लोगों को रोजगार दिया जाने लगा ।

अधिक रोजगार के कारण तथा मशीनों और यन्त्रों से उनकी कार्य कुशलता में वृद्धि से उनकी आय में वृद्धि हुई । बड़े पैमाने की उत्पत्ति से वस्तुओं की लागत में कमी और आय में वृद्धि के संयोग से श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और उनके जीवन स्तर में वृद्धि हुई ।

(15) **उद्योगों का स्थानीयकरण**—औद्योगिक क्रांति से पूर्व उद्योग छोटी-छोटी उत्पादन इकाइयों के रूप में विकेन्द्रित थे, परन्तु औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने की उत्पत्ति, फैक्टरी प्रणाली तथा कारखानों में कोयले की शक्ति के उपयोग के कारण, उद्योग कोयला क्षेत्रों, नदियों के किनारे तथा व्यापारिक केन्द्रों में स्थापित होने लगे । यातायात और परिवहन के साधनों ने केन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया । इस तरह औद्योगिक क्राँति के परिणामस्वरूप उद्योगों के स्थानीयकरण को बढ़ावा मिला ।

(16) **आर्थिक असमानता**—एक ओर औद्योगिक क्रांति से पूंजीपति वर्ग

को उद्योगों से अप्रत्याशित लाभ हुआ और एकाधिकारी प्रवृतियों से बड़े पैमाने पर धन का सृजन हुआ वहां दूसरी ओर श्रमिकों के स्थान पर मशीनों के उपयोग से उनकी मोल भावं करने की शक्ति समाप्त सी हो गई और उनका शोषण पूंजीपति वर्ग तथा समृद्ध वर्ग द्वारा होने लगा। इससे राष्ट्रीय धन का असमान वितरण हुआ और गरीबी तथा अमीरी की खाई को अधिक गहरी एवं विस्तृत कर दिया जिससे समाज में वर्ग संघर्ष का जन्म हुआ।

(17) **आर्थिक संकटों की आवृति**—औद्योगिक क्रांति में बड़े पैमाने की उत्पत्ति, असमान वितरण और एकाधिकारी प्रवृतियों से उत्पादकों और उपभोक्ताओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाप्त हो गया और उत्पादन तथा उपभोग में असन्तुलन होने से व्यापार चक्रों की पुनरावृति होने लगी। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक संकट एक अनिवार्य अंग के रूप में सामने आया। 1825, 1837, 1847, 1857, 1866, 1873, 1888, 1890, 1900, 1907, 1921 और 1930 की आर्थिक मंदियाँ औद्योगिक क्रांति में संकटों की आवृति के उज्ज्वलन्त उदाहरण हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण औद्योगिक क्रांति के आर्थिक प्रभावों का दिग्दर्शन करता है और यह संकेत करता है कि इस क्रांति ने भौतिक समृद्धि का सूत्रपात किया और न केवल इङ्गलैण्ड की वल्कि विश्व की समुचित आर्थिक उत्पादन प्रणाली ने नये युग का सूत्रपात किया।

(ब) औद्योगिक क्रांति के सामाजिक प्रभाव
(Social Effects)

आर्थिक प्रभावों के समान ही औद्योगिक क्रांति के सामाजिक प्रभाव भी महत्वपूर्ण थे। जहां एक ओर औद्योगिक क्रांति से भौतिक समृद्धि के नये युग का मार्ग प्रशस्त हुआ वहाँ दूसरी ओर सामाजिक उत्पीड़न, वर्ग संघर्ष और शोषण की शुरूआत हुई। इस तरह औद्योगिक क्रांति के प्रभावों में आर्थिक उत्थान और सामाजिक दुःखों का विचित्र संयोग था। सामाजिक प्रभावों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) **मध्यम वर्ग का उदय**—औद्योगिक क्रांति से पूर्व समाज में गरीब और अमीर दो ही वर्ग प्रमुख थे पर औद्योगिक क्रांति से बड़े उद्योगों के साथ सहायक तथा पूरक छोटे उद्योगों का भी विकास हुआ,। मध्यम वर्ग के लोगों ने व्यवसायिक कार्यो और सहायक उद्योगों से अपने विकास का मार्ग प्रशस्त किया। वे श्रमिक जो आर्थिक दृष्टि से थोड़े ही सम्पन्न थे उन्होंने अपने स्वतन्त्र व्यवसायों की शुरुआत की। इस तरह वे लोग जो न तो मजदूरी कर सकते थे और न बड़े २ उद्योग ही स्थापित कर सकते थे उन्होंने व्यापारिक कार्यों, दलाली, ठेकेदारी, तथा अन्य व्यवसायिक संस्थाओं से नये वर्ग का निर्माण किया। अब समाज में तीन वर्ग वन गये। मध्यम वर्ग भी समाज का महत्वपूर्ण अंग माना जाने लगा।

(2) **वर्ग संघर्ष का जन्म**—राष्ट्रीय उत्पादन के असमान वितरण, पूंजीपति वर्ग की अवांछनीय शोषण प्रवृतियों तथा श्रमिकों के उत्पीड़न से समाज में दो विरोधी वर्गो में असन्तोष की ज्वाला प्रवल होती गई. और वर्ग संघर्ष को प्रोत्साहन मिला। धनी और निर्धन के बीच बढ़ती खाई ने एक दूसरे के प्रति दुर्भावना और प्रतिशोध जागृत किया। पूंजीवाद और साम्यवाद उसी के दो रूप हैं।

(3) **जनसंख्या में वृद्धि**—उद्योगों के विकास, रोजगार के साधनों में वृद्धि और आय में प्रगति से जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। 1751 में ब्रिटेन की जनसंख्या 55 लाख थी वह 1801 में बढ़कर 90 लाख, 1851 में 180 लाख 1901 में 370 लाख और 1951 में 520 लाख हो गई। इस तरह जहां 1751-1801 में जनसंख्या में 50% वृद्धि हुई वहां 1801–1851 और 1851–1901 की अवधियों में क्रमशः 100, 100 प्रतिशत वृद्धि हुई। इस तरह पिछले 100 वर्षो में जनसंख्या में चौगुणी वृद्धि आर्थिक समृद्धि का ही परिणाम था।

(4) **श्रमिकों की स्वतन्त्रता का ह्रास**—औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व उत्पादन की विकेन्द्रित एवं लघुस्तरीय पद्धति में श्रमिकों को स्वच्छन्द वातावरण में कार्य की स्वतन्त्रता थी पर औद्योगिक क्रान्ति के कारण कारखाना प्रणाली में श्रमिकों को अब कठोर नियंत्रण से काम करना पड़ता था। श्रमिक, मशीनों के उपयोग के कारण पूंजीपतियों की दया पर आश्रित थे। प्रो० आग एण्ड शार्प के अनुसार "अब श्रमिक संपत्तिहीन, मुद्राहीन और गृहहीन प्रतिहारी मात्र रह गये थे।"

(5) **श्रमिकों का शोषण**—श्रमिकों के सम्पत्तिहीन, मुद्राहीन और गृहहीन होने से रोजगार के लिए पूंजीपति की दया पर आश्रित रहना पड़ता था। बढ़ती हुई जनसंख्या, मशीनों के उपयोग और औद्योगिक केन्द्रीकरण के कारण शोषण करने में अधिक सक्षम थे। स्त्रियों और बच्चों का शोषण चर्म सीमा पर था। 18-18 घंटे प्रतिदिन काम लेना, भोजन के लिए अवकाश न देना, बच्चों को रात्रि में नींद आ जाने से मशीनों से उनके अंग-भंग हो जाना तथा उन्हें पशुओं की तरह एक बंद कमरे में रखना सामान्य था। इसका प्रो. नोवेल्स ने बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

(6) **सामाजिक उत्पीड़न :**—औद्योगिक क्रान्ति की सामाजिक लागत बहुत ऊंची थी। क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्षों में पूंजीपति वर्ग द्वारा श्रमिकों का शोषण,स्वतन्त्रता का हनन, भीड़, भावपूर्ण दूषित वातावरण, महंगी वस्तुएं, असमान वितरण आदि से समाज के निम्न वर्गों को अधिक कष्ट भोगने पड़े।

सरकार की निरपेक्षता की नीति ने स्थिति और भी शोचनीय बनादी थी। जनस्वास्थ्य और नैतिकता की समस्या ने औद्योगिक केन्द्रों में नागरिक वीजन व्यतीत करने को वाध्य किया। घरेलू खुशियां समाप्त हो गईं और परिवार के सब सदस्यों को एक कमरे में वन्द होकर जीवन यापन करना पड़ा।

(7) **पारिवारिक जीवन का ह्रास**—कारखाना प्रणाली में श्रमिकों को निश्चित समय में काम करने से स्त्रियों और बच्चों से अलग-अलग रहना पड़ता था। काम पाने की इच्छा से यातायात के साधनों में विकास से श्रमिक गतिशीलता बढ़ी और संयुक्त परिवार प्रणाली का पतन प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में पारिवारिक जीवन की समाप्ति में कुछ कठिनाई अवश्य आई पर नियमित रूप में काम करने से आदत पड़ने और अपने पैरों पर खड़े होने की भावना से उसका नैतिक उत्थान हुआ। अब पारिवारिक उत्थान का स्थान व्यक्तिगत उत्थान की भावना ने ले लिया।

(8) **जन-स्वास्थ्य एवं नैतिकता की समस्या**—अधिक समय तक विना विश्राम करने तथा अस्वास्थ्यप्रद दूषित वातावरण में काम करने, गन्दी बस्तियों में रहने तथा शुद्ध पेयजल की व्यवस्था न होने से अनेकानेक बीमारियों का प्रकोप बढ़ा। इससे जन स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। इसके साथ ही भौतिक समृद्धि में नैतिक बुराइयां बढ़ने लगीं। अनैतिकता, व्यभिचार तथा स्वार्थपरायणता ने स्थिति को बिगाड़ने में मदद की।

(9) **ग्रामीण जनसंख्या का ह्रास**—औद्योगिक क्रान्ति से औद्योगिक केन्द्रों और नगरों के विकास में प्रोत्साहन मिला। ग्रामीण जनसंख्या रोजगार पाने की दृष्टि से शहरों की ओर आकर्षित हुई। इससे ग्रामीण जनसंख्या का शनैः शनैः ह्रास होने लगा और गांव उजड़ने लगे। जहाँ 1700 में जनसंख्या का विभाजन ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में क्रमशः 77% और 23% था वहां 1800 में क्रमशः 28% और 72% तथा 1900 में क्रमशः 20% और 80% हो गया। इस तरह बड़ी तीव्र गति से जनसंख्या का शहरीकरण हुआ और 100 वर्षों में स्थिति उल्टी हो गई।

(10) **सामाजिक चेतना**—औद्योगिक क्रान्ति ने समाज में वर्ग संघर्ष और मध्यम वर्ग को जन्म दे समाज में ऐसी सामाजिक चेतना जागृत की जिसने व्यक्तिगत सम्मान और व्यक्ति के मूलभूत अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक बना दिया। नोवेल्स के अनुसार "यदि फ्रांस की राज्य क्रांति ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और समानता का पाठ पढ़ाया तो इङ्गलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का क्रियात्मक उपयोग संभव बना दिया।"

(11) **ट्रक-प्रथा तथा पूंजीपतियों का दबाव**—औद्योगिक क्रांति के कारण पूंजीपतियों ने श्रमिकों का हमेशा अपने दबाव में लाने के लिए तथा उन्हें मुद्राहीन और सम्पत्तिहीन बनाने के लिए ट्रक-प्रथा का विकास किया जिसमें श्रमिकों को मजदूरी उद्योगपतियों द्वारा खोली गई दूकानों से वस्तुओं के रूप में दी जाती थी। वस्तुयें उधार भी वेची जाती थीं और उद्योगपतियों के मकानों में ही रहने की व्यवस्था की जाती थी जिससे उन्हें अपनी समस्त आय को खर्च करना स्वाभाविक सा था। इससे श्रमिक ऋणी, सम्पत्तिहीन, मुद्राहीन होकर हमेशा के लिए उनकी दया पर आश्रित हो

गये । यह भी शोषण का विचित्र रूप था ।

इस पर औद्योगिक क्रान्ति ने सामाजिक बुराइयों को अधिक उग्र बनाया । यद्यपि कुछ औद्योगिक बुराइयां कारखाना प्रणाली से पहले ही प्रचलित थीं परन्तु औद्योगिक क्रान्ति ने उन्हें प्रकट रूप में ला दिया । पर साथ ही उनके आर्थिक जीवन स्तर में सुधार, संगठन की प्रवृति तथा अपने मौलिक अधिकारों के प्रति जागरूकता से आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ । कुशलता में वृद्धि, व्यक्तिगत उत्थान और सामाजिक चेतना का श्रेय औद्योगिक क्रान्ति को जाता है ।

(स) औद्योगिक क्रांति के राजनैतिक प्रभाव
(Political Effects of Industrial Revolution)

औद्योगिक क्रान्ति ने न केवल आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र को प्रभावित किया वल्कि राजनैतिक प्रभाव भी उतने ही महत्वपूर्ण थे । सामाजिक शोषण के विरुद्ध अधिनियम, संसदीय सुधार, स्वतन्त्र व्यापार नीति, उपनीवेशवाद की सफलता और राजनैतिक सुदृढ़ता औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम था । राजनैतिक प्रभावों का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन संक्षेप में इस प्रकार है—

(1) **राजनैतिक सुदृढ़ता**—देश में औद्योगिक क्रान्ति से राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, यातायात के साधनों का विकास और व्यापारिक क्रान्ति होने से आर्थिक स्थायित्व से राजनैतिक सुदृढ़ता को बल मिला । अपनी विस्तारवाद की नीति में सफलता आर्थिक साधनों की पर्याप्तता पर निर्भर थी ।

(2) **उपनिवेशवाद की सफलता**—औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही लोहे और कोयले के बल पर ब्रिटेन अपनी आर्थिक प्रभुसत्ता कायम कर उपनिवेशवाद की दौड़ में अपने निकटतम प्रतिद्वन्दियों फ्रांस, हालैण्ड, जर्मनी और पुर्तगाल को मात दे सका । इस आर्थिक सुदृढ़ता के कारण ही ब्रिटेन विश्व के चौथाई भाग पर अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ । एक ऐसा महान् साम्राज्य जिसमें सूर्य कभी भी अस्त नहीं होता था । विश्व इतिहास में सम्भवतः ऐसा विशाल साम्राज्य पहला तथा अन्तिम उदाहरण है ।

(3) **राजनैतिक चेतना**—समाज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत अधिकारों की माँग औद्योगिक क्रान्ति की देन थी । इससे उनमें राजनैतिक चेतना जागृत हुई । नये औद्योगिक केन्द्रों की जनता, महाजन, व्यापारिक, श्रमिक सब अपने हितों की रक्षा के लिए राजनैतिक प्रतिनिधित्व की मांग करने लगे ।

(4) **संसदीय सुधार**—अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटिश संसद में केवल भूमिपतियों का ही प्रभाव था पर औद्योगिक क्रान्ति से व्यापारी, उद्योगपति, श्रमिक तथा मध्यमवर्गीय जनता की अपने प्रतिनिधित्व की मांग प्रबल होती गई । फलस्वरूप 1832 में प्रथम सुधार अधिनियम पारित हुआ । अब राजनैतिक क्षेत्र में

उद्योगपति अधिक हावी हो गये ।

(5) **कारखाना अधिनियम एवं स्वतन्त्र व्यापार नीति**—औद्योगिक क्रान्ति से कारखाना प्रणाली में अनेक कुप्रभाव तथा शोषण प्रक्रियाएं प्रारम्भ हुईं । इन्हें दूर करने के लिए कारखाना अधिनियम (Factory Acts) पारित किये गए जिनमें कारखाना अधिनियम 1802, 1819, 1833, 1844, 1847, 1887, 1901, 1937, 1959 और 1961, महत्वपूर्ण हैं । इसके अलावा खान अधिनियम 1872 तथा 1954 भी महत्वपूर्ण हैं ।

इसके अलावा अपनी आर्थिक शक्ति, प्रभुसत्ता और प्रतिस्पर्द्धात्मक कुशलता के कारण संरक्षण की नीति का परित्याग कर स्वतन्त्र व्यापार नीति का अनुसरण किया । इस तरह यह राजनैतिक प्रभुसत्ता स्थापित करने में सहयोगी सिद्ध हुई ।

(6) **नेपोलियन पर विजय**—इङ्गलैण्ड अपनी आर्थिक शक्ति तथा औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही नेपोलियन पर विजय पा सका । जहाँ एक ओर इङ्गलैण्ड को युद्ध के लिए 60 करोड़ पौण्ड का सार्वजनिक ऋण मिल पाया और दूसरी ओर नेपोलियन विरोधी यूरोपीय राष्ट्रों को वस्तुओं का निर्यात किया यह सब औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही सम्भव हो सका था । नेपोलियन का पतन आर्थिक सुदृढ़ता और वृद्धि से ही सम्भव हुआ ।

(7) **अन्तर्राष्ट्रीय नेतृत्व**—औद्योगिक क्रान्ति से जब ब्रिटेन की आर्थिक एवं राजनैतिक प्रभुसत्ता विश्व पर हावी हो गई तो विश्व के अनेक राष्ट्र ब्रिटेन की सहानुभूति के लिए लालायित और अपनी समस्याओं के समाधान के लिए ब्रिटेन के मार्ग दर्शन की अपेक्षा करने लगे । एक छोटा सा ब्रिटेन जैसा द्वीप विश्व का एक महान् राष्ट्र बन बैठा । वह अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु बन गया और अपनी विचारधारा, संस्कृति एवं सभ्यता का प्रसार कर अन्तर्राष्ट्रीय नेतृत्व प्राप्त कर लिया । वह आर्थिक जगत का भाग्य निर्माता तथा राजनैतिक क्षेत्र का अधिष्ठाता बन बैठा ।

निष्कर्ष—इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिणाम इतने महत्वपूर्ण थे कि 19 वीं शताब्दी में इङ्गलैण्ड आर्थिक जगत का भाग्य निर्माता, सम्पूर्ण विश्व व्यापार और औद्योगिक उत्पादन का केन्द्र बिन्दु और राजनैतिक नेता बन बैठा । आर्थिक और राजनैतिक प्रभुसत्ता से सम्पूर्ण विश्व पर हावी हो गया । इङ्गलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामों का उल्लेख श्रीमती नोवेल्स (Knowles) के शब्दों में "इङ्गलैण्ड विश्व का अग्रदूत, विश्व का माल वाहक, विश्व का जहाज निर्माता, विश्व का बैंकर, विश्व का उत्पादन केन्द्र, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का समाशोधन तथा विकासगृह बन गया ।" आर्थिक दृष्टि से समृद्धि के प्रारम्भिक वर्षों में सामाजिक उत्पीड़न की प्रक्रिया प्रबल रही । संक्रमण काल में इन बुराइयों का पाया जाना स्वाभाविक था । पर बाद में एक सुदृढ़ औद्यो-

गिक श्रमिक वर्ग अपनी आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति में सुधार लाने में समर्थ हुआ। अपने विस्तृत साम्राज्य से विश्व में ब्रिटेन की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध हो चुकी थी। इस तरह 19वीं शताब्दी यूरोप के किनारे के इस पिद्दी द्वीप की प्रधानता और विश्वव्यापी प्रभाव की शताब्दी थी जिसने न केवल ब्रिटेन की आर्थिक, सामाजिक और राज-नैतिक जीवन को प्रभावित किया वल्कि सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक क्रान्ति का शुभारम्भ हुआ।

संक्षेप में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामों से इङ्गलैण्ड में नई जनता, नये वर्ग, नई नीतियां, नई समस्यायें और नये साम्राज्यों का उदय हुआ और इङ्गलैण्ड विश्व में आर्थिक और राजनैतिक प्रभुसत्ता कायम कर अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु और महान् नेता वन गया। आर्थिक समृद्धि को सामाजिक बुराइयों ने कम महत्वपूर्ण वनाने में योग दिया।

————

अध्याय 2

उपनिवेशीय-विस्तार के आर्थिक पहलू

(Economic Aspects of Colonial Expansion)

औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन में विविधता तथा बड़े पैमाने की उत्पत्ति को जन्म दिया। उससे उद्योगों के लिये कच्चे माल की माँग में वृद्धि, निर्मित माल के विस्तृत बाजार की आवश्यकता, वाणिज्य तथा परिवहन क्षेत्र में नई क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। इस तरह औद्योगिक तथा व्यापारिक क्रान्ति के सामूहिक प्रभाव से उपनिवेशों के महत्व में वृद्धि हुई। विश्व की सभी बड़ी शक्तियों में उपनिवेशों की स्थापना तथा उनके विस्तार के लिए लालसा जागृत हुई। ब्रिटेन की भी उपनिवेशों के प्रति रुचि जागृत हुई। जो ब्रिटेन 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उपनिवेशों को भार-स्वरूप मानता था वही इस शताब्दी के अन्त तक उपनिवेशों को अमूल्य सम्पत्ति मानने लगा क्योंकि अब उपनिवेश कच्चे माल के पूर्तिकर्ता, खाद्यान्न के निर्यातक ही न होकर निर्मित माल के विस्तृत बाजार, पूंजी विनियोग के क्षेत्र तथा रोजगार के स्रोत बन गये थे। इस तरह उपर्युक्त आर्थिक पहलुओं की पृष्ठभूमि के विस्तृत अध्ययन के लिये उपनिवेशवाद के इतिहास को मुख्य चार भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

(1) 1603-1776 तक पुरातन उपनिवेशवाद पद्धति।
(2) 1776-1870 तक उपनिवेशीय निर्बाध व्यापार काल।
(3) 1870-1895 तक विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का प्रतिक्रिया काल।
(4) 1895-1920 तक रचनात्मक साम्राज्यवाद काल।

1603–1776 पुरातन उपनिवेश पद्धति
(Old Colonial System)

पुरातन उपनिवेश पद्धति में उपनिवेशों को ब्रिटेन की निजी सम्पत्ति मान कर उनका उपयोग ब्रिटेन के हितों में किया जाता था। उपनिवेश स्थापना के मूल में साम्राज्य को आत्मनिर्भर बनाने का उद्देश्य निहित था। 18वीं शताब्दी में औद्योगिक कच्चे माल की पूर्ति करने के लिये उपनिवेशों को टिम्बर, फ्लेक्स, कपास.

रेशम तथा अन्य माल उत्पादन करने के लिये आर्थिक सहायता तथा प्रोत्साहन दिया गया। उपनिवेशों को किसी भी ऐसी वस्तु का निर्माण नहीं करने दिया जाता था जो ब्रिटेन के उद्योगों के लिये प्रतिस्पर्द्धा का कारण बन उन्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्षति पहुंचावे। इसके लिये नेवीगेशन एक्टस तथा व्यापारिक अधिनियम पारित किये गये। उपनिवेशों का कार्य ब्रिटेन के उद्योगों के लिये कच्चे माल, खाद्यान्न तथा अन्य कृषि-वस्तुओं का उत्पादन करना तथा ब्रिटेन के निर्मित माल की खरीद करना था। उपनिवेश ब्रिटेन की जागीर होने के कारण उन्हें अन्य राष्ट्रों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध रखने का अधिकार नहीं था यहां तक कि व्यापार ब्रिटिश जहाजों से इंगलैंड के माध्यम से ही सम्भव था। इस तरह उपनिवेशों का आर्थिक शोषण तथा सीमित स्वतंत्रता ही इस नीति का मूल आधार था।

उपनिवेशों को धार्मिक क्षेत्र तथा राजनैतिक क्षेत्र मे पर्याप्त स्वतंत्रता दी गई थी। इस उदारता की नीति से उपनिवेशों में सशक्त राजनैतिक जीवन तथा राष्ट्रीयता की भावना प्रबल हुई। अतः 18वीं शताब्दी में अनेक उपनिवेशों में ब्रिटेन के खिलाफ विद्रोह भड़का पर उन्नीसवीं शताब्दी में उपनिवेशों की स्वामीभक्ति उल्लेखनीय रही।

इस पुरातन पद्धति में दो प्रकार के उपनिवेश थे। पहले वे उपनिवेश जो व्यापारिक महत्व के थे। इनमें भारत, पश्चिमी अफ्रीका तथा कुछ वेस्ट इन्डीज द्वीप सम्मिलित थे। दूसरे वे उपनिवेश जो किसी नये क्षेत्र तथा निर्जीव क्षेत्रों में अपने लोगों का विस्तार करने के लिये थे। इनमें वर्जिनिया, पश्चिमी अफ्रीका आदि थे।

इंगलैंड ने उपनिवेशों में कर लगाया जिसकी अनेक उपनिवेशों में प्रतिक्रिया हुई। इस तरह अमेरिका में विद्रोह भड़का और इंगलैंड के 13 उपनिवेशों का वहां समापन हो गया। पर इंगलैंड को यह सान्त्वना थी कि उसने अपने निकटतम व्यापारिक प्रतियोगियों—फ्रांस तथा डच लोगों को परास्त कर दिया था।

1783–1870 उपनिवेशीय निर्बाध व्यापार नीति
(The Period of Drift and Distrust)

अमेरिका के 13 उपनिवेशों के सफल विद्रोह से ब्रिटिश सरकार ने अपनी उपनिवेशिक नीति पर पुनर्विचार करना आवश्यक समझा। उपनिवेशों के प्रति अब घृणा, उदासीनता तथा अविश्वास उत्पन्न हो गया था। उपनिवेशों के सम्बन्ध में निराशा का विचार व्यक्त हो रहा था कि इंगलैंड उनके बिना ही अच्छा है तथा अपनी एकाधिकारी शक्ति के कारण विना उपनिवेशों के भी समृद्धि की ओर अग्रसर हो सकेगा। इसके साथ दास प्रथा की समाप्ति के शुरू किये गये आन्दोलन से पश्चिमी अफ्रीका का कुछ भी महत्व नहीं रह जाता था। इसी प्रकार दक्षिण-अफ्रीका उपनिवेश का महत्व भी कम ही रह गया था। 1807 में दास व्यापार की

समाप्ति तथा 1833 में दास प्रथा की समाप्ति से उपनिवेशों के लोगों से विरोध बढ़ता गया। 1865 में एक रॉयल कमीशन ने एक प्रस्ताव पारित किया कि पश्चिमी अफ्रीका में ब्रिटिश उपनिवेशों का विस्तार करना बुद्धिमत्ता पूर्ण नहीं है तथा उस देश के निवासियों को प्रशासन संभलाना उचित है। इस तरह एक तरफ उपनिवेशों के समापन की विचारधारा प्रबल थी वहां दूसरे वर्ग के वेकफिल्ड, मोल्सवर्थ, बुलर तथा अन्य प्रमुख व्यक्ति उपनिवेशों के महत्व की वकालात कर रहे थे।

इस पेशकश की स्थिति में बुद्धिजीवी वर्ग यह महसूस कर रहा था कि उपनिवेशवाद की संकड़ी सीमाओं में वरीयता (preferences) की नीति अनुपयुक्त है। शनैः शनैः इन वरीयताओं का एक एक कर के समापन हो गया और 1842 से 1860 के बीच निर्वाध व्यापार नीति का अनुसरण ही उपनिवेश नीति का आधार रहा। इसे उपनिवेश निर्वाध व्यापार नीति काल कहा जाता है। अब उपनिवेश भार स्वरूप गिने जाने लगे। उन्हें स्व-सरकार (Self Government) का अधिकार दे दिया गया जिससे वे पूर्ण स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त कर सकें। 11 फरवरी 1850 के टाईम्स ने इसे "an inevitable event" बताया था।

1870–1895 का विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के प्रति प्रतिक्रिया का काल
(Period of reaction against foreign competition)

इंगलैंड के इतिहास में 1870-1895 का काल उपनिवेशवाद के प्रति निराशाजनक मनोवृत्ति में नयी आशा के संचार का काल कहा जा सकता है। निर्मित माल के लिये बाजार के रूप में उपनिवेशों का महत्व 1870 के बाद बहुत बढ़ गया। फ्रान्स अलसासे (Alsace) तथा लॉरिन (Lorraine) की क्षति की पूर्ति के लिये एशिया तथा अफ्रीका में अपने उपनिवेशों के विस्तार की नीति का अनुसरण कर रहा था। इसी प्रकार से जर्मनी की राष्ट्रवाद नीति तथा उपनिवेशों में लाभ की अनुभूति से वह भी अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने को कृत संकल्प था। जहां रेल तथा सामुद्रिक जहाजों ने ब्रिटेन को उसके उपनिवेशों के अधिक नजदीक ला दिया था वहां इनके विकास ने विश्व के अन्य देशों में भी दूरी समाप्त कर उन्हें एक दूसरे के समीप ला दिया। वेलजीयम, जो कि एक औद्योगिक देश बन गया था, अपने उत्पादन के लिये बाजार की तलाश में था। उपनिवेशों की स्थापना की होड़ में ब्रिटेन अपने विस्तार न करने की नीति को त्याग कर पुनः उपनिवेशों के विस्तार में जुट गया।

संरक्षणवादी राष्ट्रों के प्रति ब्रिटेन सशंकित था कि वे अपने उपनिवेशों में स्वतंत्र व्यापार नीति (Open door policy) का अनुसरण न कर ब्रिटेन के हितों को बाधा पहुँचायेंगे। अतः इस करण से भी ब्रिटेन अपने उपनिवेशों के विस्तार में सतत प्रयत्नशील था।

1873-1886 में अवसाद (Depression) से अति उत्पादन (Over Production) की स्थिति में अमेरिका में पर्याप्त निर्मित माल तथा जर्मनी द्वारा संरक्षण नीति के कारण ब्रिटेन के माल की मांग समाप्त हो गई। ऐसी परिस्थिति में ब्रिटेन तथा उपनिवेशों के मध्य कस्टम यूनीयन बनाकर वरीयता के आधार पर सरक्षणवादी राष्ट्रों के विरुद्ध मोर्चा तैयार करना था। 1887 में प्रथम उपनिवेशों का सम्मेलन हुआ जिसका विवरण The Times में इस प्रकार दिया गया : "In these communities, as we are all beginning to feel, there is a great reserve for the Mother Country."

इस समय जनता में उपनिवेशों के प्रति रुचि प्रबल हो रही थी। साथ ही कुछ व्यापारिक कम्पनियां काफी सक्रिय थीं। ईस्ट इण्डिया कं., रोयल अफ्रीकन कं., दी लेवेन्ट कम्पनी, और हडसन वे कम्पनी आदि ने सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी से जो व्यापारिक विस्तार किया था उनमें से पहली दो ने अपने व्यापारिक क्षेत्रों को उपनिवेशों के रूप में परिवर्तित कर लिया था। 19वीं शताब्दी की स्वतंत्र व्यापार नीति के कार्यान्वयन के समय भी नये क्षेत्रों में उपनिवेशवाद के विस्तार के लिये उपनिवेश कम्पनियां बनाई गईं जिनमें कनाडा कं० (1825) साउथ आस्ट्रेलिया कं० (1834) तथा न्यूजीलैंड कं० (1837-1850) के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसके अलावा रेलवे तथा सामुद्रिक जहाजों के विकास ने प्रायद्वीपों के विकास की सम्भावनाओं का मार्ग खोल दिया और नई कम्पनियों का निर्माण किया गया। 1881 में ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो कम्पनी, 1882 में नेशनल अफ्रीकन कम्पनी 1886 में ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका कम्पनी तथा 1889 में ब्रिटिश साउथ अफ्रीक कम्पनी बनाई गई जिससे रचनात्मक साम्राज्यवाद का मार्ग प्रशस्त हो रहा था जबकि देश की सरकार उपनिवेशवाद की नीति में अनिश्चित थी उस समय कम्पनियां उन क्षेत्रों में ब्रिटेन का प्रभुत्व स्थापित कर रही थीं जो इनके अभाव विदेशियों के एकाधिकार में हो जाते।

इसका परिणाम यह हुआ कि साम्राज्यवादी सरकार को बहुत ही कम लाग पर आर्थिक विदोहन (Exploitation) के लिए विस्तृत बाजार तथा कच्चे मा और खाद्यान्न के भंडार मिल गए। ऐसे समय में सरकार पर बिना किसी विशेष आर्थि दवाव के चार्टर्ड कम्पनियां नये उपनिवेश स्थापित करने तथा उनके विस्तार में अभूतपू सेवा कर रही थीं। अब महाद्वीपों के भीतरी भागों में पहुँचने तथा आर्थिक लाभ लिए इन कम्पनियों द्वारा रेलों और सड़कों का भी निर्माण किया जा रहा था ब्रिटेन को इन कम्पनियों के कुशल प्रबन्ध तथा संचालन के लिए सौभाग्य से Taubma Goldie (Niger), Cecil Rhodes (Rhodesia), Mackinnon (East Afric तथा Dent (North Borneo) जैसे योग्य व्यक्तियों की सेवायें प्राप्त थीं। इन्हें

अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ करने का यथासम्भव प्रयत्न किया। स्वयं Chamberlain ने, जो 1895 में उपनिवेश सचिव नियुक्त किया गया था, इन कम्पनियों के द्वारा उपनिवेशों के विस्तार के क्षेत्र में किए गये कार्य की सराहना की थी।

(4) 1895-1920 में रचनात्मक साम्राज्यवाद का काल
(Period of Constructive Imperialism)

1895 में Joseph Chamberlain उपनिवेश सचिव नियुक्त हुए और उस समय से विस्तारवादी नीति के स्थान पर जो नई उपनिवेशक नीति ब्रिटेन ने अपनाई उसे नया रचनात्मक साम्राज्यवाद (New Constructive Imperialism) की संज्ञा दी जाती है। इस नीति को अपनाने के मुख्य कारण आर्थिक थे जिसके आधार साम्राज्य के साधनों का विकास करके उसके देशों में एकता स्थापित करना था।

1895 तक ब्रिटेन की स्थिति को विदेशी राष्ट्रों द्वारा चुनौती दी जाने लगी थी। रेलों के विकास से सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस तथा जर्मनी नई शक्तियों के रूप में सामने आये जबकि सामुद्रिक यातायात के विकास से जापान चौथी बड़ी शक्ति बन गया था। वे संरक्षणवादी नीति अपनाकर व्यापारिक क्षेत्र में कड़ा मुकाबला करने लगे थे। ऐसी आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता (Struggle) की स्थिति में ब्रिटेन को अपने उपनिवेशों से निकट सम्पर्क स्थापित कर उन्हें एकता के सूत्र में बांधने तथा अपनी स्थिति को सुरक्षित तथा सुदृढ़ करने के लिए उपनिवेशीय निर्बाध नीति (Colonial Laissez faire) का परित्याग कर नई रचनात्मक नीति का अनुसरण करना पड़ा। उस समय सामुद्रिक मनोवृति (Sea psychology) का स्थान भूमि मनोवृति (Land psychology) ने ले लिया। यह नई नीति पुरानी उपनिवेशक नीति से भिन्न थी। उसी समय से उपनिवेशों में भेदभाव बरतने की नीति अपनाई गई। नीति के कार्यान्वियन के अनुसार उस समय के उपनिवेशों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

(अ) Empire in Trust
(आ) Empire in Alliance

(अ) Empire in trust—

इसके अन्तर्गत वे ब्रिटिश उपनिवेश सम्मिलित थे जिनमें अश्वेत लोग (Coloured inhabitants) रहते थे। इनमें घनी जनसंख्या थी तथा स्वशासन का अधिकार न था, ब्रिटिश शासन करते थे। इस क्षेत्र में अफ्रीका तथा एशिया के उपनिवेश सम्मिलित थे। इसे Empire in trust के अलावा The Empire of rule भी कहा जाता था क्योंकि इनकी शासन व्यवस्था ब्रिटिश सरकार के हाथ में थी। इन क्षेत्रो को चेम्बरलेन ने ब्रिटिश साम्राज्य की अविकसित सम्पति (undeveloped estaes) कहते हुए उनके विकास के लिए पूंजी विनियोग की सिफारिश की थी।

इन उपनिवेशों के महत्व को स्पष्ट करते हुए D. Morris ने 1911 में अपने भाषण में बताया था कि "यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि हमारी व्यापारिक सर्वोच्चता उनके नियन्त्रण पर ही निर्भर करती है। यह अनुमान है कि उष्ण कटिबन्ध में लगभग 30 लाख वर्ग मील क्षेत्र इंगलैण्ड की सीमा में आता है और उनमें लगभग 23 करोड़ पौंड मूल्य की वस्तुएं उत्पादित होती हैं। उनका अधिकांश भाग इस देश में आता है और वह उसकी समृद्धि तथा जनता के कल्याण में महत्वपूर्ण भाग अदा करता है।"

अतः ब्रिटेन की सरकार ने इन उपनिवेशों के लिए विकास की ऐसी नीति अपनाई जो वाणिज्यवादी नीति से मेल खाती थी। वे इन उपनिवेशों को कच्चे माल के उत्पादक तथा पक्के माल के बाजार बनाने में प्रयत्नशील रहे। वहां के औद्योगिक विकास को हतोत्साहित कर वे उसे कृषि-प्रधान देश ही रखना चाहते थे या वे उन्हें उनके उद्योगों के लिए खनिज उत्पादन में रत रखना चाहते थे। इन उष्ण तथा सम-उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में ब्रिटेन ने उन्हें विकास में निम्न प्रकार से सहयोग दिया—

(1) रेलों के विकास में प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता तथा स्थायी कार्यों जैसे बन्दरगाह निर्माण आदि के लिए भी धन खर्च किया गया। जैसे 1899 में 33.5 लाख पौंड के 50 वर्षीय ऋण पश्चिमी अफ्रीका में रेलवे निर्माण के लिए स्वीकृत हुए। इसी प्रकार 1.10 लाख पौंड जामियाका के रेल निर्माण तथा 5 लाख पौंड मलाई राज्यों के लिए दिए गये। बन्दरगाहों के निर्माण के लिए Accra तथा Niger coast के लिये क्रमशः 98 हजार पौंड तथा 43.5 हजार पौंड दिया। रेलों तथा बन्दरगाहों के निर्माण से नये युग का सूत्रपात हुआ। व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि तथा निर्यात व्यापार में वृद्धि हुई। जहाँ 1891 में गोल्ड कोस्ट से Cocoa का निर्यात केवल 4 पौंड तथा 1901 में 42.8 हजार पौंड का था वह 1911 में बढ़कर 16.14 लाख पौंड तथा 1916 में 38.47 लाख पौंड हो गया। इसके अलावा लोग गाँवों में बसने लगे तथा उनकी गतिशीलता में वृद्धि हुई। पश्चिमी अफ्रीका (palm oil), मूंगफली, कोका तथा (palm kernels) का निर्यातक तथा ब्रिटिश माल का आयातक बन गया। इस तरह 1903 में 53.8 लाख पौंड का रेलों में विनियोग करने से ब्रिटिश सरकार को 1906 में 1.34 लाख पौंड का मुनाफा मिला। इसके अलावा मिश्र सूडान में रेलों के ऋण दिए गए।

(2) उष्ण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं तथा स्वास्थ्य संस्थाओं के विकास को प्रोत्साहन दिया गया ताकि महामारियों का प्रकोप कम कर उन्हें श्वेत

लोगों के रहने के लायक बनाया जा सके। यह रेलवे कार्यक्रमों की पूरक व्यवस्था थी। इन क्षेत्रों में प्लेग, पीत—ज्वर और अन्य महा-मारियों का प्रकोप घट गया तथा मृत्यु की सम्भावनाओं में कमी हुई। इससे इन क्षेत्रों को मूल्यवान सम्पति गिना जाने लगा।

(3) वैज्ञानिक कृषि को प्रोत्साहन (Encouraging Scientific agriculture and the spread of agriculture knowledge) :

जोसेफ चैम्बरलैन के प्रयत्नों से वैज्ञानिक कृषि के विकास तथा फसलों के नष्ट करने वाली बीमारियों तथा जन्तुओं पर नियन्त्रण की नीति अपनाई गई। वेस्ट इन्डीज में 1902 के बाद चीनी के लिए आर्थिक अनुदान बन्द कर दिया तथा 1898 में कृषि विभाग खोला गया। नई पद्धति से गन्ने (Sugar cane) के उत्पादन में 10 से 25% की वृद्धि हुई। इसी प्रकार कपास की उत्तम कोटि की फसल उगाई जाने लगी। कृषि-शिक्षा के प्रसार से प्रगतिशील किसानों को लाभ उठाने का मौका प्रदान किया। इस प्रकार के संस्थान भारत, गोल्ड कोस्ट, मलायन स्टेटस्, मिश्र, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका, उत्तरी तथा दक्षिणी नाईजीरिया में भी स्थापित किये गये। मिश्र तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में कपास का तिहाई भाग विभिन्न कीड़ों तथा बीमारियों से नष्ट हो जाता था। बढ़ती हुई कपास की मांग से ब्रिटेन के लिए कपास की नई उत्तम फसलों से उपज में वृद्धि तथा कीड़ों से होने वाली क्षति को रोकना आवश्यक था। 1910 में साम्राज्य सरकार पांच साल के लिए 10000 पौंड प्रतिवर्ष के हिसाब से अनुदान ब्रिटिश कपास उत्पादन संघ (British Cotton Growing Association) को दिया गया। यहां तक कि 1923 में सूत का धागा बनाने वाली फेक्टरियों पर 6 पैसे प्रति गांठ का सेस लगाया गया। युगान्डा, जो 1903 में कपास के उत्पादन के बारे में बिल्कुल अनभिज्ञ था, 1924 में उसका निर्यात लगभग 1 लाख गांठें थीं। सूडान में भी कपास के उत्पादन के विकास के लिए रेलों तथा सिंचाई सुविधाओं की वृद्धि के लिए 95 लाख पौंड सिर्फ 1919 से 1923 में खर्च हुए। ऐसी ही वृद्धि नाईजीरिया में हुई जहां 1914 में उत्पादन 11 गाँठों से बढ़कर 1921 में 31,500 गांठें हो गया। 1911 में मिश्र में खोले गये कृषि विभाग ने नई किस्में कपास के क्षेत्र में प्रयोग कीं। भारत में भी 1905 में कृषि विभाग खोला गया। तम्बाकू, गेहूं, गन्ना, जूट, रेशम, फल, सरसों आदि में वृद्धि के वैज्ञानिक प्रयास प्रारम्भ किये गये।

इस प्रकार इन उपनिवेशों में रेलों तथा बन्दरगाहों के विकास, स्वास्थ्य सेवाओं और संस्थाओं के प्रोत्साहन तथा कृषि-क्षेत्र में वैज्ञानिक कृषि के विभिन्न प्रयासों से इन अविकसित सम्पत्तियों में तीव्र विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिससे वहां के निवासियों, ब्रिटिश साम्राज्य तथा समूचे विश्व के लाभ का मार्ग प्रशस्त हुआ।

Empire in Trust में भी स्वयं की अधिमान (Preference) पद्धति का विकास हुआ। 1919 में ब्रिटेन द्वारा अधिमान अपनाये जाने से माल्टा तथा साइप्रस (Cyprus) ने भी ब्रिटेन मे निर्मित माल के आयात में अधिमान (Preferences) की नीति का अनुसरण किया। जामियाका ने भी साम्राज्य के अन्तर्गत उत्पादित सूती माल पर अधिमान दिया। इस तरह साम्राज्य की तटकर नीति में साम्राज्य में काम आने वाले कच्चे माल के सम्बन्ध में अधिमान एक विशेषता थी। 1903 में स्टेट्स सेटलमेन्ट ने इंगलैंड में ही पिघलाने के लिए भेजे जाने पर टिन के निर्यात कर में कटौती (Rebate)देना स्वीकार किया। नाईजेरिया ने साम्राज्य से वाहर भेजे जाने वाले माल पर $3\frac{3}{4}\%$ का कर लगाया। इसी तरह भारत से साम्राज्य में निर्यातित हड्डियों पर कर में दो तिहाई कटौती की जाती थी।

भारत की एम्पायर इन ट्रस्ट से एम्पायर इन एलाईन्स की परिवर्तित स्थिति
(Changing Position of India from Empire in Trust to Empire in Alliance)

प्रथम विश्व युद्ध से पहले भारत Empire in Trust की गिनती में था पर प्रथम युद्ध के समय उसे भी अन्य डोमिनियन्स के समान अधिकारों सहित Imperial war confe ence में सम्मिलित किया गया। इस तरह अब भारत की गिनती Empire in Alliance में होने लगी थी। 1919 में अधिमान पद्धति लागू करते समय भी उसे चाय में अधिमान स्वीकार किया गया पर 1894 में सूती वस्त्र की संरक्षण की नीति को नहीं अपनाने दिया गया था। पर 1917 में जब भारत ने युद्ध ऋण चुकाने के लिए सूती निर्मित माल पर आयात कर लगाने का प्रस्ताव रखा तो उसे ब्रिटेन के सूती वस्त्र उद्योग के विरोध के बावजूद भी स्वीकृत किया। इस तरह 1921 तक उसकी तटकर नीति को मान्यता प्रदान करदी गई। वह अब अन्य डोमिनियन्स की तरह, जो Empire in Alliance थे, स्वतन्त्र तथा संरक्षणवादी बनता जा रहा था। 1924 तक सूती वस्त्र, लोहे एवं इस्पात, दियासलाई तथा ऐसे ही उद्योगों को संरक्षण दे दिया गया। 1920 में ही भारत में High Commissioner (उच्चायुक्त) की नियुक्ति हुई।

स्व-शासित उपनिवेश हमेशा भारतीयों के प्रवास का विरोध करते थे क्योंकि श्वेत जनसंख्या को अश्वेत से घृणा होने के साथ-साथ भय था। जब भारत में इन डोमिनियन्स के लोगों को उच्चपद दिया जा सकता था पर भारतीयों की दशा उन देशों में दयनीय थी। न उन्हें व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने, न भूमि हथियाने और न अपने परिवार सहित बसने की सुविधा थी। कनाडा में जापानियों के साथ भारतीयों की अपेक्षा अच्छा व्यवहार होता था। भारत के विरोध के फलस्वरूप

1917 की Imperial war conferene में ब्रिटिश साम्राज्य के सभी डोमिनियन्स को अपनी जनसंख्या नीति की स्वतन्त्रता दे दी । इससे भारत ने अधिक विरोध बंद कर दिया । बाद में भारतीय कुलियों और श्रमिकों के प्रवास में छूट मिली । पर फिर भी ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीयों के साथ यह भेदभाव की नीति अत्यन्त बुरी रही । इन परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारत इस समय Empire in Trust और Empire in Alliance के बीच की स्थिति में था ।

(आ) Empire in Alliance

दूसरी श्रेणी के उपनिवेशों में वे देश सम्मिलित थे जिनमें श्वेत लोग निवासी थे या जहां श्वेत लोग बस कर उन्हें आबाद कर सकते थे । इनमें आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका आदि थे । इन देशों को स्वशासन का अधिकार तथा अन्य कुछ आर्थिक स्वतन्त्रतायें प्राप्त थीं । इन स्वशासित उपनिवेशों को डोमिनियन्स (Dominions) कहा जाता था । इन्होंने मातृदेश की ही भाषा तथा संस्थाओं का निर्माण किया पर मातृदेश की स्वतन्त्र व्यापार नीति अपनाने पर भी इन देशों ने संरक्षण पर आधारित अपनी तटकर नीति का विकास किया । इन देशों से ब्रिटिश सरकार ने आर्थिक सम्बन्ध बनाये रखा और उनके साथ पारस्परिक आर्थिक सहयोग की नीति अपनाई । साम्राज्य के विभिन्न डोमिनियन्स को परस्पर व्यापार में सुविधा प्रदान की जाती थी । वस्तुत: साम्राज्य अधिमान (Imperial prefernce) की नीति का आविर्भाव इस नीति का परिणाम था । इस श्रेणी के देशों को Empire of Settlement or British Commonwealth of Nations भी कहा जाता है ।

इन देशों को आन्तरिक स्वतन्त्रता 1875 तक मिल चुकी थी । यातायात के साधनों के निरन्तर विकास से उनमें आर्थिक सह-सम्बन्ध की भावना प्रबल होती जा रही थी इससे Imperial Federation की विचारधारा जोर पकड़ती जा रही थी । अत: ब्रिटेन ने इन उपनिवेशों से राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से निकट का सम्पर्क बनाये रखने के लिए रानी विक्टोरिया की जुबली पर 1887 में एक उपनिवेशीय सम्मेलन बुलाया । इसी प्रकार दूसरा सम्मेलन ओटावा में 1894 तथा 1897 में तीसरा सम्मेलन चेम्बरलैन के प्रयत्नों से आयोजित हुआ जिसमें साम्राज्य को प्रभावित करने वाले आर्थिक मामलों तथा सुरक्षा व अधिमान के प्रश्नों पर विचार हुआ । इसके बाद 1902 तथा 1907 में सम्मेलन हुआ पर 1907 के सम्मेलन में इस प्रकार के सम्मेलन को हर चौथे वर्ष आयोजित करने का प्रस्ताव किया । तदनुसार 1911 में छठा सम्मेलन हुआ जिनका उद्देश्य अधिमान, सुरक्षा, समान व्यापारिक नियम, समान प्रवास नीति, समान जहाजी नीति अपनाने का प्रयास एवं सहमति थी । 1914 में युद्ध छिड़ जाने से 1915 में होनेवाला सम्मेलन स्थागित कर 1917 में Imperial war conference आयोजित की गई जिसमें भारत का प्रतिनिधि भी आमन्त्रित था तथा

इसमें यह निश्चय किया गया कि भारत का प्रतिनिधित्व भविष्य से सब सम्मेलनों में होगा। इससे Empric in Alliance. जो कि श्वेत लोगों की बपौती थी, समाप्त हो गई। प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति से साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने की आवश्यकता हुई। 1918 में Imperial war Cabinet में यह निर्णय लिया गया कि सम्राज्य के विभिन्न उपनिवेश कच्चे माल के विक्रय में साम्राज्य के देशों को प्राथमिकता देंगे तथा इसके विभिन्न भागों से अधिमान (Preferences) को विकसित करेंगे।

अन्तर साम्राज्य सम्बन्धों की निकटता के लिए नियमित तथा शीघ्रगामी संचार व्यवस्था का विकास भी महत्वपूर्ण माना जाने लगा क्योंकि दूरी समाप्त होने से सहयोग तथा व्यापार में वृद्धि होती है। अतः 1898 में पेनी पोस्टेज, तथा 1900 में केवल (सामुद्रिक तार) व्यवस्था शुरु की और 1901 मे पेसिफिक केवल बोर्ड बनाया गया।

(1) **व्यापारिक अधिमान**—अन्तर साम्राज्य सम्बन्धों की सुदृढ़ता तथा एकता के लिए ब्रिटेन ने जर्मनी तथा बेलजियम की उन संधियों को 1897 में रद्द कर दिया जिनसे अधिमान नीति के अपनाने में बाधा आती थी। इससे ब्रिटेन को 770 लाख पौंड व्यापार को खोना पड़ा जब कि कनाडा के साथ कुल व्यापार केवल 2.88 लाख पौंड था। तब से ये स्वशासित उपनिवेश मातृदेश के माल को अधिमान (Preference) देने लगे। कनाडा ने 1897 में, दक्षिणी अफ्रीका तथा न्यूजीलैण्ड ने 1903 में तथा आस्ट्रेलिया ने 1908 में अधिमान देना प्रारम्भ किया। आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका ने साधारण ड्यूटी में कमी से, न्यूजीलैण्ड ने विदेशी माल पर अधिकर (Surtax) से तथा कनाडा ने त्रिसूत्रीय तटकर नीति से जिसमें General Tariff, Intermediate Tariff अधिक वरीयता वाले देशों के लिए जो साम्राज्य से बाहर थे तथा तीसरी British Preferential Tariff इस पद्धति को 1920 में आस्ट्रेलिया ने भी अपना लिया। इसके अतिरिक्त इन डोमिनियिन्स में आपस में भी तटकर में कमी का प्रावधान रखा जाता था।

(2) **वित्तीय अधिमान**—व्यापार में अधिमान देने के साथ-साथ ब्रिटेन ने 1900 के Colonial Stock Act के अन्तर्गत दूसरे देशों की अपेक्षाकृत 1% कम ब्याज पर ऋण देना प्रारम्भ किया। इस तरह 1911 तक 65 करोड़ पौंड ऋण दिए गए और वित्तीय अधिमान पद्धति मे भारत तथा Empire in Alliance को प्रतिवर्ष 1 करोड पौंड की ब्याज राशि में छूट मिली। इसके अलावा इन परिस्थितियों में विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए, दुबारा आयकर की दिक्कत को दूर करने के लिए 1916 तथा 1918 के वित्त अधिनियमों में व्यवस्था की, पर 1919 में इस Double Income Taxtation को समाप्त कर दिया।

1919 में ब्रिटेन ने तटकर अधिमान नीति स्वीकार कर लागू की। इससे भारत को भी चाय के सम्बन्ध में लाभ हुआ तथा इन अधिमानों से ब्रिटेन को प्रतिवर्ष 25 से 30 लाख पौंड की क्षति हुई। इसके अलावा रचनात्मक साम्राज्यवाद नीति के अन्तर्गत उपनिवेशों पर अधिक व्यापारिक नियंत्रण आवश्यक हो गया। इन डोमिनियन्स में अन्तर साम्राज्य व्यापार के विकास के लिये 1897 में बोर्ड आफ ट्रेड (Board of Trade) बनाया गया तथा 1899 में Commercial Intelligence Branch खोली गई। 1908 में चार व्यापार उच्चायुक्त (Trade Commissioners) (1) कनाडा एवं न्यूफाउण्डलैण्ड, (2) आस्ट्रेलिया (3) न्यूजीलैंड तथा (4) दक्षिणी अफ्रीका में स्थापित किये गये। इनके अन्तर्गत 23 व्यापार संवाद-दाता थे। 1917 में भारत में भी व्यापार उच्चायुक्तों की नियुक्ति हुई। इसके अलावा इन उपनिवेशों को ब्रिटिश Consulars की सेवायें उपलब्ध थीं। 1904 में प्रसारित Statistical Abstract में समूचे साम्राज्य के व्यापार का समावेश कर उसमें एकता का परिचय दिया।

साधनों का विकास—साम्राज्य में Empire in Alliance के साधनों के विकास का महत्व अधिक बढ़ता जा रहा था क्योंकि इनके विकास में मातृदेश में शक्ति में वृद्धि सम्भव थी। 1903 में चेम्बरलेन उपनिवेश सचिव पद से मुक्त हुआ पर उसके द्वारा उपनिवेशों के विकास के प्रति सक्रियता बनी रही। 1906 में जब Liberal Party ने सत्ता संभाली तब भी इन डोमिनियन्स के साधनों को विकसित करने की नीति का अनुसरण किया गया। वास्तव में इन स्वशासित डोमिनियन्स के प्राकृतिक साधनों के भावी विकास के सम्बन्ध में प्रतिवेदन के लिए एक कमीशन ने एक Imperial Development Board की स्थापना की सिफारिश की जिसको निम्न कार्य सुपुर्द किये गये—

(1) प्राकृतिक साधनों के वैज्ञानिक विकास को सक्रिय करना;
(2) समन्वित योजनानुसार बन्दरगाहों को गहराकर विकास करना;
(3) जहाज रानी, सामुद्रिक तार तथा डाक व्यवस्था का विकास एव सुधार करना;
(4) प्राकृतिक साधनों सम्बन्धी आकड़े संकलन करना तथा उनका प्रकाशन करना और
(5) अन्य ऐसे कार्य जो सामुहिक हित के हों।

1920 में ही Imperial Shipping Board की स्थापना की गई जो जहाज रानी उद्योग को समस्या के समाधान में संलग्न हो गया। इसके प्रयत्नों से सस्ती तथा शीघ्रगामी संचार व्यवस्था से साम्राज्य की समृद्धि में वृद्धि हुई।

विश्व युद्ध ने आर्थिक साधनों की सुरक्षा की यथार्तता सिद्ध करदी। साम्राज्य में निकल, जूट, अभ्रक, रबर, कोयला आदि का पर्याप्त उत्पादन था। ऊन का विश्व का 45 प्रतिशत उत्पादन साम्राज्य में ही होता था। इसी प्रकार साम्राज्य विश्व के स्वर्ण उत्पादन का 60% भाग उत्पादन करता था। 1914 से पहले बहुत सी बहुमूल्य धातुओं को शुद्धि के लिए साम्राज्य से बाहर भेजा जाता था। जैसे निकल तथा एस्बेस्टोज संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जिंक जर्मनी तथा बेलजियम, टंगस्टन जो आस्ट्रेलिया तथा बर्मा में बहुतायत में था, जर्मनी को भेजा जाता था। दक्षिणी अफ्रीका में उत्पादित मोनाजाइट रेत जर्मनी को भेजा जाता था। पर युद्ध के दौरान यह सब निर्यात ब्रिटेन के द्वारा खरीदा जाने लगा।

(4) **खनिज विकास**—जुलाई 1918 में एक Imperial Mineral Resources Bureau की स्थापना की गई जिसमें कनाडा, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका तथा भारत से एक एक प्रतिनिधि तथा सात अन्य मनोनीत प्रतिनिधि थे। इस प्रकार यह पारस्परिक सहयोग तथा साम्राज्य की खनिज सम्पति के विदेशी नियन्त्रण से सुरक्षा का बीमा था।

(5) **कृषि विकास**—कृषि क्षेत्र में विकास के लिए Empire in Alliance में भी 1913 में Imperial Bureau of Entomology की स्थापना हुई जो साम्राज्य में कीड़ों मकोड़ों की समस्या के समाधान के लिए कार्य करता था। इसी आधार पर 1918 में Fungoid Pests के उन्मूलन के लिए Imperial Bureau of Mycology स्थापित हुआ।

(6) **अन्तर साम्राज्य व्यापार को प्रोत्साहन**—(a) अन्तर साम्राज्य क्रय-विक्रय को प्रोत्साहन देने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 10 लाख पौंड की राशि का प्रावधान किया। 1924 में Imperial Economic Committee की स्थापना की। इस समिति ने उत्तम पैकिंग तथा ग्रेडिंग, लेबलिंग तथा विज्ञापन की महत्ता को बताते हुए खाद्यान के संरक्षण के लिये वैज्ञानिक गवेषणा को आवश्यक बताया।

इस तरह स्व-शासित Empire in Alliance के आर्थिक विकास के लिए इस प्रकार के तन्त्र (Mechanism) का आविर्भाव किया गया था। इन उपनिवेशों में इतनी अधिक रुची के कारण ब्रिटेन से विदेशों में जाकर बसने वाले पुनः डोमिनियन्स में आकर बसने लगे। जब 1891-1900 में ऐसे लोग सिर्फ 28% थे, पर 1913 में इनकी संख्या बढ़कर 78 प्रतिशत हो गई।

निष्कर्ष—

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि ब्रिटेन की उपनिवेशीय नीति में समयानुसार परिवर्तन होता गया। जहाँ प्रारम्भिक वर्षों में उपनिवेशों के आर्थिक शोषण की भावना प्रबल थी, 1776 में अमेरिका की स्वतंत्रता से उपनिवेशों में रुचि घटने

लगी पर फिर अन्तर राष्ट्रीय क्षेत्र में नई आर्थिक शक्तियों के आविर्भाव तथा प्रति-स्पर्द्धा से उपनिवेशों का महत्व बढ़ गया। ब्रिटेन ने इन उपनिवेशों में भेदभाव की नीति अपना कर तथा उनके आर्थिक साधनों के विकास की प्रक्रिया से उनमें पारस्परिक आर्थिक सहयोग बढ़ाकर अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया और अपनी समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया। भारत की विशालता, प्राकृतिक साधनों की प्राचुर्यता तथा लोगों की रूढ़िवादी प्रकृति का लाभ उठाने के लिए प्रारम्भ में Empire in Trust में रखा पर बाद में उसे Empire in Trust से बढ़ाकर Empire in Alliance का स्थान दे दिया।

अध्याय 3

ब्रिटेन में 1930 की मन्दी में आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियां

(Policies for Economic Stabilization in U. K. during 1930)

1929 में अमेरिका के वाल स्ट्रीट संकट (Wallstreet crisis) के साथ विश्वव्यापी महान् आर्थिक मंदी को शुरूआत हुई जिसने विश्व के सभी पूंजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था को झकझोर कर अस्त-व्यस्त कर दिया। सभी देशों में औद्योगिक उत्पादन तथा मूलस्तर में अत्यधिक गिरावट से आय और विनियोग में गिरावट आ गई। चारों ओर बेरोजगारी का ताण्डव नृत्य हो रहा था। उत्पादक तथा उपभोक्ता वर्गों में निराशा का वातावरण व्याप्त था। विश्व के आर्थिक इतिहास में इतना बड़ा, दीर्घकालीन कष्टप्रद आर्थिक संकट एक ही साथ अनेक देशों में कभी नहीं आया और इसीलिए इसे विश्वव्यापी आर्थिक मंदी की सज्ञा दी जाती है। इस विश्वव्यापी संकट के सम्बन्ध में एक विद्वान लेखक ने कहा है : '1929 में जिस मंदी की शुरूआत हुई वह हल्की शिथिलता नहीं थी परन्तु अवधि की दृष्टि से तथा कष्ट की दृष्टि से आधुनिक इतिहास की सबसे बड़ी घटना थी। उसका छोर 1932 तक था और उसकी चर्म सीमा पर विश्व में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 3 करोड़ से भी अधिक थी।'

मंदी का प्रारम्भ—सर्वप्रथम 1929 में यह आर्थिक मंदी अमेरिका में वाल स्ट्रीट संकट से प्रारम्भ हुई। धीरे-धीरे उसका प्रभाव विश्व के अन्य देशों पर भी पड़ने लगा यहां तक कि 1932 में विश्व के सभी पूंजीवादी राष्ट्र इसकी चपेट में आ गये। आर्थिक मंदी के कारणों के बारे में सभी विद्वानों में मतैक्य नहीं पर अगर निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो साख का अत्यधिक प्रसार, स्वर्ण की कमी, एकाधिकारी संस्थाओं तथा श्रम संगठनों के निर्माण से अर्थव्यवस्था में अस्थिरता, उपभोग का निम्न स्तर, बैंकिंग व्यवस्था में सकट, विनियोजन का अभाव तथा आर्थिक नियोजन के अभाव इत्यादि कारण मंदी के उत्तरदायी कहे जा सकते हैं।

इस मंदी से विश्व की सभी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएं बुरी तरह प्रभावित हुईं। यद्यपि सभी राष्ट्रों पर मंदी का दुष्प्रभाव समान नहीं था पर ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था पर इस मंदी का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इससे औद्योगिक उत्पादन, मूल्य स्तर, आय तथा विनियोग में बहुत अधिक गिरावट आने से 1932 में देश की कुल कार्यशील जनसंख्या का 11% भाग बेकारी का सामना कर रहा था। औद्योगिक उत्पादन सूचनांक 1929 में 106 से गिरकर 1939 में 89, थोक मूल्य स्तर 97 से गिर कर 74, निर्यात सूचनांक 103 से गिर कर 74 रह गया था। इस तरह दो वर्षों में ही सारी अर्थ व्यवस्था छिन्न-भिन्न सी हो गई।

ब्रिटेन का विदेशी व्यापार सूचनांक 103 से गिरकर 74 रहने से उसका भुगतान सन्तुलन, जो 1926 में 10·3 करोड़ पौण्ड पक्ष में था, 1930 में 5.6 करोड़ पौण्ड विपक्ष में हो गया। इससे ब्रिटेन की विदेशी भुगतान स्थिति बहुत बिगड़ गई। ब्रिटेन का हिस्सा विश्व व्यापार में 11% से घटकर 1930 में 10 प्रतिशत ही रह गया। देश की 11% जनसंख्या बेकारी का शिकार हो गई। बैंक ऑफ इंगलैण्ड को स्वर्ण भुगतान में विकट स्थिति देख तथा पौण्ड के गिरते हुए मूल्य के कारण स्वर्णमान का त्याग करना पड़ा तथा पौंड का अवमूल्यन करना पड़ा।

ब्रिटेन की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन निम्न सूचनांक से स्पष्ट हो जाता है—

ब्रिटेन में प्रमुख आर्थिक तत्वों के सूचनांक
(1923=100)

विवरण	1929	1930	1931
औद्योगिक उत्पादन	106	98	89
रोजगार	102	98	94
थोक मूल्य-स्तर	103	89	74
शुद्ध निर्यात मूल्य	97	85	74

इस तरह आर्थिक मंदी के समय अर्थव्यवस्था में स्थायित्व लाने के लिए सरकार की विभिन्न समितियों तथा विद्वानों ने अनेक प्रभावी कदम उठाने की सिफारिश की। तदानुसार आर्थिक मंदी के संकट से छिन्न-भिन्न अर्थव्यवस्था से औद्योगिक, कृषि, वित्तीय, मौद्रिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में अनेक उपचारों का सहारा लिया गया। इनसे अर्थव्यवस्था में स्थिरीकरण संभव हुआ। इन विभिन्न अपनाई गई नीतियों का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

1. **कृषि नीति**—आर्थिक मंदी का सर्वाधिक बुरा प्रभाव कृषि पर पड़ा। कृषिजन्य पदार्थों की कीमतों में बहुत गिरावट आई। कृषकों की आय गिरकर

लगभग $\frac{1}{3}$ रह गई। इस आय की क्षति पूर्ति के लिए कुछ किसानों द्वारा अधिक फसलें बोई जाने लगीं। परिणामस्वरूप उत्पादनाधिक्य (Over-production) की स्थिति हो गई और मूल्यों में गिरावट होती ही रही।

तीसा की आर्थिक मंदी से कृषि को बचाने के लिए सरकार ने कृषि को संरक्षण प्रदान करने की नीति अपनाई। सरक्षणात्मक नीति के अन्तर्गत दो प्रकार के अधि-नियम स्वीकार किये गये। कृषि क्षेत्र में स्वतन्त्र व्यापार नीति (Laissez Faire) का परित्याग कर दिया।

(i) **साधारण अधिनियम**—इनमें 1931 का कृषि विपणन अधिनियम (Agricultural Marketing Act 1931), तथा संशोधित अधिनियम 1933 और 1931 का कृषि (उपयोग) अधिनियम महत्वपूर्ण हैं। 1931 के कृषि विपणन अधिनियम के अन्तर्गत विपणन मण्डलों (Marketing Boards) की स्थापना की गई जो क्रय-विक्रय, उत्पादन पर नियन्त्रण, मूल्य निर्धारण तथा बिक्री की शर्तों का निर्धा-रण करते थे और श्रेणीकरण, पैकिंग तथा यातायात नियमों का प्रतिपादन करते थे। 1933 के Agriculture Marketing Act में सशोधन से अधिनियम का क्षेत्र विस्तृत होगया तथा सरकार को वस्तुओं के आयात को सहकारी क्रय-विक्रय समितियों के हित में नियमित तथा नियन्त्रित करने का अधिकार मिल गया। 1931 के कृषि (उपयोग) अधिनियम से बेरोजगार व्यक्तियों को 5 एकड़ या इससे कम भूमि काउन्टी कौन्सिलस द्वारा एलॉट की जाती थी।

(ii) विशिष्ट अधिनियम में 1932 का गेहूँ अधिनियम (Wheat Act) उल्लेखनीय है। 1930 से 1938 तक गेहूँ का बाजार मूल्य लगभग 20 से 25 शि. प्रति क्वार्टर था। पर इस अधिनियम में गेहूँ का गारन्टी मूल्य 45 शि० प्रति क्वार्टर निर्धारित किया गया तथा बाजार में वास्तविक मूल्य में कमी होने से नुकसान किसान का होता था। इस अधिनियम के अन्तर्गत क्षति पूर्ति सरकार द्वारा की जाती थी। इस सहायता के लिये गेहूँ की मात्रा 270 लाख क्वार्टर थी पर 1937 में Agriculture Act से यह सीमा बढ़ाकर 360 लाख क्वार्टर कर दी गई। इसके अन्तर्गत ओट (जई) तथा जौ के लिये भी गारन्टी मूल्य की व्यवस्था क्रमशः 1937 और 1939 में की गई। दूध वितरण के सम्बन्ध में नेशनल मिल्क कौन्सिल द्वारा नियन्त्रण किया जाने लगा।

इन कार्यक्रमों का प्रभाव अति उत्तम रहा। संरक्षण की नीति के फलस्वरूप जिन कृषि वस्तुओं का उत्पादन होने लगा वह स्वतन्त्र व्यापार नीति में सम्भव न था। गेहूं के अन्तर्गत वोया गया क्षेत्र 1931 में 12 लाख एकड़ से बढ़कर 1934 में 20 लाख एकड़ होगया। कृषि मूल्यों में स्थायित्व आया और कृषिक्षेत्र में बेरोजगारी

पर आंशिक नियन्त्रण सम्भव हो सका। फिर भी बहुत सी भूमि घास के अन्तर्गत आगयी तथा पशुपालन अधिक लाभपूर्ण समझा जाने लगा।

2. **औद्योगिक नीति**—उद्योग के उत्पादन में गिरावट को रोकने के लिये सरकार ने उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान की। छोटी-छोटी इकाइयों को मिला-कर उन्हें पुनर्संगठित किया जिनमें कोयला, सूती वस्त्र उद्योग, इस्पात तथा जहाज-रानी उद्योग प्रमुख थे। मूलभूत उद्योगों में जिनको की अवसाद काम में बहुत नुकसान पहुँचा था सरकार ने एकाधिकारी प्रवृतियों को प्रोत्साहित किया। निर्यात सम्वर्द्धन के लिये प्रभावी व्यापारिक नीति का अनुसरण किया। अधिक लोगों को उद्योगों में रोजगार देने के लिये विशेष क्षेत्रों में उद्योग स्थापना के लिये सरकार ऋण देती थी। नये उद्योगों का महत्व बढ़ गया। सरकार ने उद्योगों के विकास तथा विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिये सस्ती मुद्रा (Cheap Money) नीति अपनाई। पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखना तभी संभव है जबकि प्रभावी माँग में वृद्धि तथा विनियोग में पर्याप्तता बनी रहे। इनमें असन्तुलन हो तो सभी आर्थिक बुराइयों की जड़ है। इसका महत्व उस देश में और भी अधिक बढ़ जाता है कि जिसकी अर्थ-व्यवस्था उद्योग-प्रधान हो।

3. **व्यापारिक नीति**—महान् आर्थिक मंदी में वस्तुओं के गिरते हुए मूल्यों के कारण व्यापार में ब्रिटेन की स्वतन्त्र व्यापार नीति का बुरा प्रभाव हुआ। अतः 1931 में स्वर्णमान का परित्याग किया और उसके साथ ही Laissez Faire Policy) का अन्त होगया। मंदी के कुप्रभावों को दूर करने के लिये विदेशी व्यापार पर तरह-तरह के नियन्त्रण की नीति अपनाई। 1931 में Abnormal Importations (Custom Duties Act) पारित किया जिससे छः महीने के लिये आयातों पर कर लगा दिया। 1932 के (Import Duties Act) द्वारा आयात नियन्त्रण को स्थायी कर दिया। इसके अनुसार खाद्य पदार्थों तथा कच्चे माल को छोड़कर बाकी सभी आयातों पर 10% आयात कर लगा दिया। परामर्श के लिये Import Duties Advisory Committee बनाई गई।

साम्राज्य के देशों में व्यापार बढ़ाने के लिये ओटावा में 1932 में Imperial Economic Conference हुई जिसमें साम्राज्य अधिमान (Imperial Preference) को बढ़ावा मिला और उपनिवेशों के निर्यात में 33% तथा ब्रिटेन के निर्यातों में 16% की वृद्धि हुई।

विदेशी व्यापारिक समझौते किये गये जिनसे निर्यात में वृद्धि तथा आयात में कमी करने का प्रयत्न किया गया।

निर्यात को प्रोत्साहित करने तथा आयात को हतोत्साहित करने के लिये 1931

में पौण्ड का अवमूल्यन कर दिया पर यह अधिक लाभकारी न हो सका क्योंकि दूसरे देशों के द्वारा स्वर्णमान का परित्याग कर दिया गया ।

भुगतान सन्तुलन को बनाये रखने के लिये तथा पौण्ड के मूल्य में उतार चढ़ाव रोकने के लिये 1932 में 22·7 करोड़ पौण्ड से Exchange Equilisation Account (विनिमय स्थिरीकरण कोष) की स्थापना की ।

4. **मौद्रिक नीति**—सरकार ने मंदी के प्रभाव को दूर करने के लिये सस्ती मुद्रा नीति (Cheap Money Policy) अपनाई । तदानुसार बैंक दर घटा कर 2½% कर दी गई तथा युद्ध सम्बन्धी ऋणों (War Loans) पर ब्याज दर 5% से घटाकर 3½% कर दी गई जिसमे दीर्घकालीन विनियोगों पर ब्याज दर कम हो जाने से सरकार पर ब्याज का भार तो कम हो गया पर उद्योग मनोवृत्ति में स्थिरता के कारण विनियोगों में वृद्धि आशानुकूल न रही । देश की विकट परिस्थितियों को देखते हुए 1931 में स्वर्णमान का परित्याग कर दिया ।

5. **राजस्व नीति**—ब्रिटेन की आंतरिक पुनरुत्थान की नीति इस समय तक रूढ़िवादी थी । अतः सरकार ने मंदी के प्रभावों को दूर करने के लिये अमेरिका तथा स्वीडन की तरह राजकीय व्यय (Public Expenditure) तथा घाटे की अर्थ व्यवस्था (Deficit financing) की नीति को महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया । जहां आयात को हतोत्साहित करने के लिये आयात कर लगा था वहां निर्यात के लिये आर्थिक सहायता भी दी गई । कृषि मूल्यों में स्थायित्व लाने के लिये गारन्टी मूल्य की क्षतिपूर्ति की जाती थी । उद्योगों में अधिक रोजगार के लिये नई इकाइयां स्थापित करने या विशिष्ट क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने पर सरकार अनुदान देती थी ।

6. **रोजगार नीति**—आर्थिक मंदी के समय विश्व में 300 लाख व्यक्ति बेरोजगारी के शिकार हुए । ब्रिटेन में बेरोजगारों की संख्या लगभग 22 लाख थी जो कार्यशील जनसंख्या का लगभग 11 प्रतिशत भाग था । लौह-इस्पात उद्योग में 40% मजदूर बेकार हो गये थे जबकि कोयला, सूती वस्त्र उद्योग में यह प्रतिशत 20 से 22% था । इस बेकारी का मुकाबला करने के लिये सरकार ने अपनी वित्तीय, औद्योगिक, कृषि तथा व्यापारिक नीति में अधिकाधिक रोजगार प्रदान करने की नीति का अनुसरण किया । 1931 में कृषि उपयोग अधिनियम के अन्तर्गत बेरोजगार व्यक्तियों को काउन्टी कौन्सिल्स द्वारा 5 एकड़ या इससे कम भूमि एलॉट की जाती थी । 1934 में Special Areas (Development & Improvement) Act पास हुआ जिसके अन्तर्गत विशेष क्षेत्रों के विकास के लिये दो कमिश्नरों की नियुक्ति हुई जो निर्माण कार्यों में अधिक रोजगार दे सके । इनके साधन सीमित होने से इस अधिनियम में संशोधन हुआ जिससे कमिश्नरों को अधिक राशि व्यय करने, निजी व्यक्तियों को कर

में छूट देने तथा नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना में ऋण देने की व्यवस्था की गई। परिणाम स्वरूप 1939 तक 200 नई फैक्टरियां बनीं और अधिक लोगों को रोजगार मिला।

1931 में बेरोजगारी बीमा योजना लागू की गई पर शर्तें कठोर होने से अधिक लाभ न हुआ। 1934 में बेकारी अधिनियम (Unemployment Act) पास हुआ। जिससे बेकारों को राहत मिली। मिनिस्ट्री आफ लेबर भी इस समय अधिक सक्रिय रही।

आर्थिक स्थिरीकरण नीतियों का प्रभाव
(Effects of Economic Stabilization Policies)

आर्थिक मंदी के दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियों से ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था में मंदी का अन्त होकर पुनरूत्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ। ब्रिटेन की आंतरिक अनुकूल परिस्थितियों ने भी मंदी निवारण में योग दिया। ब्रिटेन में अमेरिका के अपेक्षा मंदी कम गंभीर थी और इस देश में 1920-29 की अवधि में जिस तेजी का सृजन हुआ था उसके कारण मंदी के प्रभावों को दूर करने में ब्रिटेन को अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता न हुई। यहां अमेरिका की तुलना में पूंजी की सीमांत क्षमता (Marginal efficiency of Capital) अधिक थी अतः विनियोगों पर बहुत बुरा असर न पड़ सका।

इस तरह ब्रिटेन द्वारा निर्यात वृद्धि तथा आयात नियन्त्रण के लिये अपनाये गये उपायों, सस्ती साख नीति, मुद्रा का अवमूल्यन और कुछ विशेष रूप से अनुकूल आंतरिक परिस्थितियों के कारण मंदी धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। 1935 के बाद अर्थव्यवस्था में पुनरूत्थान के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। औद्योगिक उत्पादन सूचनांक 1932 में 88 से बढ़कर 1935 में 112, निर्यात का सूचनांक 50 से बढ़कर 59, रोजगार का सूचनांक 94 से बढ़कर 104 होगया। थोक कीमतों का सूचनांक 1932 में 72 से बढ़कर 1935 में 76 तथा 1936 में 80 हो गया था। इस तरह अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख आर्थिक तत्वों के सूचनांक यह स्पष्ट कर देते हैं। विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव का संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(1) **सामान्य**—आर्थिक मंदी से अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में गिरती कीमतें, बढ़ती बेरोजगारी व उत्पादन आधिक्य से जो वातावरण उत्पन्न हो गया था तथा अर्थव्यवस्था की स्थिति गम्भीर हो गई थी ऐसे समय में आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियों से आशा का संचार हुआ और आर्थिक गम्भीरता तथा अस्त-व्यस्तता के समापन के आसार दृष्टिगोचर होने लगे।

(2) **औद्योगिक क्षेत्र**—मंदी का प्रभाव उद्योगों पर बहुत बुरा तथा गहरा था। इससे उत्पादन का सूचनांक जो 1928 में 100 था वह आर्थिक मंदी के 1932 के

वर्ष में 88 रह गया। आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियों से उद्योगों में उत्पादन में वृद्धि होने लगी। 1934 तक तो औद्योगिक उत्पादन सूचनांक अपने आधार वर्ष को पार कर गया यहाँ तक कि 1936 तक सूचनांक 121 तक पहुँच गया, अतः केवल चार वर्षों में ही उत्पादन में 33% की वृद्धि हुई।

(3) **विदेशी व्यापार**—ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार का अत्यधिक महत्व है क्योंकि ब्रिटेन का विदेशी व्यापार उसकी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। आर्थिक मंदी विश्वव्यापी थी और इसी कारण वस्तुओं की विदेशी मांग में बहुत कमी हो गई थी। परिणाम स्वरूप जहां 1928 के आधार वर्ष पर 1932 में शुद्ध निर्यात का सूचनांक 50 पहुँच गया था उसमें धीरे-धीरे वृद्धि होने लगी। 1934 में सूचानांक 55 हो गया और 1936 में बढ़कर 69 हो गया। निर्यात में कमी का प्रभाव आयात पर पड़ना भी स्वाभाविक था क्योंकि वस्तुओं की बिक्री के अभाव में कच्चे माल के आयात की आवश्यकता कम पड़ ही जाती है।

(4) **मूल्य-स्तर**—1932 में थोक मूल्यों का सूचनांक केवल 72 ही रह गया था वह 1933 तक तो उसी बिन्दु पर रहा पर बाद में धीरे-धीरे सुधार होने लगा। सरकार के द्वारा किये गये प्रयत्नों का मूल्यों के स्तर में प्रभाव बहुत मंद रहा क्योंकि सामान्य मूल्यों का स्तर सभी क्षेत्रों की स्थिति का परिचायक है और जब तक अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों में तीव्र गति से सुधार नहीं हो तब तक सामान्य मूल्यों में सुधार कठिन होता है।

(5) **सामान्य लाभ**—आर्थिक मन्दी व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को सर्वाधिक नुकसानदायक होती है क्योंकि गिरते मूल्यों में बिक्री करना लागतें ऊंची होने पर नुकसान का कारण बनती हैं। 1928 के आधार वर्ष पर 1932 से सामान्य लाभ का सूचनांक घट कर 65 ही रह गया था यह 1933 में और भी अधिक गिर गया और अपने निम्नतम बिन्दु 60·9 पर पहुँच गया पर सरकार के आर्थिक स्थिरीकरण के प्रभावी प्रयत्नों से सूचनांक में एक ही वर्ष में वृद्धि हुई यहां तक कि 1936 तक लाभ का सूचनांक अपने पूर्व स्तर 99·8 पर पहुँच गया।

(6) **रोजगार**—अर्थव्यवस्था में सरकार की स्थिरीकरण नीतियों का रोजगार वृद्धि में भी अच्छा प्रभाव रहा। जहां 1932 में रोजगार का सूचनांक गिर कर 94 ही रह गया था वह 1934 में ही अपने आधार वर्ष के स्तर पर पहुँच गया। यहाँ तक कि 1936 में सूचनांक 108 हो गया था। इस तरह रोजगार की स्थिति में भी आशानुकूल सुधार हुआ। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार निम्न सूचनांक से स्पष्ट है—

ब्रिटेन में कुछ प्रमुख आर्थिक तत्वों के सूचनांक
(1928 = 100)

विवरण	1932	1933	1934	1935	1936
औद्योगिक उत्पादन	88	94	105	112	121
रोजगार	94	97	100	104	108
शुद्ध निर्यात	50	51	55	59	69
थोक कीमतें	72	72	75	76	80
सामान्य लाभ	65·2	60·9	68·2	81·5	99·8

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि औद्योगिक उत्पादन तथा रोजगार में तो मन्दी पूर्व का स्तर पहुँच गया था पर निर्यात 1936 में भी 31% कम था। थोक की कीमतें 1928 के मुकाबले 20% कम थीं।

यह पुनरूत्थान पूर्ण नहीं था अतः 1937 में पुनः मन्दी के आसार दृष्टिगोचर होने लगे थे पर सौभाग्य से द्वितीय युद्ध तथा इससे सम्बन्धित तैयारी के कारण मन्दी का रूप स्तब्ध हो गया । ब्रिटेन अभी आर्थिक मन्दी के दुष्परिणामों से मुक्त भी न हो पाया था कि 1939 में उसे द्वितीय युद्ध ने आ दबोचा। आर्थिक मन्दी के बाद युद्धकालीन संकट ने अर्थव्यवस्था को फिर दुष्परिणामों में धकेल दिया।

———

अध्याय 4

इंगलैण्ड में पूर्ण-रोजगार के लिए नियोजन

(Planning for Full-Employment)

इंगलैंड की पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक नियोजन का सूत्रपात किन्हीं गम्भीर सिद्धान्तों पर आवारित न होकर आर्थिक कठिनाइयों का मुकावला करने के लिए हुआ है। इसका उपयोग प्रयोगात्मक है। प्रो. लेविस के अनुसार "इंगलैण्ड में आर्थिक नियोजन का जन्म गम्भीर सिद्धान्तों पर आधारित न होकर कठिनाइयों के समाधान के लिए हुआ है, यह अपने दृष्टिकोण में प्रयोगात्मक है। इसकी विभिन्नता, विरोधाभास, संशय, सख्ती और अन्धकार आदि के रूप में यह अमेरिका के न्यू डील से मेल खाता है। यहां समाजवादी रूपरेखा की कोई अच्छी तरह तैयार की गई योजना नहीं है, यह तो एक प्रकार से उच्चस्तर का प्रजातान्त्रिक तालमेल है।"[1]

इंगलैण्ड के आर्थिक इतिहास में नियोजन का प्रारम्भ द्वितीय विश्व–युद्ध में हुआ जवकि इंगलैण्ड की संयुक्त सरकार (Coalition Government) ने युद्ध का मुकावला करने के लिए अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में नियोजन का आश्रय लिया। युद्धकाल में समूचे विश्व में साधनों की अत्यधिक कमी को देखते हुए मिली-जुली सरकार द्वारा युद्ध में विजय के लिए साधनों के समुचित वितरण के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु राशनिंग, लाईसेंस तथा परमिट पद्धति अपनाई गई. इस प्रकार द्वितीय विश्व-युद्ध की विषम आर्थिक परिस्थितियों ने इंगलैंड की पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में सरकार द्वारा नियंत्रण तथा नियमन की नीति को जन्म दिया।

रोजगार नीति का सूत्रपात

युद्ध के अन्तिम वर्षों में मिली-जुली सरकार में यह संदेह अधिक व्यापक वन गया था कि युद्ध समाप्ति के तुरन्त वाद देश को युद्धोत्तर-कालीन मन्दी और गम्भीर वेरोजगारी का सामना करना पड़ेगा। अतः संयुक्त सरकार द्वारा 1944 में ही अपनी रोजगार नीति के सम्वन्ध में एक श्वेत-पत्र (White Paper on Employment Policy—1944) जारी किया गया। इस श्वेत-पत्र में युद्धोत्तरकालीन वेरोजगारी

"Ben W. Lewis : British Planning & Nationalisation Page 276.

की समस्या के समाधान तथा सामान्य रूप में दीर्घकालीन रोजगार-स्थायित्व के सम्बन्ध में सरकारी नीति तथा तत्सम्बन्धी प्रयत्नों का उल्लेख किया गया था। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सरकार द्वारा युद्धकालीन नियन्त्रणों को युद्ध समाप्ति के बाद भी लागू रखने के साथ २ युद्धोत्तरकालीन मन्दी तथा बेरोजगारी के दबाव को रोकने के लिए सरकारी व्यय में वृद्धि की घोषणा की गई। इस प्रकार रोजगार के सम्बन्ध में आर्थिक नियोजन की शुरूआत इस श्वेत-पत्र से हुई जिसमें आर्थिक क्षेत्र में शिथिलता दृष्टिगोचर होते ही मन्दी तथा बेरोजगारी के शत्रुओं से लड़ने के लिए सरकारी व्यय में विस्तार की नीति की घोषणा की गई।

1945 में युद्ध समाप्ति पर मन्दी और बेकारी की समस्याओं का प्रादुर्भाव तो नहीं हुआ बल्कि आशा के विपरीत देश में मुद्रा-स्फीति, बढ़ते हुए मूल्यों तथा वस्तुओं की असाधारण कमी खटकने लगी। ये समस्याएं अर्थ-व्यवस्था में गम्भीर संकट उत्पन्न करने लगीं और ऐसे समय में मजदूर दल (Labour Party) ने सत्ता संभाली। संयोग की बात थी कि अर्थ-व्यवस्था में नियोजन के तत्वों को सक्रिय होने का सुअवसर मिला। देश में युद्धोत्तरकालीन पुनर्निर्माण कार्यक्रमों, नागरिक मांग में अभिवृद्धि, शिक्षा तथा सामाजिक सुरक्षा पर बढ़ता हुआ व्यय, सैनिक कार्यों में व्यय में मन्द गति से कमी, तथा भुगतान सन्तुलन में सुधार के लिए निर्यात सम्वर्धन प्रयत्नों से वस्तुओं की कमी की समस्या अधिक गम्भीर होती जा रही थी। अतः मजदूर-दलीय सरकार ने प्रभावी नियन्त्रणों को लागू किया पर फिर भी 1946 तथा 1947 के आरम्भ तक मुद्रा स्फीति, बढ़ते हुए मूल्यों तथा वस्तुओं की अत्यधिक कमी का प्रकोप बढ़ता ही गया।

आर्थिक नियोजन
(Economic Planning)

देश की अर्थ-व्यवस्था की उपर्युक्त समस्याओं के निवारण, सीमित साधनों के समुचित उपयोग, देश की आर्थिक समृद्धि तथा बाजार तन्त्र पर नियन्त्रण के लिए मजदूर–सरकार (Labour Government) ने आर्थिक नियोजन का सहारा लिया। सैद्धान्तिक दृष्टि से भी मजदूर-दलीय सरकार को समाजवाद की स्थापना के लिए आर्थिक नियोजन की शरण लेना स्वाभाविक था। अतः प्रथम आर्थिक सर्वेक्षण (Economic survey) फरवरी 1947 में जारी किया गया। उसके अनुसार आर्थिक नियोजन का उद्देश्य उपलब्ध साधनों को राष्ट्र के अधिकतम हित के लिए उपयोग करना, साधनों तथा आवश्यकताओं के अन्तराल को पाटना और साधनों के वितरण को बाजार-तन्त्र पर न छोड़ उनके उपयोग के साम्य से अर्थ-व्यवस्था में संतुलन स्थापित करना था।

प्रो. वेन डवल्यू लेविस के अनुसार ब्रिटेन में आर्थिक नियोजन लागू करने के पीछे निम्न कारण भी उत्तरदायी थे :—

(1) ब्रिटेन को द्वितीय विश्व युद्ध में भारी क्षति उठानी पड़ी थी;
(2) ब्रिटेन की पूंजी, उत्पादन तथा व्यापारिक तकनीक विश्व प्रतिस्पर्द्धा में वहुत पीछे पड़ गई थी;
(3) देश में अपर्याप्तता और असन्तुलन का समाप्त करना आवश्यक था; और
(4) ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रतिष्ठा को भारी धक्का लग चुका था।

अतः ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने, उसकी प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति का विकास करने तथा अर्थ-व्यवस्था के असन्तुलन को दूर कर पुनरुत्थान करने के लिए आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय साधनों का राष्ट्र की आवश्यकतानुसार अधिकतम हित में उपयोग करना था। इसके अतिरिक्त सहायक उद्देश्यों में उत्पादकता तथा उत्पादन में वृद्धि, पूर्ण रोजगार, आर्थिक स्थायित्व, धन का समाज में यथोचित वितरण तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करना था।

सन् 1945 से 1951 तक मजदूर-दलीय सरकार ने आर्थिक नियोजन को विस्तृत रूप में न अपना कर आंशिक नियोजन की पद्धति को अपनाया। यह नियोजन वास्तव में रूस की नियोजन पद्धति का अनुसरण नहीं था वल्कि यह तो मौद्रिक, प्रशासनिक तथा राजकोषीय नियंत्रण मात्र था। इसके अन्तर्गत वृहत् उद्योगों में कच्चे माल के वितरण, लायसेन्स नीति का क्रियान्वयन, आयात व्यापार पर प्रतिवन्ध तथा सरकारी हस्तक्षेप का वाहुल्य हो गया था। यह आयोजन अर्थ-व्यवस्था के कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित था। रूस के समान विस्तृत लक्ष्य निर्धारित नहीं किये गये थे। ये योजनाएं दीर्घकालीन नहीं होकर वार्षिक या उससे भी कम समय के लिए थीं और उनका मुख्य ध्येय अल्पकालीन समस्याओं का निवारण करना था जिसके लिए 1946 तथा 1947 में कुछ उद्योगों व सेवाओं के राष्ट्रीयकरण से आर्थिक नियोजन के मार्ग को सुलभ बना दिया था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन में प्रोत्साहन नियोजन (Planning by Inducement) का अनुसरण किया गया था।

इस आर्थिक नियोजन सम्वन्धी निर्णयों का सर्वोच्च अधिकार मन्त्रीमण्डल (Cabinet) को था और केबीनेट की सहायतार्थ दो महत्वपूर्ण समितियाँ बनाई गई थीं। पहली आर्थिक नीति समिति जिसका कार्य प्रधान मन्त्री के नेतृत्व में आर्थिक नीतियों का निर्माण करना तथा दूसरी उत्पादन समिति जिसका कार्य चांसलर आफ एक्सचेकर की अध्यक्षता में विनियोजन के कार्यक्रम निर्धारण करना था। विभिन्न मंत्रालयों को सलाह देने के लिए केन्द्रीय साँख्यकी कार्यालय तथा आर्थिक सचिवालय (Economic Secretariat) दो सरकारी सेवायें थीं। आर्थिक नियोजन पर सलाह देने के लिए नियोजन अधिकारी के अधीन आर्थिक नियोजन कार्यालय था।

इसके अतिरिक्त एक प्रतिनिधि संस्था आर्थिक नियोजन परिषद थी जिसमें श्रमिकों, उद्योगों तथा सरकार के प्रतिनिधि थे। इस संस्था का कार्य नियोजन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन कर आवश्यक सुझाव देना था। सरकारी विभाग तथा अन्त-विभागीय समितियां आदि भी नियोजन व्यवस्था से सम्बद्ध थीं।

1945 से 1951 की अवधि में मजदूर-सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार, राष्ट्रीयकरण, मौद्रिक तथा राजकोषीय नियंत्रण, सामाजिक सुरक्षा आदि कार्यों से आर्थिक नियोजन की पद्धति का पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया।

ब्रिटेन के इस आर्थिक नियोजन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ कहते हैं कि यह आर्थिक नियोजन नहीं था यह तो नियोजन का एक बहाना मात्र था। नियन्त्रण सीमित, अपर्याप्त तथा असमन्वित था। यह दीर्घकालीन उद्देश्यों से प्रेरित न होकर तत्कालीन अल्पकालीन उद्देश्यों से प्रेरित था। सरकार का उत्पादकों के दिन प्रतिदिन के कार्यों में हस्तक्षेप न होकर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष विधियों का परिपालन था जिससे राज्य अर्थ-व्यवस्था को इच्छित दिशाओं में प्रभावित करने में निजी व्यक्तियों को प्रोत्साहित कर सके।

सर्वे (Survey) रूस के अनुरूप ब्ल्यू प्रिन्ट न होकर एक प्रकार से अनुमान पत्रक था। उसमें किसी भी प्रकार की सख्ती तथा परिपालन अनिवार्यता का अभाव था। परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते थे। यह तो एक प्रकार से सरकार तथा निजी उद्योगों के भावी विकास का मार्ग-निर्देशक पट्ट के रूप में कार्य करता था। प्रो लेविस के अनुसार इस नियोजन में कुछ सीमा तक लक्ष्य का निर्धारण था, कुछ सीमा तक निर्देशन तथा कुछ सीमा तक परिणामों की भविष्यवाणी थी। इसके कार्यक्रम सन्दिग्ध तथा आशाओं पर आश्रित थे। उसमें प्रोजेक्ट तथा निश्चितता के स्थान पर आशा और अनुनय का स्थान था।

अनुदार-दल (1951–1964)

नवम्बर 1951 में पुनः अनुदार दल (Conservative Pary) ने सत्ता हथियाली और आर्थिक नियोजन को पुनः तिलांजली दे दी गई। 1951 से ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था में मन्द गति से विकास होता रहा। कोरिया युद्ध के कारण 1953 में रक्षा-व्यय राष्ट्रीय आय का 10 प्रतिशत भाग था। 1963 तक यह व्यय बढ़ता ही गया। ब्रिटेन के द्वारा 1949 में पौण्ड का अवमूल्यन करने के बावजूद भुगतान सन्तुलन की समस्या विकट बनती गई। औद्योगिक प्रबन्ध में दोषों के प्रादुर्भाव तथा श्रमिक संघों की दोषपूर्ण संरचना से ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था बिगड़ती गई। 1948 से 1959 के बीच फुटकर मूल्यों में 80 प्रतिशत की वृद्धि हुई और मूल्यस्तर तथा मुद्रा-स्फीति की समस्या विकट हो रही थी। क्षेत्रीय बेरोजगारी का प्रकोप बढ़ता जा

रहा था। 1963 में उत्तरी इङ्गलैण्ड तथा स्काटलैण्ड में तो लगभग $4\frac{1}{2}$ प्रतिशत व्यक्ति बेरोजगार थे पर उत्तरी आयरलैण्ड में 7 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति बेरोजगार थे।

अत: अर्थ-व्यवस्था के विकास और स्थायित्व के लिए 1961 के सेलविन लॉयड के सुझाव पर 1962 में राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद (National Economic Development Council or N.E.D.C.) की स्थापना की गई। इस परिषद में श्रमिक संघों, उद्योगपतियों, अर्थशास्त्रियों तथा सार्वजनिक उद्योगों के प्रतिनिधियों को लिया गया। इस परिषद का उद्देश्य प्राकृतिक साधनों के समुचित उपयोग के सुझाव, प्रगति का निरीक्षण, भावी विकास के बाधक तत्वों का अध्ययन तथा विकास का मार्ग प्रशस्त करना है। 1963 मे इस परिषद ने अपना एक प्रतिवेदन ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था का 1966 तक विकास (Growth of the United Kingdom Economy of 1966) तथा दूसरा प्रतिवेदन तीव्र गति से विकास की अनुकूल दशाएं (Conditions Favourable to Faster Growth) प्रकाशित किया। प्रथम में ब्रिटेन के 17 प्रमुख उद्योगों के 1966 तक के लक्ष्य निर्धारित किये गये थें और अर्थ-व्यवस्था का 4% वार्षिक दर से विकास करना था तथा द्वितीय में ब्रिटेन की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन तथा सुधार के सुझावों का समावेश था।

1964 में मजदूर-दल की सरकार और आर्थिक नियोजन

13 वर्षों तक अनुदार-दल की सरकार (Conservative Party Government) के बाद अक्टूबर 1964 में पुन: मजदूर दल की सरकार बनी। मजदूर सरकार ने सत्तारूढ़ होते ही आर्थिक गतिविधि विभाग (The Department of Economic Affairs) की स्थापना की। यद्यपि अनुदार दल के शासनकाल में कोई बुरी व्यवस्था नहीं रही पर अर्थ-व्यवस्था में विकास की गति बहुत ही मन्द थी। भुगतान सन्तुलन की समस्या, बेरोजगारी की समस्या तथा अर्थ-व्यवस्था में आधुनिककरण का अभाव गम्भीर खतरे के सूचक बन गये थे। अत: लोग यह अनुभव करने लग गये थे कि अनुदार-दल की सरकार के अन्तर्गत जीवन में कष्ट बढ़ रहे थे।

मजदूर सरकार ने सत्ता संभालने के 15 दिन बाद ही आयात को कम करने के लिए 15 प्रतिशत का अतिरिक्त कर लगा दिया तथा निर्यात वृद्धि के लिए कदम उठाये गये जिससे दीर्घकालीन ऋण, निर्यात साख गारन्टी, विभाग द्वारा ओवर ड्राफ्ट की अनुमति, विदेशी बाजारों के अनुसंधान तथा व्यापारिक प्रतिनिधि-मण्डल भेजने के लिए वित्तीय सहायता दी जाने लगी।

ब्रिटेन की प्रथम पंचवर्षीय योजना

(1964-65 से सन् 1969-70)

16 सितम्बर 1965 को राष्ट्रीय विकास परिषद के द्वारा तैयार की गई

प्रथम पंचवर्षीय योजना मजदूर-सरकार ने श्वेत-पत्र के रूप में प्रकाशित की जिसमें राष्ट्रीय योजना के विभिन्न कार्यक्रमों व उद्देश्यों को अंकित किया गया। इस योजना में अगले पांच वर्षों में राष्ट्रीय आय में 25% की वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति आय में 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया। योजना के अन्त तक बेरोजगारी की समस्या का पूर्णतः समाधान करने का प्रावधान था यहां तक कि दो लाख कुशल श्रमिकों की कमी की संभावना व्यक्त की गई थी।

प्रथम योजना और रोजगार

इस योजना में औद्योगिक उत्पादन में 25% वृद्धि करने हेतु 8 लाख श्रमिकों की मांग होती जिसमें से 4 लाख श्रमिक जनसंख्या की सामान्य वृद्धि से उपलब्ध होने, 2 लाख बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करने तथा शेष दो लाख की पूर्ति उत्पादकता में वृद्धि करके किये जाने का प्रावधान था। कुशल श्रमिकों की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा प्रशिक्षण बोर्ड तथा केन्द्रों की स्थापना की व्यवस्था थी। क्षेत्रीय विषमता को दूर करने के लिए भी उचित व्यवस्था की गई थी ताकि वहां भी बेरोजगारी का समापन हो सके।

यद्यपि मजदूर सरकार ने आंशिक नियोजन के आधार पर ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था की समस्याओं के समाधान के लिए अनेक प्रभावी कदम उठाये हैं पर फिर भी अनेक समस्यायें विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। भुगतान सन्तुलन की समस्या से पौण्ड का अवमूल्यन करना पड़ा है। 1967 में लोह-इस्पात उद्योग का पुनः राष्ट्रीयकरण कर लिया गया है। 1965 में ही मूल्य-आय राष्ट्रीय मण्डल (National Board for Prices and Income) संगठित किया गया है। 1964–65 में मूल्य तथा आय नीति की घोषणा की गई है। 1966 में 12 महिनों के लिए मूल्य तथा आय अधिनियम के अन्तर्गत वेतन, मजदूरी तथा लाभांश वृद्धि पर रोक लगा कर मजदूरी स्थिरीकरण की नीति (Wage Freeze Policy) का अनुसरण किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि युद्धोत्तरकाल में मजदूर-सरकार ने आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया प्रारम्भ की है और शनैः शनैः नियोजन सम्बन्धी संगठनों का विकास होने से ब्रिटेन नियोजित विकास की ओर उन्मुख हो रहा है पर फिर भी बेरोजगारी, मुद्रा-स्फीति, निर्यात संवर्धन, भुगतान असन्तुलन तथा आधुनिककरण आदि ऐसी समस्यायें हैं जो ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था को गतिशील बनाये रखने तथा तेजी से विकास करने में बाधक हैं। इन आर्थिक संकटों का मुकाबला नियोजन में ही संभव लगता है। बेरोजगारी के समापन के लिए तो यह आवश्यक है ही।

भाग-2

अमेरिका
के
आर्थिक विकास के
युग-प्रवर्तक-चिन्ह

अध्याय **1**

अमेरिका में पश्चिमोन्मुख विस्तार

(Westward Expansion in U.S. A.)

अमेरिकी उपनिवेशों की आर्थिक स्वतन्त्रता से उनकी प्रगति तथा परिवर्तन का दौर प्रारम्भ हुआ। पूर्व में जनसंख्या के बढ़ जाने से उनमें पश्चिम की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति बढ़ी। पश्चिमोन्मुख विस्तार अमेरिकन जनसंख्या के पश्चिमी भाग में प्रवास तथा विस्तार का द्योतक है। इसका स्पष्ट अर्थ बताना मुश्किल है क्योंकि इसके अन्तर्गत अनेक बातों का समावेश था जो निम्न हैं—

(1) **संयुक्त राज्य अमेरिका की सीमा का विस्तार**—पहले जो मूल 13 उपनिवेश अटलान्टिक सागर के सकड़े किनारे तक सीमित थे उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1783 में अपना विस्तार मुख्य भूमि के आरपार प्रशान्त महासागर तक कर लिया।

(2) **नये क्षेत्रों में जनसंख्या का विस्तार**—स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय एपेलेचियन पहाड़ों के पार पश्चिमी जंगलों में लगभग 10 लाख व्यक्ति रह रहे थे पर बाद में लाल भारतीयों पर विजय, यातायात साधनों में विकास तथा आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण बड़े पैमाने पर जनसंख्या का प्रवास पश्चिमी भागों की ओर हुआ।

(3) **कृषि क्षेत्र का विस्तार**—पूर्वी भागों में निरन्तर कृषि के कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति में ह्रास होने तथा विस्तृत खेती के उद्देश्य से कृषक पश्चिमी क्षेत्र की ओर बढ़े।

(4) **प्रगति की मनोवृत्ति का द्योतक**—पश्चिमोन्मुख विस्तार, अमेरिकी जनता का भविष्य में विश्वास, कठिन परिश्रम के प्रति रुचि एवं समृद्धि के प्रति लालसा का प्रतीक है। प्रो० टर्नर ने पश्चिमोन्मुख आन्दोलन को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—

"American history has been to a large degree the history of Colonisation of the Great West. The existance of an area of free land its continuous recession and advance of American settlement West ward explains American development."

पश्चिमोन्मुख विस्तार का ढांचा
(Pattern of Westward Movement)

पश्चिमोन्मुख विस्तार आन्दोलन का प्रारम्भ शिकारियों, व्यापारियों एवं धार्मिक पादरियों से हुआ। उनके बाद दूसरा चरण बड़े खेतों के कृषकों एवं पशु रखने वाले कृषकों का था। तीसरे चरण में खेतीहर कृषकों का पदार्पण हुआ जिन्होंने कि बड़े पैमाने पर कृषि कार्य प्रारम्भ किया। इसके बाद पूंजीपति वर्ग तथा साहसियों ने इस वृहत् क्षेत्र के विदोहन के प्रलोभन में व्यापारिक तथा औद्योगिक गतिविधियां प्रारम्भ कीं। प्रारम्भिक वर्षों के पश्चिमोन्मुख विस्तार की प्रगति धीमी थी क्योंकि 1763 के शाही आदेश से पश्चिमी भागों में प्रवास पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। यातायात के साधनों की कमी थी तथा लाल भारतीय पश्चिमी भागों में आने वालों के प्रति विद्रोही थे। इन सब बाधक तत्वों के बावजूद अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में बड़ी संख्या में लोग पश्चिमी भाग में आकर बसे। सरकार ने भी दूसरों से भूमि हस्तगत करने की नीति अपनाई।

पश्चिमोन्मुख विस्तार के कारण
(Causes of Westward Movement)

पूर्वी भाग से बड़ी संख्या में जनसंख्या का पश्चिमी भाग में प्रवास अनेक व्यक्तिगत, सामयिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक तथा आर्थिक कारणों का सामूहिक प्रतिफल था।

(1) **पूर्वी भाग में जनसंख्या वृद्धि**—पूर्वी भाग के ग्रामीण जनसंख्या के प्रति दशक में दुगनी होने की प्रवृत्ति से बड़ी संख्या में जनसंख्या का प्रयाण पश्चिमी भाग में हुआ। इस भाग में 1775 की अनुमानित जनसंख्या दस लाख थी वह बढ़ कर 1820 में 25 लाख तथा 1830 में 35 लाख हो गई। इस प्रकार सम्पूर्ण देश की जनसंख्या 85 वर्षों में 25 लाख से बढ़ कर 315 लाख हो गई। उसके लिए देश की सीमा 3·93 लाख वर्ग मील से बढ़ कर 30·22 लाख वर्ग मील हो गई।

(2) खोजकर्ताओं, साहसियों तथा शिकारियों के द्वारा पश्चिमी भाग के जलवायु, भूमि तथा अवसरों के बारे में अमूल्य जानकारी ने लोगों को आकर्षित किया।

(3) **स्वर्ण प्रलोभन**—उपनिवेशकों में सोने के भण्डार खोजने की लालसा ने उनको इन क्षेत्रों ने आमन्त्रण दिया।

(4) **राष्ट्रीयवाद तथा लाल भारतीयों की पराजय**—पश्चिमी भाग में लाल भारतीयों के अन्त से भय दूर हो गया तथा अपने आपको अमेरिकी राष्ट्रीय समझने वाले लोगों में विस्तारवाद की प्रवृत्ति लागू हुई। अतः उन्होंने पश्चिमी क्षेत्रों की ओर विस्तार किया।

(5) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता**—स्वतन्त्रता चाहने वालों को पश्चिमी भागों में आश्रय उपयुक्त था। अत: व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के इच्छुक, धर्म से पीड़ित तथा राज्य से दण्डित व्यक्ति पश्चिमी भाग में आकर वसने लगे।

(6) **आन्तरिक आर्थिक क्रान्ति**—1807 से 1815 तक पूर्वी व्यापारिक केन्द्रों में माल की वहुतायत तथा मन्दी इम्वार्गो तथा नोन-इन्टर कोर्स अधिनियमों के पारित होने तथा 1812 में युद्ध छिड़ जाने से विदेशी व्यापार अवरुद्ध हो गया। देश में ही उन वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ किया गया जो अव तक इङ्गलैण्ड से आयात की जाती थीं। आन्तरिक उद्योगों के पनपने से पश्चिमी भाग उत्तम वाजार और उत्पादन क्षेत्र था।

(7) **सरकार की उदार नीति तथा प्रोत्साहन**—सरकार की उदार भूमि नीति ने इस आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया। 1841 में Pre-emption Act पास किया जिससे भूमि पर अनाधिकृत कब्जा करने वालों को 160 एकड़ भूमि 1·25 डालर प्रति एकड़ के हिसाब से खरीदने की सुविधा देकर वैधानिकता प्रदान की। 1891 में इसे रद्द कर दिया। 1862 के Homestead Act ने प्रवास और भी सुविधाजनक वना दिया जिसके अन्तर्गत किसानों को वसने के लिए 160 एकड़ भूमि उनकी इच्छानुसार मुफ्त प्रदान करने का प्रावधान था। इस अधिनियम की खामियों को दूर करने तथा सुविधा प्रदान करने के लिए पूरक अधिनियम मोरिल एक्ट, 1862, (कृषि कॉलेजों के लिए भूमि आवंटन) टिम्वर कल्चर एक्ट 1873, (वनरोपण का प्रोत्साहन देने) डेजर्ट लेण्ड एक्ट 1877, (सिंचाई विकास में सहयोग के लिए) पारित किये गये। 1785 का भूमि-अध्यादेश (Land Ordinance) भी महत्वपूर्ण था। 1854 के Graduation Act के कारण सरकार ने किसानों को उनके पास वाली भूमि को 12·5 सेन्ट प्रति एकड़ वेचने का प्रावधान किया उससे किसानों को कम कीमत पर भूमि प्राप्त हो गई तथा सरकार को बिना विक्री जमीन वेच कर पैसा कमाने का मौका मिला।

(8) **यातायात एवं संचार व्यवस्था का विकास**—सड़क, जल तथा रेल यातायात के विकास के कारण पश्चिमी क्षेत्र के भीतरी भागों में पहुँचना तथा आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति सुलभ हो गई। इस तरह बसने में मुख्य कठिनाइयों की समाप्ति ने जनसंख्या के पश्चिमी भाग में प्रवास को गति प्रदान की।

(9) **भूमि का सट्टा**—कृषकों, उद्योगपतियों तथा रेलवे कम्पनियों में भूमि को कुछ सुधार होने पर वेच कर ऊंची कीमत प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने इस आन्दोलन में बड़ा योग दिया क्योंकि ये भूमि सटोरिये पहले वाले क्षेत्रों में भूमि वेच कर आगे वाले अविकसित क्षेत्रों में सरकार से रियायती दर पर भूमि प्राप्त करते और विकास होने पर फिर वेच कर आगे वढ़ते। इस क्रिया से पश्चिमी क्षेत्र में प्रवास निरन्तर प्रगति करता रहा।

(10) **भूमि की उपजाऊ शक्ति में ह्रास**—पूर्वी भाग में भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए भार तथा निरन्तर कृषि से भूमि की उपजाऊ शक्ति का ह्रास हो गया था। कृषकों में विस्तृत खेती की प्रवृति ने उन्हें पश्चिमी उपजाऊ क्षेत्रों की ओर आकर्षित किया।

(11) **यूरोप की संक्रमणात्मक स्थिति**—यूरोप में एक ओर नेपोलियन ने लोगों के जीवन को संकटमय बना दिया और दूसरी ओर औद्योगिक क्रान्ति ने बेरोजगारी तथा श्रमिकों के शोषण की प्रवृति से फ्रांस, इङ्गलैण्ड, स्पेन तथा यूरोप के अन्य देशों के निवासियों को अमेरिका ही एक मात्र आश्रय स्थान प्रतीत हुआ और सम्पन्न पूंजीपतियों ने भी अमेरिका के पश्चिमी भाग में विनियोग करना लाभप्रद समझा। अत: पश्चिमी भाग में यूरोप के भूखे, नंगों और निराश्रितों को आश्रय तथा पूंजी का विनियोग हुआ।

पश्चिमोन्मुख विस्तार के प्रभाव
(Effects of Westward Expansion)

जिस तरह पश्चिमोन्मुख विस्तार के कारणों में विभिन्नता तथा विचित्रता थी उनके प्रभाव भी अनेक थे जिन्हें अध्ययन की दृष्टि से आर्थिक, राजनैतिक तथा सैद्धान्तिक शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।

(अ) आर्थिक प्रभाव
(Economic Effects)

संयुक्त राज्य अमेरिका अपने आर्थिक विकास के प्रथम चरण में कृषि प्रधान देश था और पश्चिमोन्मुख विस्तार (Westward expansion) में कृषक जनसंख्या की प्रधानता थी। इस विशेषता के कारण सर्वाधिक प्रभाव कृषि क्षेत्र में था।

(1) **कृषकों में विस्तृत दृष्टिकोण**—निरन्तर परिवर्तित परिस्थितियों में अमेरिकी कृषक वर्ग में मद विचारों एवं रूढ़िवादियों के स्थान पर विवेकशीलता, परिवर्तनशीलता तथा व्यावसायिक कृषि के प्रति रुचि जागृत हुई।

(2) **बड़े पैमाने पर कृषि तथा यंत्रीकरण को बढ़ावा**—सरकार के द्वारा रियायती दरों पर विस्तृत भूखण्डों का आवंटन होने से तथा पर्याप्त मात्रा में भूमि उपलब्ध होने से बड़े-बड़े खेतों का निर्माण हुआ और उनमें यंत्रों का प्रयोग किया जाने लगा। इस व्यावसायिक कृषि में ही अमेरिका के उज्ज्वल भविष्य के बीज निहित थे।

(3) **कृषकों तथा उद्योगपतियों में सट्टे की प्रवृत्ति का बाढ़वा**—भूमि व्यवसाय में सट्टे की प्रवृतियाँ बढ़ीं। किसान पहले सटोरिये और बाद में किसान थे। इस प्रवृत्ति ने पश्चिम में प्रवास को और अधिक बढ़ावा दिया।

(4) **यातायात के साधनों का विकास एवं प्रतिस्पर्द्धा**—यातायात के साधनों से विकास को बढ़ावा मिला और जनता ने सड़क, रेल तथा नहरों के निर्माण के लिये

सरकार को सहायता के लिये वाध्य किया। यातायात साधनों के विकास से पश्चिम तथा पूर्व की प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी। इससे पूर्व के किसानों का टिकना मुश्किल हो गया। कपास के उत्पादन क्षेत्रों में तम्बाकू उगाई जाने लगी।

(5) **उद्योगों पर प्रभाव**—पूर्वी उद्योगपतियों के अनुसार श्रम के पश्चिम में प्रयाण से मजदूरी की दरों में वृद्धि से औद्योगिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ा जबकि दूसरी ओर कृषि के लिये मजदूरों की कमी थी। इनके बावजूद भी 1840 से 1850 के वर्षों में पूर्वी क्षेत्रों में बेरोजगारी व्याप्त थी। पूर्वी भाग के उद्योगों को पश्चिमी विस्तृत बाजार प्राप्त हो जाने से भौगोलिक श्रम विभाजन को बढ़ावा मिला। इससे पूर्व औद्योगिक क्षेत्र, पश्चिमी खाद्य उत्पादन क्षेत्र तथा दक्षिणी भाग कपास उत्पादन क्षेत्र बन गये। इसमे औद्योगिक स्वतन्त्रता, कृषि विकास सम्भव हुआ जिससे राष्ट्र की समृद्धि और जनता के उच्च जीवनस्तर का मार्ग खुला। इसके साथ-साथ अमेरिका के पूर्वी भागों में प्रोद्योगिक बेकारी (Techinological unemployment) को भी दूर करने में पश्चिमोन्मुख प्रयाण सहायक रहा क्योंकि पश्चिम में उन्हें आजीविका का मौका मिला। इस तरह पश्चिमन्मुख प्रयाण ने प्रौद्योगिक बेकारी के विरुद्ध बीमा का सा योग दिया।

(6) **प्राकृतिक साधनों का विदोहन सम्भव**—पश्चिमोन्मुख प्रयाण के अभाव में इस क्षेत्र के प्राकृतिक साधनों का विदोहन न हो पाता। बड़ी संख्या में जनसंख्या प्रवास ने इस क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पत्ति को राष्ट्रीय विकास में विदोहन का सुअवसर प्रदान किया।

(7) **भूमि-क्षरण एवं अपव्यय**—पश्चिमी भागों में तेजी से विस्तार तथा सरकार की उदार भूमि नीति से किसानों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास में प्रोत्साहन मिला। इससे किसानों में भूमि संरक्षण के प्रति रुचि का अभाव होने से से अनेक उपजाऊ क्षेत्र लापरवाही के कारण बंजर हो गये। यह राष्ट्रीय सम्पत्ति का घोर अपव्यय था।

(8) **भूमि स्थापन**—पश्चिमोन्मुख प्रयाण ने अटलान्टिक तथा प्रशान्त महासागर के तटों की 3000 मील की दूरी को 50 वर्षों में ही मिला दिया जबकि प्रयाण के अभाव में इन दूर क्षेत्रों को आवाद करने में वर्षों लग जाते।

(ब) राजनैतिक प्रभाव
(Political effects)

पश्चिमोन्मुख पलायन ने सरकारी नीति में उदारता तथा राजनैतिक क्षेत्र में संस्थागत परिवर्तनों को जन्म दिया। आर्थिक प्रभावों के कारण सरकार ने आंतरिक सुधार तथा नियमन की नीतियां अपनाईं।

(1) **आन्तरिक व्यवस्था में सुधार**—पश्चिमी भाग में बसने वालों को यातायात, संचार एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिये सरकार को रेल, सड़क तथा आंतरिक जल यातायात को विकसित करने के लिये आर्थिक सहायता देनी पड़ी।

(2) **व्यावसायिक नियमन**—पश्चिमी क्षेत्र के राजनीतिज्ञों के प्रयत्नों से व्यावसायिक क्रियाओं के नियमन तथा एकाधिकार प्रवृत्तियों के नियन्त्रण के लिये अन्तर्राज्य व्यापार कमीशन, एन्टी-ट्रस्ट अधिनियम, रेलवे भाड़े के नियन्त्रण सम्बन्धी अनेक तरीके अपनाए गये।

(3) **कट्टर राष्ट्रीयवाद का विकास**—पश्चिमी भाग में बसने वालों में राष्ट्रीयता की भावना थी और पूर्वी भाग में बसने वालों की अपेक्षा अधिक सबल थे। इससे राजनैतिक एकता तथा राष्ट्रीय सबलता बढ़ती गई।

(4) **राजनैतिक विकेन्द्रीकरण**—इस विस्तृत विस्तार एवं दूरी ने पश्चिमी भागों के लोगों में राजनैतिक स्वायत्तता की भावना ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया।

(5) **सरकार द्वारा उदार भूमि नीति को प्रोत्साहन**—पश्चिमी भाग की आर्थिक सम्भावनाओं के विदोहन तथा जनसंख्या के पलायन को प्रोत्साहन देने के लिये रियायती दरों पर भूमिखण्डों का आवंटन तथा सर्वेक्षण सम्बन्धी नीतियों को प्रोत्साहन मिला। इस नीति से सरकार को भी आय हुई और नये क्षेत्रों के सदुपयोग से आर्थिक विकास हुआ।

(6) **पश्चिमी भाग के राजनीतिज्ञों का सत्ता पर प्रभाव**—पश्चिमी भाग की जनसंख्या बिखरी हुई थी और प्रतिनिधी सभा में यद्यपि उनका कम प्रभाव था पर सीनेट में उनकी शक्ति अधिक थी। उनकी राजनैतिक जागृति से ही 1828 के राष्ट्रपति चुनाव में राष्ट्रपति पद पश्चिम भाग के ही एन्ड्रयू जेक्शन को ही मिला। अब्राहम ·लिंकन भी प्रवासी परिवार का ही सदस्य था। इस बढ़ते हुए राजनैतिक प्रभाव से 1860 तक 33 राज्यों में से 18 राज्य पश्चिम के थे।

(7) **जनतन्त्र को बढ़ावा**—जनतन्त्र को बढ़ावा मिला यहां तक कि लोकप्रिय सरकार के निर्माण के लिये औद्योगिक स्वतन्त्रता के लिये नये अधिनियम पारित किये गये।

(स) सामाजिक तथा सैद्धान्तिक प्रभाव
(Social and Moral effects)

सामाजिक एवं सैद्धान्तिक प्रभावों के सम्बन्ध में विचारकों के मतों में भिन्नता है। कुछ ने पश्चिमोन्मुख प्रयाण को अमेरिकी समाज में नये युग का सूत्रपात माना है तो कुछ ने इसे देश की सांस्कृतिक पतन की शुरूआत कहा है। पर तथ्यों को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता कि इस प्रयाण ने अमेरिकी जनता में जागृति,

चरित्र, आत्मनिर्भरता, सहयोग, कठिन परिश्रम तथा आत्मविश्वास की नींव मजबूत की। ये परिवर्तन संक्षेप में निम्न हैं—

(1) **व्यक्तिवाद का विकास**—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अमेरिकी लोगों के दिमाग में घर कर चुकी थी और उनमें आत्म-निर्भर बनने की लालसा प्रबल बन गई।

(2) जनतन्त्र और स्वतन्त्रता की भावना में वृद्धि हो रही थी।

(3) **भौतिक दृष्टिकोण**—आर्थिक सुरक्षा की भावना ने उनमें मुद्रा का मोह उत्पन्न कर दिया था और अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी इस भौतिक समृद्धि को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न चालू रहने से भौतिक समृद्धि ही मानव उद्देश्य हो गया जो कि उनके आर्थिक कष्टों की रामबाण औषधि थी।

(4) **व्यवहारिकता एवं परिवर्तनशीलता का विकास**—भौतिक दृष्टिकोण ने पश्चिमोन्मुख जनता में अपनी समस्याओं को सुलझाने के प्रति विश्वास तथा सदृढ़ता का आविर्भाव हुआ क्योंकि पश्चिमी जंगलों के कठोर जीवन ने उन्हें जीवन की वास्तविकता के नजदीक लाकर रख दिया। वे अपने को परिस्थितियों के अनुकूल ढ़ालने में सदा तत्पर रहने लगे। इससे वैज्ञानिक कृषि को बढ़ावा मिला और उन्हें परिवर्तन कष्टमय नहीं लगता था।

(5) साहसिक कार्यों में अभिरुचि में वृद्धि हुई तथा खतरे का सामना करने की प्रवृतियों का विकास हुआ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पश्चिमोन्मुख पलायन से अमेरिकी जनता में राजनैतिक जागृति, भौतिक विकास की लालसा, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आधारित आत्म निर्भर तथा समृद्धिशाली जीवन-यापन की भावना विकसित हुई। उनमें चरित्र की निर्मलता, आत्मविश्वास की सुदृढ़ता तथा कठिन परिश्रम के प्रति रुचि पर आधारित राष्ट्रीयवाद का विकास हुआ। इसी कारण से प्रो० टर्नर ने इसे अमेरिकी इतिहास का महत्वपूर्व सोपान माना है।

———

अध्याय 2

अमेरिका में रेल-सड़क यातायात एवं संचार साधनों का विकास

(Development of Rail-Road Transport and Communications)

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन का समुचित विकास बहुत कुछ देश की विकसित एवं समुन्नत यातायात और संचार व्यवस्था पर निर्भर करता है। यदि कृषि और उद्योग राष्ट्रीय ढांचे के शरीर और अस्थियां हैं तो यातायात और संचार के साधन उनकी रक्त शिराएं हैं जिनसे कि प्रगति का संचार होता है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने तो सभ्यता के विकास का इतिहास ही परिवहन का इतिहास माना है। किपलिंग के मतानुसार "यातायात ही सभ्यता है।" सस्ते और शीघ्रगामी यातायात तथा संचार के साधन आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं और देश के विकास के द्योतक हैं। इस सन्दर्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका में यातायात एवं संचार के साधनों का विकास महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि इन साधनों के विकास ने अमेरिका को आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक प्रगति के शीर्षबिन्दु पर पहुँचा कर विश्व में अग्रणी बना दिया है।

क्रमिक विकास—आज विश्व में यातायात और संचार व्यवस्था में अग्रणी देश अमेरिका अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय इस दृष्टि से पिछड़ा था। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व यातायात विकास की प्रगति शिथिल थी। साधनों का अभाव था क्योंकि उस समय सभी 13 उपनिवेश अटलान्टिक सागर के तटीय क्षेत्र में थे। भीतरी भागों में जाने से भय खाते थे, नदियां बाधा उपस्थित करती थीं, धन का अभाव था, सड़क तथा पुल निर्माण-कला की अनभिज्ञता थी और जनसाधारण में इनके विकास की रुचि का अभाव था पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद परिस्थितियों में तेज परिवर्तन आया और यातायात और संचार विकास कार्यों की अनेक कारणों से अनिवार्यता महसूस की जाने लगी। ये कारण संक्षेप में निम्न थे—

(1) **राष्ट्रीय नेताओं की रुचि**—आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से यातायात और संचार साधनों के विकास को प्रोत्साहन देने में नये नेताओं ने दिलचस्पी ली।

वाशिंगटन ने जनता को आह्वान करते हुए उनके विकास के बढ़ावा देने की अपील की।

(2) देश में पश्चिमोन्मुख प्रयाण तथा आर्थिक विकास में तेजी के कारण भी इस क्रिया को बल मिला।

(3) निजी साहसियों ने इनके विकास में गहरी रुचि ली।

(4) विदेशी पूंजी को नियमित तथा ऊँचे लाभ ने आकर्षित किया तथा धन प्राप्त होने लगा।

कृषि तथा औद्योगिक विकास में रेल-सड़क यातायात का महत्वपूर्ण योगदान रहा। विकास के प्रारम्भिक वर्षो में झीलें और नहरें प्रमुख साधन थीं पर शनैः-शनैः सड़क तथा रेलों का विकास हुआ। बीसवीं शताब्दी में स्वयं संचालित मोटर तथा हवाई जहाजों के निर्माण ने नयी क्रांति का सूत्रपात किया और आज चन्द्रमा तक पहुँचने की सफलता तथा मंगल ग्रह पर विजय की ओर अग्रसर है। टेलीग्राफ, टेलीफोन तथा बेतार के तार आदि संचार साधनों के विकास की कहानी कहते हैं। इन विभिन्न साधनों के क्रमिक विकास का विवरण इस प्रकार है—

(1) सड़क यातायात
(Road Transport)

स्थल यातायात में सड़क यातायात महत्व पूर्ण स्थान रखता है। औपनिवेशिक काल में अमेरिका में सड़कों की दुर्दशा थी पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही नेताओं ने देश की खनिज सम्पदा, वन सम्पदा तथा दूर क्षेत्रों में व्यापार, उद्योग तथा कृषि विकास सम्भावनाओं से प्रेरित हो सड़क यातायात की प्रगति के प्रयत्न प्रारम्भ किये। प्रारम्भ में सरकार ने प्रत्येक शहर पर अपने निकटतम गांवों को सड़कों द्वारा जोड़ने का उत्तरदायित्व डाला और इससे कच्ची सड़कों का निर्माण प्रारम्भ हुआ।

सड़क विकास का प्रथम सुनियोजित प्रयास निजी साहसियों द्वारा किया गया। जिस प्रकार इङ्गलैण्ड में सड़क यातायात विकास से टर्नपाइक ट्रस्टस् (Turnpike Trusts) नामक संस्थाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है उसी के आदर्शों पर अमेरिका में भी सड़क यातायात विकास का कार्य 'टर्नपाइक ट्रस्टस्' संस्थाओं को सौंपा गया। संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों ने व्यापारिक-आधार पर सड़क निर्माण कार्य प्रारम्भ किये और सड़क का उपयोग करने वालों से एक प्रकार का कर वसूल किया जाता था। इन संस्थाओं द्वारा सड़कें बनाई जातीं, कर वसूल किया जाता तथा हिस्सेदारों को अच्छा लाभाँश दिया जाता। इसी प्रकार पुलों का निर्माण किया जाता था। इन संस्थाओं में फिलाडेलफिया एवं लंकास्टर टर्नपाईक रोड कम्पनी (1792) प्रमुख थी। 1790 से 1820 की अवधि में सड़क यातायात का तेजी से विकास हुआ। इन संस्थाओं में धन की कमी, निर्माण विज्ञान का अभाव तथा सूझ-बूझ की

मन्दता से सड़क यातायात का विकास अनियमित तथा अनियन्त्रित रहा फिर भी इन संस्थाओं ने लगभग 9000 मील लम्बी सड़कों का निर्माण किया तथा 1820 तक यातायात लागत तथा समय में 50 से 75% की कमी हुई।

सन् 1802 में संघ सरकार ने पश्चिम की ओर राष्ट्रीय सड़क बनाने की योजना बनाई पर 1812 के युद्ध तक प्रगति नगण्य थी। युद्ध में पूर्ति के अभाव तथा बाल्टीमोर व्यापारियों और पश्चिमी नेताओं की माँग पर "कम्बरलैण्ड सड़क" (Cumberland Road) तेजी से निर्मित की जाने लगी तथा 1817 तक सड़क बन कर तैयार हुई और कम्बरलैण्ड मेरीलैंड को आहियों नदी के व्हीलिंग से जोड़ दिया। अन्तत: जनीसविल (Zanesville) कोलम्बस, इण्डियानोपोलिस, वेनडिलीया और इलियोनियस भी इस सड़क का विस्तार कर जोड़ दिये गये। अगले बीस वर्षों में *अर्थात् 1837 तक संघ सरकार के इस प्रयास से प्रोत्साहित हो संघ सरकार के इस* व्यवसायिक साहस से राज्य सरकारें भी सड़क निर्माण कार्यों में गहरी रुचि लेने लगीं। 1861 के गृह-युद्ध ने सरकार की आँखें खोल दीं तथा सरकार और जनता दोनों ने सड़क विकास के महत्व को समझा। 1877 में जोर्ज सेलडन से इन्टरनल कम्बस्टन गैस इन्जिन के आविष्कार से सड़क विकास में नये युग का सूत्रपात हुआ। सड़कों की लम्बाई तथा वाहनों में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। 1908 में हेनरी फोर्ड द्वारा कार निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ और 1914 तक वह 10 लाख वाहन बना चुका था। 1914 में लिंकन (Lincoln) हाईवे बना। प्रथम विश्वयुद्ध से मोटरों तथा ट्रकों के यातायात को बढ़ावा मिला यहां तक कि (1910-20) के दशक में मोटर वाहनों की पंजीकृत संख्या तिगुनी तथा सतह वाली सड़कों की कुल लम्बाई दुगनी हो गई। सन् 1916 में सरकार ने 'फेडरल ऐड हाईवे एक्ट' पारित कर संघ सरकार तथा राज्य सरकारों में हाईवे निर्माण लागत का दोनों द्वारा भार वहन करने का प्रावधान किया। 1921 में संघ सरकार ने सड़कों का नियोजन तथा विकास अपने हाथ में ले लिया। 1930 तक सतह वाली सड़कों की लम्बाई फिर दुगनी हो गई। आटोमोबाईल उद्योग सबसे बड़ा उद्योग हो गया। यह प्रगति निम्न तालिका से स्पष्ट है—

अमेरिका में सड़क यातायात विकास (1794-1930)

वर्ष	सतहदार सड़कों की लम्बाई (मीलों में)	आटो-पंजीकरण संख्या	ट्रक-पंजीकरण संख्या
1794	31	—	—
1800	1200	—	—
1837	58327	—	—
1900	1,28,500	8000	—
1915	2,76,000	23,32,400	1,58,500
1930	6,94,000	2,29,72,700	45,18,700

1930 की विश्वव्यापी ग्रार्थिक मन्दी के समय सड़कों के विकास में फिर तेजी ग्राई। पुनः निजी व्यक्तियों ग्रौर संस्थाग्रों के द्वारा 'टर्नपाईक संस्थाए'' बनाई गईं। इनमें Pennsylvania Turnpike उल्लेखनीय है जिसने सात पहाड़ों के नीचे टनल बना 350 मील की लम्बी फिलाडेल्फिया से ग्रोहियों सड़क का निर्माण किया। यद्यपि 1930 में वाहनो का उत्पादन कम हुग्रा पर रजिस्ट्रेशन बढ़ा। 1926 में प्रति सौ वर्ग मील पर 80 मील सड़कें तथा प्रति हजार जनसंख्या पर 25·5 मील सड़कें थीं।

1930 से अब तक

विश्वव्यापी ग्रार्थिक मन्दी से सड़क विकास कार्यों पर भी प्रभाव पड़ा। सरकार के नियन्त्रण में वृद्धि होने लगी। 1935 में मोटर केरीयर एक्ट पास किया गया जिससे ग्रन्तर्राज्य सड़क यातायात (Inter State Highway Transportation) पर ग्रन्तर्राज्यीय व्यापार ग्रायोग (Inter State Commerce Commission) का नियन्त्रण हो गया। इसमें राज्यों के कर लगाने तथा उनके हितों की रक्षा का भी ध्यान रखा गया था।

1940 में सरकार की यातायात नीति की घोषणा से यातायात के सभी साधनों पर सरकार का नियन्त्रण तथा नियमन बढ़ गया पर समन्वय का ग्रभाव रहा। द्वितीय विश्व युद्ध ने सड़कों के निर्माण ग्रौर सुधार को प्रोत्साहन दिया। राष्ट्रीय सरकार ने युद्ध-संकट-कालीन स्थिति का मुकाबला करने के लिए निजी कारों के उत्पादन को बन्द करवा उनके स्थान पर हवाई-जहाज, टैंक्स तथा मिलिट्री वाहन उत्पादन किये जाने लगे। सन् 1944 में National System of Inter-state and Defence Highways बनाया गया। रेल-सड़क यातायात प्रतियोगिता के समाप्त करने तथा समन्वय बैठाने के लिए प्रयत्न जारी रहे। देश में राज-मार्गों का जाल सा बिछ गया। सामूहिक महत्व के स्थानों तथा सुदूर भागों को यातायात क्षेत्र में ले लिया गया। फेडरल एड प्राईमरी पद्धति सभी मुख्य शहरों, राजधानियों, बन्दरगाहों तथा ग्रौद्योगिक केन्द्रों को जोड़ती है। 1954 में फेडरल एड हाईवेज एक्ट के पारित होने से इन प्राथमिक हाईवेज को ग्रामीण ग्रौर ग्रर्ध-ग्रामीण क्षेत्रों में जोड़ने की व्यवस्था की गई। 1956 से फेडरल एड हाईवे एक्ट के पारित होने से इस दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन ग्राया। संघ सरकार ने 25 बिलियन डालर व्यय की योजना बनाई जिसमें 1969 तक 41000 मील लम्बी राष्ट्रीय ग्रन्तर्राज्यीय तथा सुरक्षा राजमार्गों का निर्माण करने का लक्ष्य था। संघ सरकार ने ग्रपना हिस्सा 90% कर दिया तथा राज्य सरकारों का 10% ही रखा। सन् 1965 में देश में 20 लाख मील ग्रामीण तथा म्यूनिसिपल सड़कें, 9 लाख मील संघ राज-मार्ग, तथा 7 लाख मील लम्बे राज-

मार्ग थे। इस पर संघ सरकार ने 300 करोड़ डालर तथा राज्य सरकारों ने 150 करोड़ डालर व्यय किया। क्रमिक विकास निम्न तथ्यों से स्पष्ट है—

वर्ष	सरफेस रोड्स की लम्बाई (लाख मीलों में)	मोटर रजिस्ट्रेशन संख्या (लाख)	ट्रक रजिस्ट्रेशन संख्या (लाख)
1930	6·94	229·72	35·18
1940	13·67	273 72	45·90
1952	17·82	436·52	89·62
1965	36·00	750·00	150·00

समस्याएं

सड़क यातायात की प्रगति ने जहां एक ग्रोर देश के प्रत्येक भागों को सम्बद्ध कर दिया है ग्रौर राष्ट्र की वर्तमान समृद्धि इस चरम सीमा तक पहुँची है पर वहीं ग्रनेकसमस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं।

(1) प्रतियोगिता में वृद्धि हो गई है जिससे लाभ में कमी हुई है तथा रेल-यातायात ग्रौर हवाई यातायात के लाभों को भी प्रभावित किया है। इस समस्या को दूर करने के लिए संयोग को प्रोत्साहन मिला है।

(2) समन्वय की समस्या—सड़क परिवहन साधनों की तीव्र वृद्धि से रेल माल सड़कों से भेजा जाने लगा है ग्रौर प्रतियोगिता बढ़ने से उनमें समन्वय ग्रधिक ग्रावश्यक तथा कठिन हो गया है।

(2) रेल यातायात
(Railway Transport)

सड़क यातायात के समान ही रेल यातायात का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ग्रमेरिकी सरकार तथा जनता का ध्यान पहले रेल यातायात के विकास की ग्रोर गया। सर्वप्रथम सन् 1827 में वोल्टीमोर-ग्राहियों रेल-रोड कम्पनी की स्थापना से विकास का सूत्रपात हुग्रा। 1829 में डेलावेयर से हडसन तक पहली रेलवे लाईन का निर्माण हुग्रा। 1830 में न्यूयार्क के पीटर कूपर ने ग्रपने स्टीम लोकोमेटिक का सफल प्रदर्शन कर ग्रमेरिकी यातायात इतिहास में नया ग्रध्याय जोड़ा। 1850 तक तो ये रेलवे लाइनें छोटी-छोटी लिंकस थीं ग्रौर उनका मुख्य कार्य माल न ले जाकर सवारियां ले जाने का था। 1833 में ग्रपने समय की सबसे लम्बी रेलवे लाईन बनी। रेलवे का विकास नहरी एवं नदी यातायात के पूरक के रूप में हुग्रा। 1837 की मन्दी से रेलवे यातायात को भारी धक्का पहुँचा जिसे ग्रगले दस वर्षों में भी पूरा न किया जा सका। जहां 1830 में 73 मील लम्बी रेल-लाईनें थीं वह बढ़कर *1840 में 3000 मील तथा 1850 मे 9000 मील हो गई। गृहयुद्ध* के

समय 1860 में यह 30626 मील थी। इस समय तक रेल यातायात का विकास उत्तर तक ही सीमित था।

गृहयुद्ध तथा जनसंख्या के पश्चिमोन्मुख प्रयाण ने रेलों के विकास को गति प्रदान की तथा ट्रान्सकोन्टीनेन्टल लाइनों का निर्माण शुरू हुआ। पहली लाईन ओमहानेब्रस्का से सेक्रेमेन्टो-केलीफोर्निया 1869 मे सम्पूर्ण हुई और इसकी सफलता से प्रोत्साहित हो ऐसी ही तीन और योजनाएं 1880 तक पूरी करली गईं। इसके लिए सरकार ने उदारता से अनुदान तथा ऋण दिये। इसके बाद चार योजनाएं और पूरी की गईं। 1880–1890 के दशक में रेल-यातायात की सर्वाधिक प्रगति हुई। रेलों की लम्बाई 1880 में 92000 मील से बढ़ कर 1900 में 1,93,300 मील हो गई। इस अवधि में रेल यातायात में तीव्र स्पर्द्धा थी इसे समाप्त करने के लिए संयुक्तीकरण को प्रोत्साहन मिला। प्रारम्भ में यह आन्दोलन एकाधिकार प्रवृत्तियों का सूचक था पर इन प्रवृत्तियों पर न्यूयार्क सेन्ट्रल सिस्टम द्वारा नियन्त्रण कर दिया गया जिससे प्रतियोगिता को कम किया जा सके। 1887 के अन्तर्राज्यीय व्यापार अधिनियम (Inter-state Commerce Act) ने पूल्स बनाने को अवैधानिक करार दे दिया फिर भी संयोग आन्दोलन किसी न किसी रूप में चलता रहा। यहां तक कि 1906 में 7 कम्पनियों के नियन्त्रण में संयुक्त राज्य अमेरिका की एक तिहाई रेलें थीं तथा उनकी आय कुल रेलों की आय का 85% था। 1910 तक सभी श्रेणी की रेल्वे लाइनों की कुल लम्बाई 4 लाख मील थी और उनमें 2000 करोड़ डालर पूंजी लगी हुई थी। 1910 के Mann–Elkins Act के कारण अन्तर्राज्यीय व्यापार आयोग का नियन्त्रण बढ़ गया। 1913 में रेलों द्वारा लिये जाने वाले उचित किराये के निर्धारण के लिए Physical valuation Act पास कर लिया पर प्रथम विश्व युद्ध के कारण यह कार्यरूप में लागू न किया जा सका।

प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय विश्वयुद्ध तक
(Period from I to II World Wars)

1914 तक रेलों का निर्माण कार्य चरम सीमा तक पहुँच गया था यहां तक कि 1910 से 1913 की अवधि में ही प्रति वर्ष 3000 मील लाइनों का निर्माण किया गया। 1914 के बाद प्रगति धीमी पड़ गई यहां तक कि 1920 में सिर्फ 314 मील लम्बी रेल लाइनों का ही निर्माण किया गया। 1916 से 1920 की अवधि में अनेक कारणों से रेल विकास की प्रगति धीमी पड़ गई जिसमें प्रतियोगिता में वृद्धि, मुनाफे में कमी, संकट काल में मितव्ययता के प्रयत्न आदि उल्लेखनीय हैं। 1917 में रेल सुविधाओं में समन्वय के लिए (Rail Road War Board) बनाया गया। फिर भी विशेष सुधार न होने के कारण संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति ने रेलों का नियन्त्रण 28 दिसम्बर 1917 को अपने हाथ में ले लिया और यूनाइटेड स्टेट्स रेल रोड

एडमिनिस्ट्रेशन (U.S.R.A.) को कार्यभार सौंपा गया। इससे रेलों को भारी हानि उठानी पड़ी। कुल मिला कर 12 विलियन डालर्स की हानि उठानी पड़ी जो औसतन 15 मिलियन डालर प्रति दिन थी। युद्धोत्तर काल में पुनः रेलों का संचालन कार्य निजी कम्पनियों को सौंप दिया गया पर 1920 में यातायात अधिनियम (Transportation Act) के अन्तर्गत रेल-यातायात पर नियन्त्रण सम्बन्धी धाराओं में महत्व-पूर्ण परिवर्तन किया गया जिससे अन्तर्राज्य-व्यापार आयोग Inter-State Commerce Commission) के अधिकार भाड़े की दरों में निर्धारण करने तथा संयोग के सम्बन्ध में बढ़ गये। आयोग की अनुमति के बिना रेल मार्गों की वृद्धि या कमी नहीं की जा सकती थी। यहां तक कि आयोग के अधिकार में रेलों के वित्तीय प्रशासन का नियन्त्रण करना भी हो गया। श्रमिकों के विवाद से सम्बन्धित धाराओं के अन्तर्गत रेल-रोड लेबर बोर्ड Rail-Road Labour Board) तथा (Rail-Road Board of Adjustment बनाये गये।

1925 में बिजली तथा डिजल से चलने वाले रेल-इन्जिनों का प्रयोग होने लगा। 1927 में ट्रैफिक नियन्त्रण की केन्द्रीय पद्धति अपनाई गयी और सवारी डिब्बों को वातानुकूलित किया गया। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी (1929-33) के काल में रेलों के विकास को धक्का लगा पर रेलवे प्रबन्धकों में प्रगतिशीलता के विचारों से रेलों में विनियोग तथा सुविधाएँ बढ़ती ही गईं। यहां तक कि 1929-1940 की अवधि में 11 विलियन डालर खर्च किया गया जिसमें कम से कम 5 विलियन डालर शुद्ध विनियोग था। मंदीकाल (1933) में संकट कालीन यातायात अधिनियम (Emergency Transportation Act) पारित हुआ। 1934, 1937 तथा 1938 में क्रमशः सुविधाजनक यात्री गाड़ियां, दो तरफा रेल टेलीफोन व्यवस्था तथा स्वचालित कूपर इन्जिन काम में आने लगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध

इस युद्ध के आरम्भ तक रेल यातायात पर्याप्त विकसित हो चुका था तथा युद्ध से उत्पन्न स्थिति का मुकाबला करने में सक्षम था। प्रथम विश्व युद्ध के अनुभवों से इस युद्ध में समस्याओं का समाधान अपेक्षाकृत सरल हो गया था। 1940 में यातायात के सभी साधनों में समन्वय करने के लिये यातायात अधिनियम (Transportation Act स्वीकार किया गया जिसमें वित्तीय सहायता के लिये पुर्ननिमाण वित्त निगम (Reconstruction Finance Corporation) स्थापित किया गया जो 50 करोड़ डालर तक ऋण देने की व्यवस्था करता था।

इस बार रेलों का स्वामित्व निजी क्षेत्र का ही था इससे रेलों ने आश्चर्य-जनक प्रगति की। अन्तर-राज्य-व्यापार आयोग के अध्यक्ष को 1941 में स्थापित सुरक्षा यातायात कार्यालय (Office of Defence Transportation) का निर्देशक

नियुक्त किया गया। उस समय रेलें मिलिटरी के 98% कर्मचारियों तथा 91% माल वाहन का कार्य भार संभाल रही थीं।

युद्धोत्तर काल

युद्ध-पूर्व काल में रेलों के क्षेत्र में जो भी तकनीकी प्रगति हुई युद्धकालीन संकट से स्तब्ध रह गई पर युद्धोपरान्त 1945 में पुन: प्रगति प्रारम्भ हो गई। 10 से 15 विलियन डालर के विनियोग से नई लाइनें, पुरानी लाइनों का सुधार, आधुनिकतम सिगनल तथा संचार व्यवस्था की गई। हजारों डिजल-विजली के इन्जिनों का प्रयोग होने लगा और अणुचालित इन्जिनों का भी प्रयोग होने लगा।

युद्ध के समय से ही रेलों पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण एवं प्रवन्ध था उसे सुदृढ़ किया गया। 1954 में राष्ट्रपति आइजन होवर ने 'यातायात नीति संगठन' (Transport Policy and Organisation) के लिये 1940 के अधिनियम में परिवर्तनों की सिफारिश के लिये नियुक्त की गई। समिति ने 1955 में अपना प्रतिवेदन दिया जिसमें दरों के नियन्त्रण में प्रतिस्पर्द्धात्मक तत्वों पर अधिक वल दिया। इस रिपोर्ट से मोटर तथा जल-यातायात के स्वामी असन्तुष्ट थे। समिति की सिफारिशों पर 1958 में यातायात अधिनियम (Transportation Act) पारित हुआ जिसमें अन्तर-राज्य व्यापार आयोग (I C.C.) पर 1940 के अधिनियम से अधिक अधिकार प्रदान कर उसकी समस्याओं को सुलझाने के लिये हर सम्भव प्रयत्न की व्यवस्था की।

वर्तमान स्थिति तथा समस्याएँ
(Present Position and Problems)

विभिन्न कठिनाइयों के वावजूद रेल यातायात का विकास अमेरिकी आर्थिक विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण रहा है। 1965 में 400 रेल्वे कम्पनियां 3,75,000 मील लम्वे रेल मार्गों पर कार्यरत थीं। 2500 करोड़ डालर पूंजी विनियोग से देश में 30000 एन्जिन, 27000 सवारी डिव्वे तथा 17 लाख माल डिव्वे थे। निजी कम्पनियों के स्वामित्व में संचालित यह उद्योग अन्तर-राज्य व्यापार आयोग (Interstate Commerce Commission) या (ICC) के कठोर नियन्त्रण तथा नियमन है। यह सरकारी संस्था विभिन्न यातायात के साधनों में समन्वय बैठाती है, किराये भाड़े की दरों का निर्धारण करती है, अनुचित एकाधिकार प्रवृत्तियों को समाप्त कर एक सुसंगठित, सुनियोजिन तथा प्रभाव पूर्ण पक्षपात रहित यातायात साधनों की व्यवस्था करती है। रेलों में 8 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त है।

संक्षेप में यह कहना पर्याप्त है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में रेलों का विकास तेजी से हुआ है। यह निम्नतालिका से एक दृष्टि में स्पष्ट हो जाता है—

संयुक्त राज्य अमेरिका में रेलों का क्रमिक विकास

वर्ष	लम्बाई हजार मीलों में
1870	52·9
1890	167·2
1916	266·4
1925	261·9 कमी होना प्रारम्भ हुआ
1940	246·7
1965	292·0 पुन: वृद्धि

अब संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व में कुल रेलों की लम्बाई का 29% भाग है।

वर्तमान समस्याएं

रेलों के तीव्रगामी विकास के साथ-साथ उसके मार्ग में अनेक बाधाएं आई हैं और इसके सामने निम्न समस्याएं हैं—

(1) **प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि** (Increased Competition)—इन वर्षों में रेलों को सड़क, जल तथा वायु परिवहन के साथ कड़ी प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला करना पड़ा है। ट्रैफिक तथा आय दोनों में कमी होने से पूंजी विनियोग और रोजगार में निरन्तर कमी का रुख है। जहां 1937 में रेलों का ट्रैफिक में 63% भाग था अब वह घटकर 49% रह गया है। पाइप लाइनों से तेल, आंतरिक जल परिवहन, वायुयान से समय तथा धन की बचत से रेलों पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

(2) **सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति**—सरकार ने जहां एक ओर सड़क यातायात, आंतरिक जल यातायात और वायु यातायात के विकास के लिये दिल खोल कर वित्तीय सहायता प्रदान की है वहीं रेलों का विकास निजी क्षेत्र के साधनों पर ही आश्रित रहा है।

(3) **भेदभावपूर्ण कर नीति**—संघ सरकार और राज्य सरकारों ने जहां निजी ट्रक यातायात को 1940 में लगाये गये विशेष कर की छूट दी वहां स्थानीय संस्थाओं के द्वारा रेलों पर अनुचित कर भी लिया गया।

(4) संघ तथा राज्य सरकारों का अत्यधिक नियन्त्रण भी समस्याओं का कारण माना जाता है। सत्यता यह है कि अगर नियन्त्रण न हो तो समस्याएं और भी अधिक हो जातीं।

संचार-साधनों का विकास

(Development of Communication)

अमेरिका की अर्थव्यवस्था के विकास के साथ वहां के सन्देश वाहन के

साधनों का भी तेजी से विकास हुआ है। उद्योगों तथा कृषि के विकास के लिये जिस प्रकार यातायात साधनों का विकास महत्वपूर्ण है उसी प्रकार व्यापार, उद्योग तथा कृषि के विकास के साथ-साथ प्रशासन में कुशलता के लिये सन्देशवाहन के साधनों का विकास भी महत्वपूर्ण है। विचारों को माल की अपेक्षा अधिक सस्ते मूल्य पर भेजा जाना उद्योग-धन्धों तथा व्यापार दोनों के विकास के लिये परम आवश्यक है। अमेरिका में शीघ्र-संचार-व्यवस्था में पांच साधनों का विकास तेजी से हुआ जो क्रमशः पोस्टल सेवाएँ, टेलीफोन, समाचार-पत्र तथा रेडियो-टेलीविजन आदि हैं। इनके क्रमिक विकास का संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(1) पोस्टल सेवाएं
(Postal Services)

ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशों में 1707 से पोस्टल सेवाएँ प्रारम्भ की थीं। 1753 में बेन्जामिन फ्रेंकलिन ने साप्ताहिक डाक व्यवस्था का भार संभाला। 1776 तक 76 पोस्ट ऑफिस लगभग 2400 मील की डाक लेते-लेजाते थे। रेल से डाक ले जाने की व्यवस्था 1835 में हुई। इस समय गवर्नमेन्ट तथा निजी कम्पनियों में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने लगी अतः 1845 में एक अधिनियम पारित कर सस्ती दर की डाक व्यवस्था लागू की। दूसरे राष्ट्रों के साथ डाक संधियाँ की गयीं। 1864 में मनीआर्डर-पद्धति, 1885 में विशिष्ट पत्रवाहन तथा 1896 में निशुल्क ग्रामीण डाक सेवा, 1913 में पार्सल पोस्ट तथा 1918 में हवाई-डाक व्यवस्था शुरू की गई। इस प्रकार पोस्टल-सेवाओं में तेजी से विकास हुआ। 1850 से 1953 की अवधि में विकास का पता निम्न तालिका से लगता है—

पोस्टल सेवाओं का क्रमिक विकास

1850 से 1969

वर्ष	डाक पत्रों की संख्या (करोड़ संख्या)	पोस्ट आफिसों की संख्या	कुल व्यय (करोड़ डालर)
1850	1	18417	·52
1900	71	76688	10·77
1912	176	58729	24·85
1927	267	50266	71·46
1953	509	40609	274·20
1969 (अनुमानित)	900	30000	500·00

इस प्रकार पोस्टल सेवाओं में तेजी से विस्तार हुआ है पर यहां की पोस्टल सेवाओं में सरकार को काफी नुकसान उठाना पड़ा है क्योंकि डाक-व्यय चार्जेज बहुत ही कम रखे गये हैं तथा पत्र-पत्रिकाओं व सरकारी प्रकाशनों पर डाक-चार्जेज नहीं के बराबर वसूल किये जाते हैं ।

(2) टेलीग्राफ तथा टेलीफोन
(Telegraph & Telephone)

1837 में जब सेम्यूल मोर्स ने आधुनिक टेलीग्राफ सन्देशवाहन का आविष्कार किया तथा 1844 मे पहली खबर भेजी गई तो सरकार ने पहले पहल इसके विकास पर 30 हजार डालर व्यय किये । रेलों के साथ-साथ इनका विकास भी जोर पकड़ता गया । 1850 तक 6 कम्पनियां जिनमें वेस्टर्न यूनियन और अमेरिकन कम्पनियां प्रमुख थीं । बाद में दोनों कम्पनियों का एकीकरण हो गया । वेस्टर्न यूनियन अब सर्वोच्च संस्था है । तारों की कुल लम्बाई 20 लाख किलोमीटर से भी अधिक है । केबल तथा तार कम्पनियां अब लगभग 30 से 32 करोड़ डालर का व्यवसाय करती हैं उसमें 90% भाग वेस्टर्न यूनियन का है ।

टेलीफोन की व्यवस्था भी अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण रही है । रेल के आविष्कार के बाद अमेरिका में भी इसका प्रयोग तेजी से बढ़ा । अमेरिका में जहां 1957 में टेलीफोनों की संख्या 6·4 करोड़ थी वह 1969 तक $7\frac{1}{2}$ करोड़ होने का अनुमान है । औसतन तीन व्यक्तियों के पीछे एक टेलीफोन है ।

(3) रेडियो तथा टेलीविजन
(Radio & Television)

आधुनिक युग के आविष्कारों में रेडियो तथा टेलीविजन के आविष्कारों ने सन्देश वाहन के साधनों में क्रांति ला दी है । अमेरिका में प्रथम रेडियो प्रसारण 1920 में पिट्सबर्ग में हुआ पर 1922-23 तक रेडियो की देश में तेजी से लोकप्रियता बढ़ी । जहाँ 1822 में रेडियो सेटों की संख्या 4 लाख थी वहां 1926 में यह संख्या बढ़कर 57 लाख हो गई । विज्ञापन को अधिक विस्तृत एवं प्रभावी बनाने के लिये 1926 में Radio Corporation of America की स्थापना की गई पर बाद में दूसरी प्रतियोगिता कम्पनियाँ खुलीं । इनके कार्यों में कुशलता लाने तथा उचित नियन्त्रण के लिये 1927 में रेडियो अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत संघीय रेडियो आयोग (Federal Radio Commission) बनाया गया जो 1934 में संघीय संचार आयोग (Federal Communication Commission) में परिवर्तित कर दिया गया जिसका अधिकार क्षेत्र टेलीफोन, टेलीग्राफ तथा केबल संचार पर भी लागू हुआ । मंदी के बाद भी रेडियो संचार व्यवस्था का तेजी से विस्तार हुआ यहां तक कि 1950 तक 96% अमेरिकी परिवारों के पास 11·5 करोड़ रेडियो सेट थे । अब अमेरिका

के प्रत्येक परिवार में रेडियो सेट हैं और टेलीविजन के उत्तरोत्तर उपयोग से 50% परिवारों के पास टेलीविजन सेट हैं ।

(4) समाचार-पत्र
(Newspaper)

समाचार पत्रों का महत्व आजकल संचार व्यवस्था की दृष्टि से बहुत बढ़ता जा रहा है । दूसरे देशों की भांति अमेरिका में भी समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं का विकास तेजी से हुआ है । यह अनुमान लगाया जाता है कि अब अमेरिका में लगभग 1800 दैनिक समाचार पत्र, अनेक पत्र-पत्रिकाएं निकलती हैं जिनसे अमेरिका के 10 करोड़ से अधिक व्यक्ति लाभ उठाते हैं ।

इस प्रकार यातायात के साधनों के विकास के साथ-साथ सचार साधनों का भी तेजी से विकास हुआ है और अमेरिका की संचार व्यवस्था उत्कृष्ट कोटि की मानी जाती है ।

अध्याय 3

अमेरिका में खनिजों एवं तेल साधनों की खोज एवं विदोहन

(Discovery and Exploitation of Minerals & Oil Resources)

संयुक्त राज्य अमेरिका खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से विश्व का सबसे धनाढ्य देश ही नहीं बल्कि खनिज सम्पत्ति का अजायबघर भी है। यहां विश्व के सबसे बड़े कोयला, लोहा तथा तेल भण्डार हैं। यहां खनिजों का पर्याप्त भंडार ही नहीं वरन अब तक निकाले जाने वाले खनिजों में उसकी उत्पत्ति अन्य राष्ट्रों से कहीं अधिक है। आज वह लोहा, कोयला, खनिज तेल, तांबा, जस्ता, सीसा, अल्युमिनियम आदि खनिज पदार्थों का सबसे बड़ा उत्पादक है। खनिज सम्पदा की पर्याप्त पूर्ति तथा उसके विदोहन से आज अमेरिका में अनेक उद्योग धन्धे विकसित हुए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 100 तरह के मुख्य खनिज निकाले जाते हैं उनमें कोयला, लोहा, तेल, पेट्रोलियम, जस्ता, सीसा, चांदी, सोना, पारा, चूना, नमक, गन्धक, फास्फेट, अभ्रक आदि हैं। मुख्य खनिजों के विकास का विवरण निम्न है :—

पेट्रोलियम

यह आधुनिक युग में बहुत महत्वपूर्ण पदार्थों में से एक है। इसका प्रारम्भ में प्रचार उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ जब रेड इण्डियन्स इसका प्रयोग दवा के लिए करते थे। उत्तरी अमेरिका में मछली का तेल जलाया जाता था और हाथों से खोदे कुओं से बहुत कम तेल निकलता था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पेट्रोलियम की पूर्ति बढ़ाने के लिए नये उपाय ढूंढे जाने लगे। संयुक्त राज्य के पेन्सिलवेनिया राज्य में ड्रेक ने तेल क्षेत्र की खोज की और वहां टिट्सवले स्थान पर 22 मीटर गहरा कुआं विशेष प्रकार के हथौड़े से नल गाड़कर बनाया। उस वर्ष उससे 2000 बेरल तेल प्राप्त हुआ जो बाद में बढ़कर 2500 बेरल तक पहुंच गया। इसके बाद बर्मे की सहायता से कुएं बनाये जाने लगे। 1900 में केलिफोर्निया राज्य में सानज्वे कुमन की घाटी में तेल निकालने का कार्य प्रारम्भ किया। इसी प्रकार 1901 में मेक्सिको की खाड़ी के तटवर्ती क्षेत्रों से और 1910 में इलिनाय

तथा दक्षिणी पश्चिमी इण्डियाना से, 1925 में मिशिगन प्रान्त से तेल निकाला जाने लगा। धीरे-धीरे नये क्षेत्रों से खोजकर तेल निकाला जाने लगा। जहां 1900 में सं. रा. अमेरिका में 640 लाख वेरल तेल निकाला जाता था वहां 1965 में उसका उत्पादन 28484 लाख वेरल से भी अधिक था। वैसे यह देश 1859 में ही सबसे अधिक तेल उत्पादन करता था। आज खनिज तेल की दृष्टि से अमेरिका का स्थान विश्व में सबसे ऊंचा है। यहां विश्व के कुल तेल उत्पादन का 62 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। कुओं की संख्या 5·7 लाख है जो यहां के लगभग 9000 वर्ग मील क्षेत्र में फैले हुए हैं। मुख्य क्षेत्र टेक्साज, लुसियाना और केलिफोर्निया रियासतें हैं जिनमें कुल उत्पादन का 75% भाग प्राप्त होता है। इस देश में खनिज विदोहन की प्रगति आश्चर्यजनक रही है।

1936 में कुल उत्पादन 10985 लाख वेरल था वह बढ़कर 1940 में 13518 लाख वेरल हो गया। 1944 में उत्पादन वढ़कर 16802 लाख बेरल हो गया। 1960 में 25740 लाख बेरल से भी अभिक था वह 1965 तक 28484 लाख वेरल हो गया।

यहां की कुल उत्पत्ति का अधिकांश भाग स्वयं के उपयोग में ले लिया जाता है और बाकी को निर्यात किया जाता है। खनिज तेल का महत्व और दृष्टि से भी है। इससे लगभग 5000 प्रकार की वस्तुएं बनाती हैं।

कोयला

यह भी यहां की खनिज सम्पदा में महत्वपूर्ण है। यहां का कोयला वढ़िया किस्म का होता है। यहां शक्ति का स्रोत प्रधान तो है ही इसके अलावा महत्वपूर्ण कच्चे माल का स्रोत भी है। इससे लगभग दो लाख प्रकार की वस्तुएं मिलती हैं— कोक, तारकोल, नेफालीन, फिनायल, बेनजोल, अमोनिया तथा कोल गैस प्रमुख हैं। आज नाईलोन जैसे कोमल वस्त्र, लिपस्टिक तथा सुगन्धित तेल कोयले की ही सृष्टि है। कोयले के कुल सुरक्षित भण्डारों का लगभग 42% संयुक्त राज्य अमेरिका में है। कुल उत्पति की दृष्टि से 1948 में U.S.A. का 35% भाग था वह 1960 में घटकर 30 प्रतिशत भाग हो गया था। जहां 1948 में उत्पादन 35·1 करोड़ टन था वह वढ़कर 1960 में 40 करोड़ तथा 1963 में बढ़कर 47.7 करोड़ टन हो गया। अब तक अमेरिका में 30 लाख टन कोयला खोदा जा चुका है। यह तो संभावित भण्डारों का लगभग 1% ही है क्योंकि विश्व में कुल सुरक्षित भंडार 7224 अरब टन है और उसमें से 3118 अरब टन अमेरिका में है। यहां से कोयला जापान, कनाडा तथा कैरिबियन सागर के तटवर्ती देशों को भेजा जाता है। 1965 में कोयले का उत्पादन 52·7 करोड़ टन रहा।

लोहा

कच्चे लोहे के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रथम स्थान है। यहाँ विश्व का एक तिहाई लोहा भाग प्रतिवर्ष निकाला जाता है। गत 72 वर्षों से संयुक्त राज्य अमेरिका लोहा उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर रहा है। इस देश में अधिकांश लोहा सुपीरियर झील क्षेत्र, मिनिसोटा, मिचीगन, विस्काउन्सिन से निकलता है। ये क्षेत्र कुल संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्पादन का 85% भाग प्रदान करते हैं तथा अलबामा और यूटा क्षेत्र 10% भाग प्रदान करते हैं। यहां के लोहा उत्पादन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां का लोहा उत्तम किस्म का है और उसमें शुद्ध लोहे की मात्रा 50 से 60 प्रतिशत होती है। सर्वप्रथम 1890 में मैसावी शृंखला में लोह भण्डारों का पता चला पर बाद में सर्वेक्षणों से अलबामा तथा पश्चिमी राज्यों में भी लोहे की खाने मिलीं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में 1945 में 11 करोड़ टन लोहा निकाला गया जबकि 1956 से 1960 के बीच वार्षिक औसत उत्पादन 9 करोड़ टन ही रहा। 1957 में उत्पादन 10·7 करोड़ टन था। वैसे 1961 में रूस का उत्पादन सोवियत संघ से बढ़ गया था। संयुक्त राज्य अमेरिका में लोहा इस्पात के उत्पादन के लिए कच्चे लोहे की आवश्यकता अधिक है अतः उसे अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए चिली, स्पेन तथा स्वीडन से भी कच्चा लोहा आयात करना पड़ता है। 1965 से उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है।

तांबा

तांबे का उपयोग विश्व के विभिन्न देशों में प्राचीन समय से होता आया है। जब यूरोप निवासी पहले पहल संयुक्त राज्य अमेरिका में आये तो उन्होंने देखा कि रेड इण्डियन तांबे के औजार, हथियार आदि बनाते थे। आज संयुक्त राज्य अमेरिका को तांबा उत्पादन में भी सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है। 1903 में विश्व में तांबे का कुल उत्पादन केवल 100 करोड़ पौंड था वह बढ़कर 1912 में 22·4 करोड़ पौण्ड तथा 1936 में 15 लाख टन हो गया। 1936 में संयुक्त राज्य अमेरिका में 6 लाख टन तांबा निकाला जाता था। 1942 में इसका उत्पादन 9·66 लाख टन हो गया। 1957 में तांबे का उत्पादन बढ़कर 13 लाख टन हो गया। अब तांबे का वार्षिक औसत उत्पादन 20 लाख टन से भी अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में सबसे अधिक तांबा उत्पादन करता है। इसका विश्व के कुल उत्पादन में लगभग 40 प्रतिशत भाग है। तांबा उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र मोन्टाना, ओरीजाना, निवेडा, ऊटा, न्यूमेक्सिको हैं जिनमें कुल उत्पादन का 90% भाग प्राप्त होता है। विद्युत शक्ति उत्पादन तथा मशीनों में बढ़ते हुए तांबे के उपयोग से इसका महत्व बहुत बढ़

गया है । 1965 में संयुक्त राज्य अमेरिका में तांवे का उत्पादन 13·51 लाख टन था ।

सीसा और जस्ता

संयुक्त राज्य अमेरिका का स्थान इन खनिजों में भी प्रथम ही है । सीसे का उपयोग मोटर की बेटरी बनाने, टाइप ढालने, रोगन तैयार करने में आता है जबकि जस्ता और तांवा मिलाकर पीतल बनाया जाता है । इसका उपयोग लोहे की चद्दर, तार और नल बनाने में आता है ।

संयुक्त राज्य अमेरिका में सीसे का उत्पादन 1936 में 3·6 लाख टन था वह 1942 में बढ़कर 4·9 लाख टन हो गया । 1957 में उत्पादन 10 लाख टन था । यहां विश्व का एक तिहाई भाग मिलता है । इसके प्रमुख क्षेत्र मिसौरी, ओक्लाहामा, मान्टोना, कोलेरेडा, निवाडा तथा न्यू मेक्सिको हैं । 1968 में उत्पादन बढ़ गया था ।

संयुक्त राज्य अमेरिका में जस्ते का उत्पादन 1936 मे 5·8 लाख टन था वह 1942 में बढ़कर 6·3 लाख टन हो गया । 1956 में उत्पादन 10 लाख टन था । यहां खपत अधिक होने के कारण विदेशों से आयात करना पड़ता है । 1965 में उत्पादन 6·11 लाख मी. टन था ।

अल्यूमिनियम

यह धातु बाक्साइट को गलाकर तैयार की जाती है । अल्यूमिनियम का उपयोग बिजली का सामान, हवाई जहाज, मोटरों के उद्योग में होता है । इस धातु के प्रमुख क्षेत्र आरकन्सास, जार्जिया तथा अल्बामा राज्य है । आरकन्सास में कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत भाग उत्पन्न होता है । 1936 में कुल विश्व उत्पादन 26 लाख टन था उसमें से संयुक्त राज्य अमेरिका में 3·7 लाख टन बाक्साइट निकाला जाता था वह बढ़कर 1942 में 9 लाख टन हो गया ।

अल्यूमिनियम की खोज 1825 में सर्वप्रथम डेनमार्क निवासी ओर्सटेड, उसके बाद 1845 में फ्रेड्रिक वालर तथा 1856 में फ्रांसीसी वैज्ञानिक हेनरी सेन्ट क्लेअर ने बाक्साइट प्राप्ति की प्रक्रिया से ज्ञात की । यहां की उत्पत्ति मांग को देखते हुए कम है अतः सामान्य वर्षों में भी ब्रिटिश तथा डच गाइना और जापान से इसका आयात किया जाता है । यहां बाक्साइट की सुरक्षित सम्पदा का अनुमान 3·3 करोड़ मी. टन है ।

सोना

सभ्य मानव के अधिकांश विवादों का कारण स्वर्ण ही है । यूरोपीय जातियों ने स्वर्ण की तलाश में नये २ देश की खोज की और बस्तियां बसाई । जब इन्हें उत्तरी अमेरिका के केलिफोर्निया क्षेत्र में स्वर्ण कणमयी रेत का पता लगा तो वे तुरन्त

वहां पहुँचे । इसी प्रकार अलास्का के स्वर्ण क्षेत्रों की खबर पाकर वे लोग उस शीत प्रधान सुनसान क्षेत्र में भी जा पहुँचे । ऐसा अनुमान लगाया जाता है 1849 में केलिफोर्निया के स्वर्ण क्षेत्रों का पता चला तथा 1897 में आलास्का में सोने की खोज हुई जहां 493 ई. से 1520 ई. तक विश्व में सोने का उत्पादन 2 लाख औंस रहा । अब $2\frac{1}{2}$ से 3 करोड़ औंस सोना प्राप्त होता है ।

संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व के कुल सोने का 7% भाग उत्पादन होता है । इसका मुख्य स्वर्ण उत्पादन क्षेत्र केलिफोर्निया है और यहां कुल उत्पादन का लगभग एक तिहाई भाग निकाला जाता है । द्वितीय स्थान डकोटा और इसके अलावा कोलोरेडो, अरोजोना, यूटा (Utah), नेवाडा, इदाहो, मोनटाना और आरेगन क्षेत्र है ।

1936 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 38 लाख औंस शुद्ध सोना प्राप्त होता था वह 1942 में बढ़कर 59 लाख औंस हो गया । 1963 में सोने का उत्पादन 14·7 लाख औंस था । संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व में तीसरा स्थान है । 1965 में सोने का कुल उत्पादन 17 लाख औंस था ।

चांदी

चांदी भी मूल्यवान धातु है । संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व में द्वितीय स्थान है । जहां 1936 में शुद्ध चांदी का उत्पादन 6·2 करोड़ औंस था वह 1942 में घटकर 5·6 करोड़ औंस ही रह गया । अब देश में प्रतिवर्ष 3·5 करोड़ औंस चांदी ही निकाली जाती है । उत्पादन के मुख्य क्षेत्र इदाहो व यूटा है जिनमें 50% भाग प्राप्त होता है । इसके अलावा अरोजोना, नेवाडा, मोनटाना,टेक्साज, केलिफोर्निया आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । 1965 में चांदी का कुल उत्पादन 398 लाख औंस था ।

अन्य खनिज

इससे अलावा संयुक्त राज्य अमेरिका में मैंगनीज, अभ्रक, टंगस्टन, टिन, निकल आदि खनिजों का भी उत्पादन होता है परन्तु उनकी उत्पत्ति नगण्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका एक औद्योगिक प्रधान देश होने से अन्य प्रकार के खनिजों की पूर्ति आयात से करता है । अब आणुविक खनिजों के विकास की ओर भी पूरा ध्यान दिया जा रहा है । अणु खनिज में यूरेनियम का उत्पादन महत्वपूर्ण है । गैस का उत्पादन भी तीव्र गति से बढ़ा है । परिणाम-स्वरूप कोयले के महत्व में कमी हो रही है । अन्य खनिजों में यूरेनियम तथा गैस का विवरण निम्न है :—

यूरेनियम
(Urenium)

यह खनिज अणुशक्ति का प्रधान स्रोत है । इसका उपयोग संभवतः 20वीं शताब्दी का सबसे महत्वपूर्ण है । इसके विस्तृत भण्डार संयुक्त राज्य अमेरिका के

पश्चिमी राज्यों में दवे पड़े हैं। इस धातु को साफ करने के लिए मांटीसेलों, स्लिक रॉक, साल्ट लेक सिटी, टूवा सिटी आदि नगरों में शोधक कारखाने खोल रखे हैं। यूरेनियम की मुख्य खानें कोलोरेडो, ऊटा, न्यू-मेक्सिको, व्योमिंग, अरोजोना, वाशिंगटन आदि हैं। 1965 में यूरेनियम की कच्ची खनिज ((Uranium Ore) का उत्पादन 41 लाख टन था।

प्राकृतिक गैस
(Natural Gas)

प्राकृतिक गैस इस शताब्दी में घरेलू कार्यों में ईंधन के रूप में अत्यधिक लोकप्रिय हो रही है। यह पिछली शताब्दी के अन्तिम वर्षों में (1880-1890) में तेल की खोज के साथ २ दृष्टिगोचर हुई परन्तु इसका वास्तविक विकास इसके उपयोग की वृद्धि के साथ २ इसी शताब्दी में अधिक हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तो इसका उपयोग बहुत बढ़ा। इसी कारण खनिज तेल के उत्पादन की तरह गैस के उत्पादन में भी संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व में प्रथम स्थान है। तेल क्षेत्रों में ही 90% गैस उत्पादित होती है। प्रधान गैस उत्पादक क्षेत्र कैलिफोर्निया, कोलोरैडो, मिसीसीपी, मोनटाना, व्योमिंग, टेकसाज तथा न्यूमैक्सिको है। 1965 में कुल उत्पादन 160 खरब घनफुट था।

निष्कर्ष

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यूरोपीय निवासियों ने यहां की खनिज सम्पदा की खोज की तथा उनके विकास का प्रयत्न किया। उसके बाद अमेरिका की स्वतन्त्रता से वहां के साधनों के विदोहन की प्रवृत्ति बढ़ी। आज संयुक्त राज्य अमेरिका खनिज सम्पत्ति की उत्पत्ति की दृष्टि से विश्व का सबके धनाढ्य देश है। उसका कोयला, लोहा, बॉक्साइट, तांबा, जस्ता, सीसा तथा खनिज तेल उत्पादन में विश्व में सर्वोच्च स्थान है। चांदी उत्पादन में द्वितीय स्थान है।

अगर वास्तव में देखा जाय तो अमेरिका की आर्थिक सम्पन्नता और औद्योगिक सफलता में खनिज पदार्थों का महत्वपूर्ण भाग रहा है। यहां का उत्तम किस्म का कोयला, बढ़िया किस्म का लोहा और खनिज तेल के विपुल भण्डारों के विदोहन से आज यह विश्व का आकर्षण केन्द्र बना हुआ है। साधनों की खोज तथा विदोहन में इसकी जनता का सर्वाधिक सहयोग प्रशंसनीय है।

वहां पहुँचे । इसी प्रकार अलास्का के स्वर्ण क्षेत्रों की खबर पाकर वे लोग उस शीत प्रधान सुनसान क्षेत्र में भी जा पहुँचे । ऐसा अनुमान लगाया जाता है 1849 में केलिफोर्निया के स्वर्ण क्षेत्रों का पता चला तथा 1897 में आलास्का में सोने की खोज हुई जहां 493 ई. से 1520 ई. तक विश्व में सोने का उत्पादन 2 लाख औंस रहा । अब $2\frac{1}{2}$ से 3 करोड़ औंस सोना प्राप्त होता है ।

संयुक्त राज्य अमेरिका मे विश्व के कुल सोने का 7% भाग उत्पादन होता है । इसका मुख्य स्वर्ण उत्पादन क्षेत्र केलिफोर्निया है और यहां कुल उत्पादन का लगभग एक तिहाई भाग निकाला जाता है । द्वितीय स्थान डकोटा और इसके अलावा कोलोरेडो, अरोजोना, यूटा (Utah), नेवाडा, इदाहो, मोनटाना और आरेगन क्षेत्र है ।

1936 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 38 लाख औंस शुद्ध सोना प्राप्त होता था वह 1942 में वढ़कर 59 लाख औंस हो गया । 1963 में सोने का उत्पादन 14·7 लाख औंस था । संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व में तीसरा स्थान है । 1965 में सोने का कुल उत्पादन 17 लाख औंस था ।

चांदी

चांदी भी मूल्यवान धातु है । संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व में द्वितीय स्थान है । जहां 1936 में शुद्ध चांदी का उत्पादन 6·2 करोड़ औंस था वह 1942 में घटकर 5·6 करोड़ औंस ही रह गया । अब देश में प्रतिवर्ष 3·5 करोड़ औंस चांदी ही निकाली जाती है । उत्पादन के मुख्य क्षेत्र इदाहो व यूटा है जिनमें 50% भाग प्राप्त होता है । इसके अलावा अरोजोना, नेवाडा, मोनटाना,टेक्साज, केलिफोर्निया आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । 1965 में चांदी का कुल उत्पादन 398 लाख औंस था ।

अन्य खनिज

इससे अलावा संयुक्त राज्य अमेरिका में मैंगनीज, अभ्रक, टंगस्टन, टिन, निकल आदि खनिजों का भी उत्पादन होता है परन्तु उनकी उत्पत्ति नगण्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका एक औद्योगिक प्रधान देश होने से अन्य प्रकार के खनिजों की पूर्ति आयात से करता है । अब आणुविक खनिजों के विकास की ओर भी पूरा ध्यान दिया जा रहा है । अणु खनिज में यूरेनियम का उत्पादन महत्वपूर्ण है ! गैस का उत्पादन भी तीव्र गति से वढ़ा है । परिणाम स्वरूप कोयले के महत्व में कमी हो रही है । अन्य खनिजों में यूरेनियम तथा गैस का विवरण निम्न है :—

यूरेनियम
(Urenium)

यह खनिज अणुशक्ति का प्रधान स्रोत है । इसका उपयोग संभवत: 20वीं शताब्दी का सबसे महत्वपूर्ण है । इसके विस्तृत भण्डार संयुक्त राज्य अमेरिका के

पश्चिमी राज्यों में दबे पड़े हैं। इस धातु को साफ करने के लिए मांटीसेलों, स्लिक रॉक, साल्ट लेक सिटी, ट्रवा सिटी आदि नगरों में शोधक कारखाने खोल रखे हैं। यूरेनियम की मुख्य खानें कोलोरेडो, ऊटा, न्यू-मेक्सिको, व्योमिंग, अरोजोना, वाशिंगटन आदि हैं। 1965 में यूरेनियम की कच्ची खनिज ((Uranium Ore) का उत्पादन 41 लाख टन था।

प्राकृतिक गैस
(Natural Gas)

प्राकृतिक गैस इस शताब्दी में घरेलू कार्यों में ईंधन के रूप में अत्यधिक लोकप्रिय हो रही है। यह पिछली शताब्दी के अन्तिम वर्षों में (1880-1890) में तेल की खोज के साथ २ दृष्टिगोचर हुई परन्तु इसका वास्तविक विकास इसके उपयोग की वृद्धि के साथ २ इसी शताब्दी में अधिक हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तो इसका उपयोग बहुत बढ़ा। इसी कारण खनिज तेल के उत्पादन की तरह गैस के उत्पादन में भी संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व में प्रथम स्थान है। तेल क्षेत्रों में ही 90% गैस उत्पादित होती है। प्रधान गैस उत्पादक क्षेत्र कैलिफोर्निया, कोलोरैडो, मिसीसीपी, मोनटाना, व्योमिंग, टेकसाज तथा न्यूमैक्सिको है। 1965 में कुल उत्पादन 160 खरब घनफुट था।

निष्कर्ष

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यूरोपीय निवासियों ने यहां की खनिज सम्पदा की खोज की तथा उनके विकास का प्रयत्न किया। उसके बाद अमेरिका की स्वतन्त्रता से वहां के साधनों के विदोहन की प्रवृत्ति बढ़ी। आज संयुक्त राज्य अमेरिका खनिज सम्पत्ति की उत्पत्ति की दृष्टि से विश्व का सबके धनाढ्य देश है। उसका कोयला, लोहा, बॉक्साइट, तांबा, जस्ता, सीसा तथा खनिज तेल उत्पादन में विश्व में सर्वोच्च स्थान है। चांदी उत्पादन में द्वितीय स्थान है।

अगर वास्तव में देखा जाय तो अमेरिका की आर्थिक सम्पन्नता और औद्योगिक सफलता में खनिज पदार्थों का महत्वपूर्ण भाग रहा है। यहां का उत्तम किस्म का कोयला, बढ़िया किस्म का लोहा और खनिज तेल के विपुल भण्डारों के विदोहन से आज यह विश्व का आकर्षण केन्द्र बना हुआ है। साधनों की खोज तथा विदोहन में इसकी जनता का सर्वाधिक सहयोग प्रशंसनीय है।

अध्याय 4

अमेरिका में महान् आर्थिक मंदी

(The Great Depression in U. S. A.)

अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र के उस भाग को आर्थिक मंदी कहा जाता है जब आर्थिक क्रियाओं का संकुचन होता है। उत्पादन में कमी, बेरोजगारी में वृद्धि, गिरते हुए मूल्य तथा आयस्तर आर्थिक क्षेत्र में संकट उत्पन्न कर देते हैं। अर्थव्यवस्था में Poverty in Plenty की अजीबोगरीब स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अमेरिका में भी 1929 में आर्थिक मन्दी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के इतिहास में एक ऐसा झटका था कि इसके प्रभाव से देश की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई और लोगों के दिमाग में पूंजीवाद के प्रति अटूट श्रद्धा को कम कर समाजवाद एवं साम्यवाद की ओर आकर्षित किया। लोगों में भूखमरी, बेरोजगारी तथा निराशा ने अमेरिकी विकास में आगे आने वाले वर्षों तक अवरुद्ध कर दिया।

आर्थिक मन्दी के विशेष तथ्य—

(1) अमेरिका की राष्ट्रीय आय जो 1929 में 81 हजार डालर थी वह 1932 में 49 हजार रह गई। वस्तुओं के उत्पादन में 37%, श्रमिकों की आय में 40%, सम्पति आय में 31% और कृषि आय में 50 प्रतिशत की कमी हो गई। 1929 में जबकि कुल श्रमिकों में 15 लाख व्यक्ति बेकार थे 1933 में बेरोजगार श्रमिकों की संख्या 128 लाख हो गई जो कि कुल श्रम शक्ति का 25% भाग था।

(2) द्रव्य बाजार की स्थिति भी काफी बिगड़ गई। अल्पकालीन ऋणों की ब्याज दर 1929 में 7.75% प्रतिवर्ष से घटकर 1935 में सिर्फ 0.56% प्रतिवर्ष ही रह गई। जहां 1926 में पूंजी हिस्सों का निर्गमन 11.6 विलियन डालर था वह 1933 में घटकर सिर्फ 1.1 विलियन डालर रह गया अर्थात् 90% की कमी हुई। अंशों का मूल्य सूचनांक 1929 में 190 से गिर कर 1932 में 48 ही रह गया। इससे राजा निर्धन हो गये और अधिकांश का भाग्य अन्धकारमय हो गया।

(3) बैंकिंग की व्यवस्था भी आर्थिक मन्दी की शिकार हो गई। लगभग

4000 बैंक बंद हो गये और उनको 60 करोड़ डालर का घाटा हुआ इससे मध्यम तथा गरीब बचतकर्त्ताओं और विनियोगकर्ताओं को नुकसान उठाना पड़ा।

(4) औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन में 50% की कमी हुई। भारी उद्योग, मोटर उद्योग तथा लोह इस्पात उद्योग में यह गिरावट और भी अधिक (80%) के लगभग थी। 1926 से 1932 में थोक मूल्य सूचनांक 100 से घटकर 65 हो गया।

(5) कृषि भी आर्थिक मन्दी के प्रकोप से न बच सकी। 1929 से 1933 की अवधि में किसानों की शुद्ध कृषि आय 7 बिलियन डालर से घटकर सिर्फ 2.5 बिलियन डालर ही रह गई। कृपकों को सबसे अधिक क्षति हुई क्योंकि कृषि उत्पादनों के मूल्य में 60% की कमी हो गई। किसान ऋणी हो गये तथा अनेक दिवालिये बन गये।

इस प्रकार राष्ट्रीय बजटों का असन्तुलन, स्टॉक एक्सचेन्ज और बैंकों का दिवालिया होना, ऋण संकट की गम्भीरता, बढ़ती बेरोजगारी और भूखमरी आदि ने अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर निराशा का वातावरण उत्पन्न कर दिया।

आर्थिक मन्दी के कारण
(Causes of Depression—1930)

अनेक विचारकों में आर्थिक मन्दी के कारणों के विश्लेषण में मतभेद रहा है, यहाँ तक कि व्यापार चक्रों के बारे में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गए हैं। कुछ ने इसे मौद्रिक तथा मनोवैज्ञानिक बताया है तो कुछ ने उत्पादन आधिक्य तथा पूंजीवाद का प्रतिफल तथा सरकारी नियन्त्रण का अभाव। चाहे कुछ भी हो 1930 की विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी अनेक कारणों के दुष्प्रभाव का परिणाम थी। इसके कारणों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :—

(1) **सट्टा प्रवृत्ति**—प्रथम विश्वयुद्ध तथा युद्धोत्तर काल में उद्योग में अत्यधिक लाभ की मात्रा ने सट्टा प्रवृत्तियों को बल दिया। लिबर्टी लोन के विनियोग से प्रभावित हो अनेक विनियोगकर्ता शीघ्र धनवान बनने को आतुर थे। इससे 1927 तक शेयरों तथा प्रतिभूतियों के मूल्य कहीं ऊंचे थे पर 1929 में मूल्यों में एक दम कमी से सारा व्यवसाय चौपट हो गया तथा बैंकों को भी घाटा पहुँचा।

(2) **सुरक्षा की मिथ्या विचारधारा**—तीव्र विकास और सट्टा प्रवृत्तियों से जनसाधारण में अत्यधिक विश्वास और समृद्धि का भूत सवार हो गया। ये येनकेन प्रकारेण धन एकत्रित करने के मद में बेहोश हो गए और वास्तविकता को भूल बैंठे।

(3) **सरकारी नियन्त्रण में ढील**—प्रथम विश्वयुद्ध में तो सरकार ने निजी

क्षेत्र पर नियन्त्रण बढ़ाया पर युद्ध समाप्ति के तुरन्त बाद छूट देने से निजी क्षेत्र में दोषपूर्ण असन्तुलन उत्पन्न हो गया।

(4) **आय का असमान वितरण**—1920 की आर्थिक समृद्धि कुछ ही परिवारों तक सीमित थी। 1929 में 60% परिवारों की वार्षिक आय 2000 डालर से कम थी तथा 21% परिवारों की आय 1000 डालर से कम थी। उपर्युक्त 21% परिवारों को राष्ट्रीय आय का 4% भाग, 39% परिवारों को राष्ट्रीय आय का 20% तथा बाकी 40% परिवारों का राष्ट्रीय आय का 76% भाग प्राप्त होता था। इस असह्य विषमता ने बढ़ते हुए उत्पादन और उपभोग में असन्तुलन उत्पन्न कर दिया।

(5) **मशीनों के प्रकोप से बेरोजगारी**—औद्योगिक तथा खनिज क्षेत्रों में विस्तृत रूप से मशीनों का प्रयोग होने लगा। स्टीम शोवेल से 200 में से 199 व्यक्ति बेकार, सिलाई मशीन से 25 में से 24 बेकार, ठीक इसी प्रकार से अनेक क्षेत्रों में यन्त्रीकृत बेरोजगारी बढ़ी।

(6) **सुगम एवं साख विदेशी ऋण**—कम दर पर साख उपलब्ध होने से ऋण-ग्रस्तता में वृद्धि हुई। लोगों ने पहले तो बड़ी मात्रा में कारें, रेडियो, रिफरीरेटर्स उधार पर खरीदे पर बाद में ऋण चुकाने की असमर्थता से डूबत खातों से वित्त बाजार की दुर्दशा हो गई। इसी प्रकार अमेरिका द्वारा उधार पर दिए गए ऋणों का भुगतान विदेशी राष्ट्रों की युद्ध में स्थिति खराब होने से प्राप्त नहीं हो रहे थे यहां तक कि 1929 में 21000 डालर के ऋणों का भुगतान बाकी था।

(7) **प्रतिस्पर्द्धा पर नियन्त्रण तथा छिपी मुद्रा स्फीति**—बड़ी मात्रा में उत्पत्ति से लागत मूल्य में कमी हो जाने पर मूल्यों में स्थिरता रखी गई। इसी प्रकार विभिन्न दकाईयों में प्रतिस्पर्द्धा को रोक कर मूल्यों को अस्वाभाविक रूप से ऊंचा रखा गया। इससे जहां एक ओर मूल्यों को गिरने से रोका गया वहाँ दूसरी ओर ऊंचे मूल्यों से खनिजों तथा कृषकों की कार्यशक्ति में कमी हुई और उत्पादन तथा उपभोग में असन्तुलन ने मन्दी को सक्रिय योगदान दिया।

(8) **उपभोक्ता के महत्व की अनभिज्ञता**—उत्पादकों को अपने लाभ का राज उत्पादन कुशलता में ही प्रतीत होता था जब कि लाभ का राज अधिक मांग भी है। बिना मांग के वस्तु का उत्पादन आधिक्य की स्थिति से हानि को बढ़ाता है। सरकारी युद्ध सामान की मांग समाप्त हो गई। दूसरे देशों में राष्ट्रीयवाद ने उत्पादन की मांग कम करदी इससे अधिक उत्पादन को खपाना मुश्किल हो गया और उत्पादन तथा उपभोग में असन्तुलन ने मूल्यों में गिरने की प्रवृत्ति को बढ़ाया। इसमें धन के

असमान वितरण, यन्त्रीकरण, प्रतियोगिता पर नियन्त्रण तथा सरकारी नीति ने योगदान दिया।

(9) **कृषि आय में कमी**—उस समय तक अमेरिका में कृषि की प्रधानता थी और यह अधिकांश जन जीवन का आधार थी पर कृषकों की ऋणग्रस्तता, विक्रय संगठनों का अभाव, विदेशों में निर्यात की कठिनाई से अतिरिक्त उत्पादन का स्टॉक उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और कृषिजन्य पदार्थों की कीमतों में 60% की भारी कमी से कृषकों की क्रयशक्ति बहुत कम हो गई जिससे औद्योगिक माल की कीमतों में भी गिरावट आई।

(10) **अव्यवहारिक बैंकिंग नीति**—बैंकों की उदार ऋण नीति से ऋणों में भारी वृद्धि हुई। सट्टे में धन की उधार सीमा इतनी बढ़ गई कि ऊंचे दरों पर विनियोग होने लगे और ऋण की मात्रा बढ़ती ही गई पर ज्योंहीं मन्दी का अविर्भाव हुआ त्योंही प्रतिभूतियों के मूल्य गिरने लगे। बैंकों के फेल होने का दौर चला और जनता में असन्तोष से बैंकों की लड़खड़ाती स्थिति में औद्योगिक स्थिति को झकझोर दिया। इसको पेचीदा बनाने में वाल स्ट्रीट का योग भी कम न था।

महान् आर्थिक मंदी की भीषणता

अमेरिका से प्रस्फुटित आर्थिक मन्दी विश्वव्यापी बन गई। यह मन्दी न केवल विश्व की सबसे दीर्घकालीन मन्दी थी बल्कि इसके दुष्प्रभाव और भीषणता भी अद्वितीय थी। 1929 के Black Thursday से आरम्भ हुई यह मन्दी 1933 के आगे तक चलती रही। इसकी भीषणता का संक्षिप्त दिग्दर्शन निम्न तथ्यों से होता है—

(1) **बेरोजगारी का ताण्डव नृत्य**—उद्योगों, व्यवसायों तथा कृषि में उत्पादन आधिक्य से 40 प्रतिशत उद्योगों के बन्द हो जाने, बैंकों के फेल हो जाने से बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 150 लाख तक पहुँच गई थी। जहां 1930 में बेरोजगारों की संख्या 46.4 लाख थी, वह बढकर 1931 में 77.8 लाख, 1932 में 111.9 लाख तथा 1933 के मध्य तक 150 लाख हो गई थी। इससे वस्तुओं के सस्ता होने पर भी क्रयशक्ति के अभाव में भुखमरी का सामान करना पड़ रहा था।

(2) **कृषि की दयनीय दशा**—कृषि जन्य पदार्थों के मूल्यों में लगभग 60 प्रतिशत कमी हो जाने से किसानों की औसत आय 1929 के मुकाबले आधी ही रह गई थी यद्यपि कृषि के उत्पादन में कमी कम थी पर मूल्यों में गिरावट बहुत तेज थी। यहां तक कि कुछ कृषि वस्तुओं के उत्पादन में तो वृद्धि भी हुई जैसे अनाज का उत्पादन 1929 में 260 करोड़ बुशल था वह 1930 में गिर कर 210 करोड़ बुशल रह गया पर 1933 में उत्पादन 290 करोड़ बुशल था। गेहूं का उत्पादन 1929 में

80.6 करोड़ बुशल था वह 1930 और 1931 में क्रमशः बढ़कर 85 करोड़ तथा 90 करोड़ बुशल तक पहुँच गया। पर किसानों की आय में कमी हो गई थी।

(3) **औद्योगिक उत्पादन में कमी**—औद्योगिक क्षेत्र पर मन्दी का प्रभाव बहुत बुरा पड़ा। लगभग 40% उद्योग समाप्त हो गये औद्योगिक उत्पादन में 50 प्रतिशत की कमी हुई। सर्वाधिक क्षति भारी उद्योगों को उठानी पड़ी। टिकाऊ उपभोग वस्तुओं और भारी सामान के उद्योगों के उत्पादन में 80% की कमी हुई थी। 1932 में पूंजीगत माल की कीमतें 30 से 35 प्रतिशत कम हो गई थीं।

(4) **विदेशी व्यापार में भारी गिरावट**—विदेशी व्यापार पर प्रभाव अधिक दोषपूर्ण था। विदेशी बाजारों में माल की मांग घटने से निर्यात एक तिहाई से भी कम रह गये थे। जहाँ 1929 में आयात और निर्यात क्रमशः 440 करोड़ तथा 524 करोड़ डालर था वह 1932 में गिरकर क्रमशः 132.3 करोड़ तथा 161 करोड़ डालर ही रह गया। सामान्यतः हर वर्ष आयात और निर्यात में प्रत्येक में 100 करोड़ डालर की कमी हुई।

(5) अर्थव्यवस्था में थोक मूल्य और मजदूरी का सूचनांक बहुत कम हो गया। 1926 के आधार वर्ष पर थोक मूल्यों, रोजगार तथा मजदूरी के सूचनांक इस प्रकार थे—

	थोक मूल्य	रोजगार	मजदूरी
1929 औसत	95.3	97.5	100.5
1931 ,,	73.0	72.2	81.0
1933 ,,	65.9	64.6	44

(6) **हिस्सों, प्रतिभूतियों के मूल्यों में अप्रत्याशित कमी**—औद्योगिक संस्थाओं, सार्वजनिक सेवाओं व रेल कम्पनियों के हिस्सों और प्रतिभूतियों का मूल्य बहुत अधिक गिर गया था जिसकी कल्पना भी कठिन थी—बीस का औसत इस प्रकार था—

वर्ष	औद्योगिक संस्थाएं	सार्वजनिक सेवायें	रेल कम्पनियां
सितम्बर 1929	365	142	180
जनवरी 1933	68	28	28

(7) **राष्ट्रीय आय में कमी**—उपर्युक्त परिस्थितियों से अमेरिका की राष्ट्रीय

आय 1929 में 8104 करोड़ डालर से घटकर 1932 में 4895 करोड़ डालर ही रह गई। इससे आयस्तर में लगभग 50% की कमी तथा जीवनस्तर में 20 प्रतिशत की कमी हुई।

आर्थिक मन्दी के मुख्य प्रभाव
(Main effects of the Great Depression)

आर्थिक मन्दी ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ दी। इसके प्रभाव इतने व्यापक, दीर्घकालीन तथा हानिप्रद थे कि वर्षों तक के लिए अर्थव्यवस्था को लकवा हो गया। भावी विकास का मार्ग अवरुद्ध सा हो गया और समूची अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न सी हो गई। लोगों में पूंजीवाद के प्रति घृणा और समाजवाद तथा साम्यवाद की ओर झुकाव बढ़ा। प्रशासन में नई नीतियों को अपनाकर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण की विचारधारा का विकास हुआ। आर्थिक मंदी के मुख्य परिणाम निम्नांकित हैं—

(1) **समूची अर्थव्यवस्था का पतन**—राष्ट्रीय आय (1929–32) के तीन वर्षों में ही 50% घट गई। बेरोजगारी की वृद्धि और मूल्यों में कमी से मजदूरी के रूप में दी जाने वाली रकम 60% कम हो गई और लाभांश में 57% की कमी हुई। अंशों एवं प्रतिभूतियों के मूल्यों में भी भारी रुकावट का रुख रहा। देश में 120 से 160 लाख श्रमिक बेकार थे। व्यापारिक तथा औद्योगिक संस्थाओं में घाटे हो रहे थे परिणामस्वरूप 4377 बैंक दिवालिए हो गये और जमाकर्ताओं को 275 करोड़ डालर की क्षति उठानी पड़ी। कृषि उत्पादन के मूल्यों में 60% की कमी हो जाने से किसानों की आय पहले की आधी रह गई। इस प्रकार अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में अस्तव्यस्तता उत्पन्न हो गई।

(2) **प्रशासन एवं प्रबन्ध के महत्व में वृद्धि**—आर्थिक मन्दी से वित्तीय संस्थाओं और व्यापारियों की प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा और उन्हें ही सबसे अधिक नुकसान उठाने के कारण जनसाधारण का उनके निर्णयों और योग्यता में विश्वास उठ गया। अब व्यावसायिक प्रशासकों तथा प्रबन्धकों में अधिक आस्था रखी जाने लगी।

(3) **समाजवादी विचारधारा का विकास** अमेरिका से प्रारम्भ हुई आर्थिक मन्दी सोवियत रूस को छोड़कर समूचे विश्व पर हावी हो गई जिससे पूंजीवाद का पतन प्रारम्भ हुआ और लोगों में पूंजीवाद के परिवर्तित रूप तथा समाजवादी विचारों के प्रति रुचि का आभास होने लगा।

(4) **आर्थिक क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप को बल**—पूंजीवाद के प्रमुख आधार स्तम्भ 'निर्बाध व्यापार नीति' (Laissez faire) के कदम डगमगाने लगे

और राज्य के हस्तक्षेप की अनिवार्यता महसूस की जाने लगी ।

(5) **मनोवैज्ञानिक प्रभाव**—अमेरिका के लोगों में अमेरिका के प्रति 'Land of promise' तथा 'Limitless opportunity' का दृढ़ विश्वास जम गया था वह लड़खड़ाने लगा और वे महसूस करने लगे कि उनके अपने देश के प्रति धारणा में कहीं न कहीं त्रुटि है । उनका विश्वास उक्त धारणा से उठ सा गया और एक भय सा उत्पन्न हो गया ।

(6) **वाशिंगटन के महत्व में वृद्धि**—आर्थिक मन्दी से वाल स्ट्रीट (Wall Street) जिसका कि 19वीं शताब्दी में अमेरिकी अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान बन गया था, महत्व घट गया और अब वाशिंगटन आर्थिक तथा राजनैतिक केन्द्र हो गया ।

(7) **आर्थिक नियोजन तथा नवीन कार्यक्रम**—आर्थिक मन्दी से अमेरिका में आर्थिक नियोजन, समाजवादी राष्ट्रीय योजनाओं, बेरोजगारी पर नियन्त्रण और सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी योजनाओं पर विचार प्रबल होने लगा और श्रमिकों में संगठित होने की प्रवृत्ति बढ़ी । अमेरिका में नवीन कार्यक्रम (New Deal) से ही नियोजित पूंजीवाद का सूत्रपात हुआ । इसी कारण डेमोक्रेटस की संघ, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर विजय हुई ।

महान् आर्थिक मन्दी के निवारण के उपचार
(Measures to fight the Great Depression)

आर्थिक मन्दी के उपर्युक्त दुष्प्रभावों का विवेचन यह स्पष्ट करता है कि इस महान् एतिहासिक मन्दी ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया । इन आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक दुष्प्रभावों के निराकरण के लिए अनेक प्रकार के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उपचार बनाये गए । आर्थिक मन्दी की शुरुआत 24 अक्टूबर 1929 को राष्ट्रपति हूवर (President Hoover) के समय में हुई । राष्ट्रपति हूवर रिपब्लिकन दल के प्रत्याशी होने से स्वतन्त्र व्यापार और निर्बाध नीति के प्रतिगामी थे और वे आर्थिक क्षेत्र में सरकार के कम से कम हस्तक्षेप के हामी थे । उन्होंने आर्थिक मन्दी को अल्पकालीन समझा तथा उनकी यह धारणा थी कि वह अपने आप टल जायगी । यही कारण था कि प्रारम्भ में कोई प्रभावी कदम नहीं उठाए गए पर जब स्थिति बिगड़ती गई और समस्या का उपचार अति आवश्यक हो गया तब हूवर ने कतिपय उपचारों की शुरूआत की ।

(1) **राष्ट्रपति हूवर के शासन काल में मन्दी निवारण के उपचार**—जब 1929 में स्टॉक मार्केट संकट ने अपना जटिल रूप धारण किया तो हूवर ने सामान्य व्यवसाय एवं मजदूरी की प्रचलित दरों में स्थायित्व रखने के लिए उद्योगपतियों से सहमति प्राप्त की । अर्थव्यवस्था में स्थायित्व बनाये रखने के प्रयत्न असफल सिद्ध हुए । वस्तुओं

के मूल्यों में तेजी से गिरावट तथा बेकारी का दबाव बढ़ता जा रहा था। ऐसी परिस्थिति में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि कर क्रयशक्ति प्रदान करने तथा रोजगार उपलब्ध करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहा इस कारण कांग्रेस वगैरा सब सार्वजनिक कार्यों पर व्यय को बढ़ाने में अधिक उत्सुक थे और साथ ही साथ निजी व्यक्तियों, कम्पनियों तथा संस्थानों का भी अधिक निर्माण कार्यों को प्रोत्साहित करने का उद्देश्य रखा गया।

1929 में कृषि विपणन अधिनियम (Agricultural Marketing Act) के अन्तर्गत स्थापित संघीय कृषि मण्डल (Federal Farm Board) ने अनाज और कपास की कीमतों को बढ़ाने के लिए अनाज एवं कपास स्थिरीकरण निगम (Grain & Cotton Stabilization Corporation) स्थापित किया और इस निगम ने अपने कार्य की पूर्ति के लिए लगभग 50 करोड़ डालर व्यय किया।

इसी प्रकार 1932 में बैंकों, बीमा कम्पनियों, कृषि तथा पशु सम्बन्धी संस्थाओं की जमानत पर ऋण प्रदान करने के लिए 50 करोड़ रुपये की पूंजी से पुनःनिर्माण वित्त निगम (Reconstruction Finance Corporation) की स्थापना की गई। इसके कार्यक्षेत्र में बाद में विस्तार कर दिया गया। इस निगम ने विभिन्न संस्थाओं, बैंकों, कम्पनियों तथा रेलों को लगभग 300 करोड़ डालर का ऋण दिया। आर्थिक संस्थाओं को ऋण प्रदान करने के लिए केन्द्रीय बैंक की नीति में भी आवश्यक परिवर्तन किए गए। इस प्रकार हूवर प्रशासन ने सस्ती साख (Cheap Money Policy) का अनुसरण किया जिससे व्यवसायों में विनियोग में वृद्धि हो सके।

हूवर प्रशासन ने जनता में विश्वास उत्पन्न करने के लिए पुनः सन्तुलित संघीय बजटों को बनाने का प्रयास किया। यह उस निराशा के वातावरण में बहुत आवश्यक था।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थितियों में सुधार लाने के लिए हूवर प्रशासन ने अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों में कुछ समय के लिए स्थगन की नीति का अनुसरण किया।

इस प्रकार हूवर प्रशासन ने आर्थिक मंदी के निवारण के लिए 5 प्रकार के उपचार काम में लिए। सन्तुलित बजटों का निर्माण, सस्ती साख नीति, उद्योगों, वित्तीय संस्थाओं, कृषि, व्यापार तथा राज्य एवं स्थानीय संस्थाओं को ऋण प्रदान करने के लिए पुनर्निर्माण वित्त निगम (RFC) की स्थापना, सार्वजनिक कार्यों पर अधिक व्यय से रोजगार अवसरों में वृद्धि तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए ऋण स्थगन की नीतियां अपनाई गईं।

इस प्रकार ये नीतियां पुरातन निर्बाध व्यापार नीति से विचलन था परन्तु फिर भी व्यवसाय में जो निराशा का वातावरण व्याप्त था उसमें सुधार न होने से

स्थिति गम्भीर होती जा रही थी । यहां तक कि 1933 में आर्थिक स्थिति ऐसी गम्भीर हो गई थी कि उसका उदाहरण मिलना मुश्किल है ।

(2) 4 मार्च 1933 को डी. रूजवेल्ट ने राष्ट्रपति पद संभाला । अब रूजवेल्ट के सामने जो गम्भीर और पेचीदा अर्थव्यवस्था थी उसमें मन्दी के निराकरण के लिए अधिक प्रभावी और व्यावहारिक उपचारों की आवश्यकता थी। 150 लाख व्यक्तियों का बेरोजगार होना, बैंको का फेल हो जाने तथा 40 प्रतिशत उद्योगों के प्रायः समाप्त हो जाने, निर्यात के निम्नतम स्तर पर पहुँच जाने से सम्पूर्ण राष्ट्र सामाजिक एवं आर्थिक कार्य कलापों में राज्य के हस्तक्षेप की मांग कर रहा था ।

अतः रूजवेल्ट ने स्थिति की गम्भीरता और पेचीदगी को देखते हुए दो विधेयक क्रमशः सहायता एवं पुनरूत्थान (Relief and Recovery) तथा सुधार और पुर्ननिर्माण (Refrom & Reconstruction), जिन्हें सामूहिक रूप से न्यू डील (New Deal) के नाम से जाना जाता है, को कार्यरूप में परिणित किया । इसका विस्तृत विवरण अगले अध्याय में है ।

अध्याय 5

अमेरिका में नया कार्यक्रम

(New Deal)

24 अक्टूबर 1929 से आरम्भ हुई आर्थिक मंदी ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था को झकझोर दिया। राष्ट्रपति हूवर (Hoover) के यथासंभव उपचार संकट पूर्ण स्थिति के लिये राहत प्रदान करने में पूर्णतः सफल न हो सके और अर्थव्यवस्था इतनी गंभीर एवं पेचीदा हो चुकी थी कि अधिक प्रभावी उपचारों की आवश्यकता सर्वत्र महसूस की जाने लगी। लगभग 40 प्रतिशत उद्योगों का पतन, हजारों बैंकों की असफलता, देश की कार्यशील जनसंख्या में 1.5 लाख मजदूरों का बेरोजगार होना, निर्यात का निम्नतम बिन्दु और साख की अस्तव्यस्तता में सम्पूर्ण राष्ट्र आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप की मांग कर रहा था। ऐसी विषम आर्थिक परिस्थितियों में डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता के रूप में श्री रूजवेल्ट (Roosevelt) ने 4 मार्च, 1933 को राष्ट्रपति का पद सम्हाला।

देश को आर्थिक संकट से मुक्त करने के लिये रूजवेल्ट ने सत्तारूढ़ होते ही समूची अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों का दौर प्रारम्भ किया जिनका उद्देश्य रूजवेल्ट के शब्दों में "हमारा कार्य अभी उन साधनों एवं कारखानों का नियंत्रण करना है जो हमारे पास हैं। अतिरिक्त उत्पादन के लिये पुनः विदेशी बाजार प्राप्त करना, और उपभोग, अर्द्ध-उपयोग, धन और उत्पादन के समान वितरण की समस्या बाद की चीज है।" पदारूढ़ होने के तुरन्त बाद ही 6 मार्च 1933 को देश में आपत्तकालीन घोषणा से बैंक मोरिटोरियम, स्वर्णमान का समापन, स्वर्ण के आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध और 6 मार्च से 16 मार्च 1933 के कांग्रेस के आपत्तकालीन अधिवेशन के निर्णयों के अनुसार देश के आर्थिक, सामाजिक एवं वित्तीय कार्य-कलापों के सफल संचालन एवं कुशल नियंत्रण के लिये विधेयक पारित किये गये। इन विधेयकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) सहायता एवं पुनरूत्थान (Relief & Recovery) विधेयक जो तात्कालिक समस्याओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित थे।

(2) सुधार एवं पुनर्निर्माण (Reform & Reconstruction) विधेयक जो देश की स्थायी प्रगति से सम्बन्धित थे।

इस प्रकार राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने पदारूढ़ होने पर राष्ट्र को आर्थिक मंदी के संकट से मुक्त करने के लिये जो सहायता एवं पुनरूत्थान तथा सुधार एवं पुनर्निर्माण सम्बन्धी विधेयक देश के आर्थिक वित्तीय एवं सामाजिक कार्यकलापों के नियंत्रण तथा संचालन के लिये लागू किये उन्हें ही सामूहिक रूप से न्यू डील (New Deal) नया कार्यक्रम की संज्ञा दी जाती है। जिनका मुख्य उद्देश्य पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की संरचना में अधिक टिकाऊ समृद्धि का निर्माण करना था।

न्यू डील के उद्देश्य
(Main Objectives of New Deal)

पुनरुत्थान एवं सुधार के इस कार्यक्रम के मुख्य तीन उद्देश्य थे—

(1) राष्ट्र को तात्कालिक आर्थिक मंदी के संकट से मुक्त करना।

(2) देश की अर्थव्यवस्था में व्याप्त किंचित बुराईयों को दूर करना।

(3) देश में आर्थिक सन्तुलन स्थापित करना जिसके अन्तर्गत कृषि एवं औद्योगिक श्रम को सुदृढ़ करना तथा अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्र उद्योग तथा वित्त पर सरकार का प्रभावी नियंत्रण।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि न्यू डील (New Deal) का उद्देश्य अमेरिकी अर्थव्यवस्था के ढांचे को पूर्णरूपेण बदलना न होकर पूंजीवादी तत्वों को इस प्रकार आयोजित करना था जिससे भविष्य की अर्थव्यवस्था अधिक सन्तुलित एवं स्थायी बन सके। इसे व्यक्त करते हुए स्वयं राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कहा—

"हम चाहते हैं कि हमारी आर्थिक प्रणाली में सन्तुलन रहे—कृषि तथा उद्योग में सन्तुलन, मजदूरों तथा नियोजकों में सन्तुलन। हम यह भी चाहते हैं कि हमारे आन्तरिक बाजार समृद्ध तथा विस्तृत हों और हमारा विदेशी व्यापार तेजी से बढ़े।"

("What we seek is balance in our economic system—balance between agriculture and industry, and balance between wage earner, the employer and the consumer. We also seek that our internal markets be kept rich and large and that our trade with other nationals be increased on both sides of the ledger.")

न्यू डील नीति की प्रमुख विशेषताएं
(Special features of New Deal Policy)

न्यू डील की प्रकृति को समझने के लिये उसकी मुख्य विशेषताओं का अध्ययन हमें यह बताता है कि इस नीति में नवीनता, प्रयोग, सहायता तथा अस्थायी सुधारों

का सामन्जस्य था। संक्षेप में ये विशेषतायें निम्न थीं—

(1) **महान् परिवर्तनशील प्रयोग**—न्यू डील कोई विस्तृत सर्वेक्षण पर आधारित व्यवस्थित तथा समन्वित नीति नहीं होकर केवल मात्र परिस्थितियांनुकूल अस्थायी प्रयोग था। यही कारण था कि समस्त योजना में एकरूपता तथा सिद्धान्तिकता का अभाव था। इस प्रकार का प्रयोग पूंजीवादी अर्थतन्त्र में अभूतपूर्व था।

(2) **अस्थायी प्रकृति**—यह प्रयोग दीर्घकालीन उद्देश्यों से प्रेरित न होकर तात्कालीन आर्थिक मंदी के संकट से छुटकारा पाने की एक मात्र अस्थायी नीति थी।

(3) **अर्थतंत्र में मूलभूत परिवर्तनों का अभाव**—इस नीति का मुख्य उद्देश्य पूँजीवादी अर्थतन्त्र की संरचना में ही राहत तथा पुनर्वास और सहायता तथा पुनरूत्थान की प्रक्रिया को गतिशील करना था। इसमें पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अर्न्तगत मंदी के मूल कारणों को समाप्त करने तथा उनमें आधार भूत सुधार करने की चेष्टा का अभाव था। यही कारण था कि सरकार के अथक प्रयत्नों के बावजूद 1937-38 में मंदी के दौर की पुनरावृत्ति हुई।

(4) **सीमित क्षेत्र** -न्यू डील नीति को बड़े-बड़े उद्योगपतियों, व्यापारियों, कृषकों तथा अर्थव्यवस्था के आधार स्तंभ क्षेत्रों में ही लागू किया गया। इससे छोटे-छोटे व्यवसायियों व उद्योगपतियों पर उसका प्रभाव न पड़ा और जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग नीति से प्रभावित न हो सका।

(5) **स्वेच्छापूर्ण**—इस नीति को आर्थिक मंदी के उस आपतकालीन स्थिति में भी लागू करने में सरकार ने लोगों को बाध्य न कर प्रलोभनों से आकर्षित करने की नीति अपनाई। जन-सहयोग प्राप्त करने के लिये विवेकपूर्ण तर्क तथा उदार प्रलोभनों का सहारा लिया गया। इस तरह इस नीति में जनता को बाध्य न कर स्वेच्छापूर्वक नीति को कार्यान्वित करने के लिये आकर्षित किया।

(6) **दृष्टिकोण एवं उपचार**—संकट से छुटकारा पाने के लिये विस्तृत दृष्टिकोण अपनाया गया तथा अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों में परिस्थितिनुकूल उपचार किये गये जिनमें प्रमुख थे—

1. राज्य का आर्थिक क्षेत्र में प्रभावपूर्ण हस्तक्षेप।
2. मूल्यों में स्थायित्व तथा वृद्धि।
3. साख तथा मुद्रा में वृद्धि।
4. सामाजिक सुरक्षा तथा श्रमिकों के रोजगार से सभी वर्गों में क्रयशक्ति की वृद्धि।
5. बेकारी पर नियंत्रण के लिये सार्वजनिक निर्माण कार्यों में वृद्धि तथा प्रभावी मांग में वृद्धि।
6. विदेशी तथा आन्तरिक व्यापार का पुनर्स्थापन।

7. सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत ऋणों में कमी ।
8 बचतकर्ताओं तथा विनियोगकर्ताओं को प्रोत्साहन ।
9. राज्य द्वारा घाटे के बजट तथा क्रय-शक्ति का विस्तार ।
10. बैंकिंग तथा वित्तीय क्षेत्रों में सुधार ।
11. एकाधिकारी प्रवृत्तियों की अस्थायी छूट ।
12. यातायात क्षेत्रों में विकास एवं समन्वय ।
13. सट्टा प्रवृत्तियों पर रोक ।

(7) **सहायता एवं राहत**—इस नीति का मुख्य उद्देश्य अमेरिका के लोगों मे व्याप्त असन्तोष तथा निराशा को समाप्त करना था । अत: संकट के समय श्रमिकों, कृषकों, ऋणियों, उपभोक्ताओं तथा व्यापारियों को आर्थिक सहायता प्रदान की गई जिससे प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि हो । विनियोगकर्ताओं को विनियोग कर बेकारों को काम देने के लिये सस्ती साख उपलब्ध की जाने लगी । यहां तक कि सरकार ने स्वयं व्यवसायिक हानियों की क्षतिपूर्ति की ।

(8) **प्रभाव एवं सफलता**—नई नीति के क्रियान्वयन से मूल्यस्तर, रोजगार-स्तर तथा उत्पादन्स्तर में वृद्धि हुई और राष्ट्रीय आय जो 1929 के मुकाबले में घटकर आधी रह गई थी 1937 तक बढ़ कर पूर्वस्तर तक पहुँचने में सफल हुई । 1.80 करोड़ लोगों को अतिरिक्त रोजगार प्रदान किया । व्यवसायिक एवं औद्योगिक विनियोगों में वृद्धि हुई पर सरकारी व्यय में भारी वृद्धि होने से अमेरिका का सार्व-जनिक ऋण 1950 करोड़ डालर से बढ़कर 1937 में 3600 करोड़ डालर होगया । निजी विनियोग को प्रोत्साहन न मिल सका । फिर भी इस नीति से निराशा तथा भय के वातारण के स्थान पर आशा और समृद्धि के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ ।

इस तरह यह नीति अमेरिका के आर्थिक विकास के इतिहास में अभूतपूर्व तथा अनुपम प्रयोग सिद्ध हुआ और पूंजीवादी अर्थतंत्र में राज्य हस्तक्षेप की समृद्धि के स्थायित्व के लिये मान्यतादी ।

न्यू डील (New Deal) नया कार्यक्रम का कार्यान्वयन

पूंजीवादी संरचना के बिना किसी मौलिक परिवर्तनों के निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार के नियन्त्रण एवं देखरेख में वृद्धि हुई । 1933–35 की अवधि में जिसे प्रथम नया कार्यक्रम (First New Deal) की संज्ञा दी जाती है, प्रशासन ने निजी साहसियों के सहयोग से पुनरुत्थान कार्यक्रम लागू किया । क्रयशक्ति एवं लाभ वृद्धि के लिए मजदूरी दर में वृद्धि तथा मूल्यवृद्धि के उपचार किए गए तथा सन् 1935 के बाद सामाजिक सुरक्षा और स्थायी सुधार एवं पुनर्निर्माण के जो कार्यक्रम अपनाये गए उन्हें द्वितीय नया कार्यक्रम Second New Deal) कहा जाता है ।

नया कार्यक्रम (New Deal) के अन्तर्गत् सहायता एवं पुनरुत्थान तथा सुधार एवं पुर्ननिर्माण के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों-रोजगार, सामाजिक सुरक्षा, कृषि, उद्योग, श्रम, यातायात तथा मुद्रासाख तथा बैंकिंग में किए गए प्रयत्नों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

(1) **श्रम तथा बेरोजगारी**—आर्थिक मन्दी का दुष्प्रभाव बेरोजगारी की दृष्टि से अत्यन्त भयावह था। देश की 4.95 करोड़ कार्यशील जनसंख्या में से 1.40 करोड़ बेकार थे। नियोजितों के पास भी आधा काम था। कार्य के घन्टों में 28% की कटौती करदी गई थी यहां तक कि लगभग 14 हजार औद्योगिक संस्थानों में 52% मजदूरों को आंशिक कार्य दिया जाता था। अर्थात् सर्वत्र बेकारी का साम्राज्य व्याप्त था। इस विषम स्थिति का मुकाबला करने के लिए निम्नलिखित विधेयक पारित कर लागू किए गए :—

(i) Unemployment Relief Act (बेरोजगारी राहत अधिनियम)—इसमें बेकारों को सार्वजनिक कार्यों में नियोजित करने, आवास निवास की सुविधा देने तथा जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक साधन वस्त्र, चिकित्सा, नकदी की सहायता का प्रावधान था। इसके अन्तर्गत् 1940 तक 20 लाख नवयुवकों को वनों, खेतों तथा बागों में काम दिया गया।

(ii) Federal Emergency Relief Act (संघ आपात राहत अधिनियम 12 मई, 1933)—जिसमें संघ आयात राहत प्रशासन राज्य सरकारों को बेरोजगारी की सहायता के लिए अनुदान देगा।

(iii) National Employment Service Act (राष्ट्रीय रोजगार सेवा अधिनियम 6 जून 1933)—के अन्तर्गत् राज्य सरकारों की सहायता से रोजगार नियोजन कार्यालयों (Employment Exchanges) स्थापित किए गए।

(iv) National Industrial Relief Act—(NIRA) राष्ट्रीय औद्योगिक पुनरुत्थान अधिनियम 1933 के अन्तर्गत अधिक रोजगार तथा मजदूरी में वृद्धि का प्रावधान था। तदनुसार Public Works Administration (PWA) सार्वजनिक निर्माण प्रशासन की स्थापना की गई जिसने निर्माण कार्यों के लिए 7 बिलियन डालर व्यय किये। 1935 में ही फिर Works Progress Administration जिसे बाद में Works Project Administration का नाम दिया गया स्थापित हुआ। यह संस्था 1942 तक रही इसने 13 बिलियन डालर व्यय से 85 लाख लोगों को रोजगार प्रदान किया और 1.22 लाख मकानों, 77 हजार पुलों, 285 हवाई-अड्डों, 6.64 लाख मील लम्बी सड़कों तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों को पूरा किया। इसके अलावा आवासगृह निर्माण अधिनियम के अन्तर्गत् मकान का निर्माण तथा गन्दी बस्तियों को सुसज्जित करने के प्रयत्न किए गये।

(v) 1935 में National Labour Relation Act—राष्ट्रीय श्रम सम्बन्ध अधिनियम जिसे Wagner Act भी कहा जाता है पारित हुआ। इकट्ठे अन्तर्गत श्रमिकों को संघों के रूप में संगठित होने तथा सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार मिला। इसके ही अन्तर्गत् श्रमिकों तथा उद्योगपतियों के आपसी झगड़ों के निपटारों के लिए राष्ट्रीय श्रम सम्बन्ध मण्डल (National Labour Relation Board) स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त श्रमिकों को समुन्नत जीवनस्तर व्यतीत करने का सुअवसर Fair Labour Standard Act 1938 से प्राप्त हुआ। इस तरह न्यू डील के अन्तर्गत् बेरोजगारी को मिटाने, श्रमिकों को संगठित करने तथा उनके समुन्नत जीवनस्तर विताने की व्यवस्था की गई।

(2) **सामाजिक सुरक्षा**—सहायता कार्यों से विशेष सन्तोषजनक परिणाम न अनुभव होने पर जनता ने स्थायी सुधार के लिए सामाजिक सुरक्षा की मांग की। परिणामस्वरूप 1935 में सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (Social Security Act) पारित हुआ और इसे कार्यान्वित करने के लिए प्रसूति, बालकल्याण अपंग एवं अपाहिजों के पुनर्स्थापन, अनुदान एवं स्वास्थ्य सेवायें, बुढ़ापे की बीमा योजना, संघीय बुढ़ापा बचाव योजना तथा बेकारी बीमा योजना कार्यक्रम लागू किये गये। फलस्वरूप 1938 तक अनेक राज्यों में बेकारी बीमालाभ प्रदान किया जा रहा था और 37 राज्यों में बुढ़ापा पेंशन प्रदान की जा रही थी।

(3) **न्यू डील के अन्तर्गत् कृषि**—नये कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषि की नीति का मुख्य उद्देश्य कृषकों की क्रयशक्ति तथा सामान्य आर्थिक स्तर में वृद्धि के लिए कृषि पदार्थों और निर्मित वस्तुओं के मूल्य में समानता लाकर ग्रामीण ऋणग्रस्तता हटाने तथा मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि से सुरक्षा प्रदान करना था। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न अधिनियम पारित कर कार्यान्वित किए गये जिनमें मुख्य निम्न हैं—

(1) **कृषि समायोजन अधिनियम** (Agriculture Adjustment Act 1933)—कृषकों की क्रय शक्तियों में वृद्धि के लिए तात्कालिक अधिक उत्पादन और गिरते हुए मूल्यों की समस्या का सामना करने के लिए कृषि क्षेत्रफल में कटौती पर लाभ देने तथा क्षय को कम करने के लिए विक्रय की वैज्ञानिक व्यवस्था के रूप में विक्रय अनुबन्धन किए गए। प्रारम्भ में क्षेत्रफल कटौती की व्यवस्था कपास, गेहूं, अनाज, तम्बाकू के क्षेत्र में लागू हुई बाद में 1938 में अन्य फसलों पर भी लाग की गयी।

कृषकों को कर्ज से राहत देने के लिए 1933 में Emergency Farm Mortgage Act के अन्तर्गत् ऋण प्रदान किए जाने लगे। सस्ती दर पर ऋण देने के लिए संघीय कृषि बैंक (Federal Land Bank) को अधिकार मिला। बन्धक पर मकान वाले ऋणियों को कर्ज की व्यवस्था की जाने लगी।

जनवरी 1936 में Agricultural Adjustment Act अवैधानिक करार दे दिया गया फिर भी कृषि सम्बन्धी सहायता कार्यक्रम 1933 के Soil erosion Service, 1935 के Soil erosion Act, 1936 के Soil conservation & Domestic Allotment Act, 1936 में सट्टे पर नियन्त्रण के लिए Commodity Exchange Act, 1937 में Marketing Agreement Act और सन् 1938 में नया Farm Act पारित किया गया जिसमें 1936 में अवैधानिक घोषित Agricultural Adjustment Act की सभी विशेषताओं का समावेश कर दिया गया था। इसमें किसानों को ऋण देने की व्यवस्था के लिए Commodity Credit Corporation तथा 1938 में Crop Insurance Corporation की भी स्थापना हुई। प्रारम्भ में यह योजना गेहूं तथा 1942 से कपास की फसल पर लागू हुई।

इस तरह न्यू डील के अन्तर्गत् (AAA) Agricultural Adjustment Act 1933 तथा Farm Act 1938 की व्यवहारिक सफलता प्रशंसनीय है। क्योंकि कृषि मूल्यों का सूचनांक जो 1933 में युद्धस्तर का 55 प्रतिशत था वह 1933 के अन्त तक 70%, 1934 में 90% तथा 1935 में 108 प्रतिशत हो गया। किसानों की कुल आय में 59% की वृद्धि हुई। 1932 में यह 432.8 करोड़ डालर से बढ़कर 1935 में 880 करोड़ डालर हो गई। ऋणग्रस्तता में भी भारी कमी हुई।

कृषि नीति से खाद्यान्न के मूल्यों में कच्चे माल की कीमतों की अपेक्षा अधिक स्थायित्व रहा पर फिर भी कृषि क्षेत्र तथा उत्पादन में कमी करने के प्रयत्नों को आशानुकूल सफलता न मिल सकी। फिर भी संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सरकार ने समय के औचित्य को देखते हुए कृषि में राज्य हस्तक्षेप ने राष्ट्र को महान् आर्थिक संकट से बचा उसके पुनरूत्थान का मार्ग प्रशस्त किया।

(4) **न्यू डील के अन्तर्गत् उद्योग**—महान् आर्थिक मन्दी ने औद्योगिक क्षेत्र को झकझोर दिया अतः इस आर्थिक संकट पर विजय प्राप्त करने के लिए 1933 में राष्ट्रीय उद्योग पुनरुत्थान अधिनियम (National Industrial Recovery Act) (NIRA) का विशिष्ट महत्व है। इस अधिनियम में बड़े रूप में राहत, पुनरूत्थान, सुधार तथा पुनर्निर्माण के कार्यों का समावेश किया गया। उपभोग तथा उत्पादन उद्योगों में काम के घन्टों में कमी, न्यूनतम वेतन दर, अधिकतम लोगों के रोजगार की व्यवस्था करना तथा लोगों की क्रयशक्ति में वृद्धि करना ही इस अधिनियम का उद्देश्य था।

इस अधिनियम में स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को प्रोत्साहन देकर एकाधिकार प्रवृत्तियों को समाप्त करने, न्यूनतम वेतन तथा अधिकतम कार्यों के घन्टों का निर्धारण करने, उत्पादन को सीमित कर मूल्यों में वृद्धि करने, लाइसेंसिग पद्धति द्वारा नियमों को लागू करने, नियमों को स्वीकार करने वाले उद्योगों को Anti Trust Laws

से मुक्ति प्रदान करने, श्रमिक संघों को वैधता तथा गति प्रदान करने तथा देश को उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धा से संरक्षण देने की व्यवस्था थी। अधिनियम का कार्यान्वयन राष्ट्रीय पुनरुत्थान प्रशासन (National Recovery Administration) को सौंपा गया।

अधिनियम पारित होने तथा लागू होने के अल्पकाल में ही 500 प्रकार के नियम बने तथा देश के 96 प्रतिशत नियोजकों ने उन्हें स्वीकृति प्रदान की। औसतन कार्य के साप्ताहिक घण्टे 35-40 तथा शारीरिक श्रम करने वालों की न्यूनतम मजदूरी 30-40 सेन्ट निर्धारित की गई। परिणामस्वरूप 1933 के अन्त तक रोजगार में 37% तथा मजदूरी मे 25% वृद्धि हुई। उत्पादन में भी वृद्धि के आसार नजर आये। इस तरह नीरा (NIRA) ने लोगों में निराशावाद की धारणा समाप्त कर आशा का संचार किया।

1935 में सर्वोच्च न्यायालय ने (NIRA) नीरा को संविधान की धाराओं के प्रतिकूल बताकर अवैध घोषित कर दिया तथा तत्सम्बन्धी प्रशासन को समाप्त कर दिया। इससे औद्योगिक क्षेत्र में कुछ रुकावट महसूस की गई। पर शीघ्र ही 1935 में Wagner Act पारित हुआ जिसमें श्रमिकों की सामूहिक सौदेवाजी तथा संगठनों को मान्यता प्रदान की गई।

यद्यपि NIRA की नियमों के उल्लंघन, उपभोक्ता के हितों की रक्षा के अभाव, एकाधिकार प्रवृत्तियों की वृद्धि तथा छोटे उत्पादकों के सम्बन्ध में उचित व्यवस्था के अभाव के कारण आलोचना की जाती है फिर भी यह अधिनियम देश में संकट पर विजय पाने में वहुत सफल रहा। श्रमिकों को अत्याधिक लाभ हुआ। निराशा के वातावरण मे आशा की किरण प्रस्फुटित हुई।

(5) **न्यू डील में मुद्रा एवं साख**—मन्दी के निराशाजनक वातावरण में न्यू डील के अन्तर्गत् अपनाई गई मौद्रिक नीति का महत्वपूर्ण स्थान है। इस नीति के मुख्य उद्देश्य मुद्रा तथा साख प्रसार से मूल्यों में वृद्धि, बैंकिंग व्यवस्था में सुधार तथा आर्थिक क्षेत्र में गति उत्पन्न करना था। इसे कभी कभी प्रजनित मुद्रा प्रसार की नीति भी कहा जाता है। रूजवेल्ट प्रशासन ने उक्त उद्देश्यों को कार्यरूप में परिणित करने के लिए निम्न कदम उठाये तथा तत्सम्बन्धी अधिनियम पारित किये—

(i) **मुद्रा प्रसार**—देश में मुद्रा प्रसार वड़े पैमाने पर अपनाया गया यहाँ तक कि 1933 के मार्च के तीन सप्ताह में ही 86 करोड़ डालर के नोट निर्गमित किए। प्रचलित मुद्रा की मात्रा जो 1932 में 9 विलियन डालर थी वह वढ़ कर 1934 में 13.6 विलियन डालर, 1936 में 16.4 विलियन डालर तथा 1937 में 19.4 विलियन डालर हो गई। इस तरह 5 साल की अवधि में ही मुद्रा की मात्रा दुगनी से भी कुछ अधिक थी। इस तरह मार्च 1933 के Emergency Banking Act से

जहां एक ओर फेडरल बैंक को नोट जारी करने का अधिकार बढ़ा दिया वहां राष्ट्रपति को साख, मुद्रा, बुलियन तथा विदेशी विनिमय के लेन-देन को नियमित करने का अधिकार मिल गया।

(ii) **प्रजनित मुद्रा स्फीति**—देश ने 1933 में स्वर्णमान का त्याग कर दिया और डालर में स्वर्ण की मात्रा में 59.06% की कमी करदी गई। स्वर्ण की कीमत 20.67 डालर से बढ़ा कर 35 डालर प्रति औंस करदी गयी। मई 1933 के Farm Relief & Inflation Act के अन्तर्गत् राष्ट्रपति को फेडरल रिजर्व बैंक से 3 बिलियन डालर तक साख निर्माण करने तथा 3 बिलियन डालर तक मुद्रा निर्गमित करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

(iii) **साख में वृद्धि**—मुद्रा की मात्रा में वृद्धि की अपेक्षा अमेरिकी अर्थव्यवस्था में उस समय साख का महत्व अधिक था। इसलिये साख में वृद्धि के लिए 1933 में Home owner's Loan Act के परिणामस्वरूप Home owner's Loan Corporation स्थापित हुआ जिसने 3 वर्षों में 3 बिलियन डालर ऋण प्रदान किया। 1934 में The Loans to Industry Act पारित होने से औद्योगिक संस्थाओं को 58 करोड़ डालर तक प्रत्यक्ष ऋण देने की स्वीकृति प्रदान की गई। संघीय सदस्य बैंकों को ऋण देने की सुविधाओं में वृद्धि की गई। पुनर्निर्माण वित्त निगम Reconstruction Finance Corporation) को भी औद्योगिक कार्यों के लिए राज्यों तथा निजी संस्थाओं को ऋण देने का अधिकार दिया गया।

(iv) **बैंकों का पुनर्निर्माण तथा जनता में विश्वास उत्पन्न करना**—बैंकों के प्रति जनता में पुनः विश्वास उत्पन्न करने के लिए तथा अधिक बैंकों की और असफलता को रोकने के लिए 96 घन्टे का अवकाश (Bank holiday) की घोषणा की। एक सप्ताह के अन्दर ही 15000 बन्द बैंकों के द्वार फिर खुल गए। Reconstruction Finance Corporation द्वारा अपने साधनों का उपयोग बैंकों को पुनः सुदृढ़ करने में किया गया। जमाकर्ताओं में विश्वास उत्पन्न करने के लिए तथा उनके धन की सुरक्षा के लिए Federal Deposit Insurance Corporation (फेडरल जमा बीमा निगम) स्थापित किया गया।

(v) 1933-34 में निर्यात को प्रोत्साहन देने तथा आयात को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से डालर का अवमूल्यन किया गया ताकि उपलब्ध पूर्ति में कमी होने से मूल्यस्तर में वृद्धि हो और गिरते मूल्यों पर काबू पाया जा सके।

(vi) **बैंकिंग क्षेत्र में सुधार**—आर्थिक मन्दी में बैंकों की असफलता तथा साख संकुचन ने संकट को अधिक विषम बनाया था अतः बैंकिंग क्षेत्र में प्रभावी नियन्त्रण और स्थायी सुधार के निम्न प्रयत्न किये गये—

(1) 1933 बैंकिंग कम्पनी अधिनियम (The Banking Companies Act 1933) के अन्तर्गत—

(अ) पुनर्निर्माण वित्त निगम (R. R. C.) तथा फेडरल रिजर्व बैंक को व्यवसायिक फर्मों तथा सुदृढ़ बैंकिंग संस्थाओं को ऋण प्रदान करने में सहभागी बनाया गया।

(ब) इस अधिनियम से जमाकर्ताओं के धन की सुरक्षा तथा विश्वास के लिए फेडरल जमा बीमा निगम (Federal Deposit Insurance Corporation) स्थापित किया गया।

(स) बैंकिंग संस्थाओं को अपना कार्य बैंकिंग व्यवसाय तक ही सीमित करना था।

(2) बैंकिंग कम्पनी अधिनियम 1935 ने फेडरल रिजर्व बैंक के नियन्त्रण तथा निरीक्षण अधिकारों को विस्तृत कर दिया जिसमें बैंकों की साख निर्माण-नीति पर नियंत्रण, कोष परिवर्तन का अधिकार, हिसाब-किताब की जांच, फेडरल रिजर्व बैंकों के स्टॉक एक्सचेंज सट्टे पर प्रतिबन्ध, मिश्रित बैंकिंग व्यवस्था का समापन, फेडरल जमा बीमा निगम के निरीक्षण अधिकारों में वृद्धि, व्यापारिक बैंकों के विनियोग व्यवसाय पर रोक आदि बातों का समावेश था। राजनैतिक प्रभाव को कम करने के लिए फेडरल रिजर्व बोर्ड का पुनर्गठन किया गया।

(vii) **प्रतिभूतियों तथा वस्तु बाजार पर नियंत्रण**—विनियोगकर्ताओं के हितों की रक्षा तथा अवांछनीय विनियोग पर रोक के लिए 1933 में Securities Act पारित हुआ जिसके अन्तर्गत प्रतिभूतियों के प्रसारण सम्बन्धी शर्तों का समावेश था। विक्रेताओं द्वारा नियमों के उल्लंघन पर दण्ड की व्यवस्था थी। 1935 में दूसरा अधिनियम 'Securities Exchange Act पारित हुआ जिसमें प्रतिभूतियों के सट्टे पर रोक तथा बाजारों को नियन्त्रित करने की व्यवस्था की गई। 1936 में कृषि पदार्थों के विनिमय को नियन्त्रित करने के लिए वस्तु विनिमय अधिनियम पारित हुआ और इसके अन्तर्गत् ही कृषि वस्तुओं के भविष्य में विक्रय पर नियन्त्रण के लिए वस्तु विनिमय निगम (Commodity Exchange Corporation) की स्थापना हुई। इन अधिनियमों ने प्रतिभूतियों तथा कृषि उत्पादित पदार्थों के बाजार पर नियन्त्रण में सहायता दी।

न्यू डील में यातायात
(Transport under New Deal)

आर्थिक मन्दी का सर्वाधिक दुष्प्रभाव यातायात पर पड़ा। सन् 1933 में संघ सरकार ने रेल-रोड इमरजेन्सी एक्ट पासकर इस क्षेत्र में वित्तीय पुनर्गठन, मित-

व्ययतापूर्ण संचालन तथा सामान्य सेवाओं में सुधार के लिए फेडरल रेल-रोड कॉओर-डिनेटर की स्थापना की। जहाजरानी उद्योग की समस्याओं के समाधान के लिये 1936 में Merchant Marine Act पारित हुआ और तदानुसार सामान्य सर्वेक्षण के लिए आयोग की स्थापना हुई।

न्यू डील में टेनेन्सी घाटी योजना

1933 में अमेरिका के सबसे पिछड़े एवं अविकसित क्षेत्र की टेनेन्सी घाटी योजना रूजवेल्ट प्रशासन में प्रादेशिक नियोजन का उत्कृष्ट उदाहरण गिना जाता है। पूंजीवादी अर्थतन्त्र में विकास की यह बहुउद्देशीय प्रादेशिक योजना अविकसित भागों के सन्तुलित विकास का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती है। सन् 1933 में टेनेन्सी घाटी के अविकसित प्रदेश के विकास के लिए टेनेन्सी घाटी विकास अधिनियम (Tenenssee Velley Development Act) 1933 में पारित हुआ। योजना को कार्यान्वित करने के लिए Tenenssee Velley Authority की स्थापना हुई। यह योजना बहु-उद्देशीय योजना थी जिसमें बांध, विद्युत उत्पादन, बाढ़ नियन्त्रण, भूमि कटाव पर रोक, नौकानयन तथा वृक्षारोपण की योजना थी। एक दशक में सम्पन्न यह योजना संयुक्त राज्य अमेरिका के 7 राज्यों के 20 लाख लोगों के लिये वरदान सिद्ध हुई। यह योजना न्यू डील की महत्वपूर्ण सफलता गिनी जानी है।

न्यू डील का मूल्यांकन
(An Evolution of the New Deal)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महान् आर्थिक मन्दी के सकट पर विजय प्राप्त करने के लिए राष्ट्रपति रूजवेल्ट प्रशासन ने न्यू डील के अन्तर्गत् मुद्रा प्रसार, बैंकिंग व्यवस्था में सुधार, कृषि पदार्थों के मूल्य तथा उत्पादन पर नियन्त्रण, साख एवं ऋण सुविधायें, बेरोजगारों के लिए सार्वजनिक निर्माण कार्य तथा श्रमिकों की सामुहिक सौदेबाजी जैसे सर्वांगीण प्रयत्न किए गए। परिणामस्वरूप उद्योग तथा कृषि गतिविधियों में वृद्धि, बेरोजगारी में कमी, लोगों में मुद्रा तथा बैंकिंग में पुनः विश्वास तथा व्यापार एवं व्यवसाय में स्थिरता का वातावरण उत्पन्न हुआ। देश आर्थिक संकट से बच सका। सरकार पूंजीवादी अर्थतन्त्र में जनता के सहयोग से आर्थिक पुनरुत्थान का मार्ग प्रशस्त करने में सफल हो सकी।

राष्ट्रीय आय जो 1932 में 400 करोड़ डालर थी वह 1937 में 698 करोड़ डालर हो गई। औद्योगिक उत्पादन का सूचनांक (1923=100) 1934 में 74 से बढ़कर 1936 में 107 हो गया। निर्माण (इकरार) संविदा सूचनांक भी 17 से बढ़कर 65, रोजगार सूचनांक 79 से बढ़कर 84 और कारखानों में मजदूरी सूचनांक स्तर 62 से बढ़कर 81, कृषि पदार्थों का मूल्य सूचनांक 70 से बढ़कर 84

खाद्यान्नों का मूल्य सूचनांक 74 से बढ़कर 83 तथा सामान्य मूल्यस्तर सूचनांक 76 से बढ़कर 87 हो गया।

इसी तरह बहुत से बैंकों को पुन: कार्यान्वित कर सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था का विकास किया गया। और उनके भावी विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यू डील नीति से समुचित अर्थव्यवस्था में पर्याप्त सुधार हुआ और देश में निराशा के वातावरण में आशा का संचार हुआ।

परन्तु अगर न्यू डील के दूसरे पक्ष पर दृष्टिपात करें तो कुछ निराशा होना स्वाभाविक है। और इसी कारण आलोचक यह कहते हैं कि यह राहत तथा पुनर्वास की अस्थायी योजना थी और अमेरिकी अर्थव्यवस्था की मौलिक कमियां दूर न की जा सकीं। यह अमेरिकी अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण कर उसे स्थायी एवं प्रबल आधार पर पर स्थापित करने में असमर्थ रही क्योंकि—

(1) 1937 में भी 75 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे।

(2) राष्ट्रीय आय 1937 में 718.5 करोड डालर ही थी जबकि 1929 में राष्ट्रीय आय 827 करोड़ थी।

(3) राहत कार्यों में शिथिलता तथा कमी थी।

(4) राष्ट्रीय ऋण जो 1933 में प्राय: 1950 करोड़ डालर था वह 1937में बढ़कर 3600 करोड़ डालर हो गया।

(5) सरकार द्वारा अत्यधिक खर्च की नीति से निजी विनियोग को बढ़ावा न मिल सका।

(6) 1937 में जब सरकारी व्यय कम किया गया तो अर्थव्यवस्था में फिर अस्थिरता दृष्टिगोचर हुई।

(7) सरकार की दोषपूर्ण नीतियों से न तो कोई सुधार हुआ और न अर्थ-व्यवस्था में स्थिरता आई। न्यू डील के आलोचकों ने यहां तक कहा है कि—

"राष्ट्रपति रूजवेल्ट अमेरिकी अर्थव्यवस्था की मूल कमियों को ठीक करने में असमर्थ रहा, उसने केवल बुराई की गहरी जड़ों को ऊपरी रूप से सुधारने की चेष्टा की।" दूसरे स्थान पर कहा गया है कि "निजी उपक्रमों पर आक्रमण, तानाशाही नियमों के लागू करने, राष्ट्रीय ऋण को बढ़ाने और श्रमिकों को अनेक सुविधायें देने से एक ऐसी अनिश्चितता उत्पन्न हो गई है जिसमें व्यवसाय का विस्तार असम्भव है। यह नीति पूर्णत: असफल रही है क्योंकि यह समस्या के समाधान में बहुत गहरी नहीं जा पाई है।"

समालोचना—

इन सब आलोचनाओं के बावजूद भी न्यू डील की नीति से अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था में राहत, पुनरुत्थान, सुधार तथा पुनर्निर्माण के जो कदम उठाये गए उनसे तात्कालिक संकट पर विजय पाकर यहां की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में स्थायी परिवर्तनों का सृजन हुआ। देश में व्याप्त निराशा के वातावरण में उज्ज्वल भविष्य के आसार दृष्टिगोचर होने लगे। पूंजीवादी अर्थतन्त्र में आबाध नीति के स्थान पर राज्य हस्तक्षेप तथा नियोजन को अपना कर पूंजीवाद के पतन को रोकने के प्रयास शुरू हुए। यह अमेरिकी आर्थिक विकास के इतिहास में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन का संकेतक है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि न्यू डील कार्यक्रम से निम्न प्रवृत्तियों की शुरूआत हुई—

(1) आर्थिक नियोजन तथा राज्य हस्तक्षेप को पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में अपनाना समयानुकूल प्रतीत हुआ।

(2) यथासंभव शीघ्रता से समृद्धि की स्थापना में राज्य नियन्त्रित एकाधिकार की नीति का तरीका उपयुक्त माना जाने लगा जैसा कि न्यू डील में नीरा, AAA तथा श्रमिक संगठनों के द्वारा सकट पर विजय प्राप्त हुई।

(3) नवीन आर्थिक सिद्धान्त तथा दर्शन का सूत्रपात हुआ और आंग्ल अर्थशास्त्री किन्स ने सर्व प्रथम व्यष्टि अर्थशास्त्र के स्थान पर समष्टि अर्थशास्त्र पर बल दिया और पूर्ण रोजगार के लिए आय उत्पादन वृद्धि पर ध्यान केन्द्रित किया।

(4) मौद्रिक तथा बैंकिंग सुधार से सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था और उस पर सरकार का नियन्त्रण देश के आर्थिक विकास में प्रभावी तत्व माने जाने लगे।

(5) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में भावी अवसाद के भय से छुटकारा पाने के लिए कुशल तथा सुदृढ़ प्रशासन व्यवस्था का निर्माण आवश्यक माना जाने लगा। इससे सुस्ती तथा मन्दी के दौर पर काबू सम्भव हो गया।

(6) सामाजिक कल्याण में सामाजिक सुरक्षा तथा सहायता योजनाओं का महत्वपूर्ण स्थान बन गया और बेरोजगारी तथा आर्थिक दरिद्रता से मुक्ति के लिए स्वतन्त्रता की वलि दी जाना उपयुक्त माना जाने लगा। व्यक्तिवाद के स्थान पर सामुहिक हितों की प्रवृत्ति प्रवल हुई। रूजवेल्ट के शब्दों में : "New Deal extended the frontiers of Social progress."

(7) संघ सरकार को प्रबल तथा मजबूत बनाने की प्रवृति बढ़ी तथा राज्यों की गतिविधियों में सामंजस्य स्थापना की नीति ने जोर पकड़ा।

(8) टेनेन्सी घाटी योजना प्रादेशिक योजना के साथ २ विकास की बहु-द्देशीय योजना के रूप में अनुपम उदाहरण सन्तुलित विकास का मार्ग-दर्शन करती है ।

अन्त में यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस नीति से भय पर विजय, विश्वास का पुनर्स्थापन और उज्ज्वल भविष्य में निष्ठा जागृत हुई। व्यक्तिवाद पर सामाजिक हितों का प्रभाव प्रबल हुआ और पूंजीवाद और अनुचित प्रतिस्पर्द्धा में निहित बुराइयों के उन्मूलन में राज्य नियन्त्रण एवं हस्तक्षेप के लिए राजी होना पड़ा। इसी से आर्थिक अवसाद की निराशाजनक परिस्थितियों में आशा तथा समृद्धि के स्वप्न सजोने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। इस तरह न्यू डील पूंजीवाद की समाप्ति न होकर अबाध नीति (Laissez faire) का पतन प्रदर्शित करती है ।

अध्याय 6

अमेरिका में कृषि विकास एवं मूल्य सहयोग

(Agriculture Development & Farm Price Support)

अमेरिका, जो आज विश्व का सबसे समृद्ध तथा प्रमुख औद्योगिक देश है, अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि प्रधान राष्ट्र था। कृषकों द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन के समय देश की 95 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण थी और 90 प्रतिशत प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से जीवन-यापन करती थी। कृषि वहां के जन-जीवन का आधार तथा जीवन-यापन का तरीका था। शनैः शनैः कृषि क्षेत्र में प्रगति से औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। यहां तक कि 1860 से 1914 की अवधि में कृषि क्षेत्र में जो तीव्रगामी परिवर्तन हुए उससे कृषि में व्यवसायिक दृष्टिकोण, यंत्रीकरण, बड़े पैमाने की उत्पत्ति, कुशल संगठन, विशिष्टीकरण तथा वैज्ञानिक विक्रय पद्धति से नये युग का सूत्रपात हुआ। औद्योगीकरण की आधार-शिला सुदृढ़ हुई। प्रथम युद्ध के प्रारम्भिक माहों में कुछ आर्थिक मंदी के आसार नजर आने लगे पर 1915 से यूरोप में अन्न की मांग बढ़ने से तथा 1917 में अमेरिका के युद्ध में शामिल हो जाने से कृषि क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई यहां तक कि अमेरिका 1920 में विश्व का अन्नदाता (Bread Basket of the World) समझा जाने लगा। पर युद्धोपरांत काल से 1932 तक कृषि विकास में मंदी का दौर आया इससे भारी धक्का पहुँचा। 1933 में न्यू डील नीति के अन्तर्गत् अनेक अस्थायी प्रयत्न कृषि मूल्यों में सुधार तथा व्यापार वृद्धि के लिये किये गये। 1920 के बाद से ही कृषि के स्थान पर उद्योगों का स्थान महत्वपूर्ण होने लगा। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो जाने से कृषि में पुनः उत्थान के आसार दृष्टिगोचर हुए। पर युद्ध के तुरन्त बाद फिर संकट के बादल मंडराने लगे। अति उत्पादन की समस्या तथा गिरते मूल्यों को सरकारी संरक्षण दिया जाने लगा। आज सयुक्त राज्य अमेरिका में कृषि विश्व में स्वतंत्र उपक्रम प्रणाली की महत्वपूर्ण उपलब्धि समझी जाती है। इसकी प्रचुर मात्रा में उत्पादन करने की शक्ति सभी साम्यवादी राष्ट्रों के लिये चुनौती तथा

ईर्ष्या का विषय है । अमेरिका विश्व का सबसे बड़ा औद्योगिक देश होने के साथ-साथ सबसे बड़ा कृषि उत्पादक राष्ट्र भी है । यहां का कृपक महत्वाकांक्षी, साधन-सम्पन्न तथा परिवर्तनशीलता का जीता-जागता अनुपम उदाहरण है । इस तरह अमेरिका की कृषि का क्रमिक विकास निम्न तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है—

1860 से पूर्व कृषि विकास
(Development of Agriculture before 1860)

19वीं शताब्दी के अन्त तक अमेरिका का इतिहास वहाँ की कृषि का इतिहास है । 1607 से 1783 के उपनिवेश का काल अमेरिका में यूरोपीय कृषि पद्धतियों, फसलों तथा पशुपालन का प्रयोगात्मक काल था । स्वतंत्रता संग्राम के बाद से गृहयुद्ध तक कृषि वहां के निवासियों का मुख्य आधार था । देश की 90% जनसंख्या कृषि से जीविकोपार्जन करती थी । कृषि अत्यन्त पिछड़ी तथा दयनीय स्थिति में थी और राष्ट्रीय आय का 40% भाग कृषि से ही प्राप्त होता था । धीरे-धीरे यातायात के साधनों के विकास तथा बाजारों के विस्तार से व्यापारिक फसलों का महत्व बढ़ा । 1790 में कृषि पदार्थों के निर्यात में वृद्धि हुई और कृषि क्षेत्र में प्रादेशिक विशिष्टता का प्रभाव बढ़ा । दक्षिण भाग में कपास की खेती की विशिष्टता से उत्पादन 1790 में 52 लाख पौंड से बढ़कर 1830 में 5072 लाख पौंड हो गया । इसी प्रकार दक्षिण के ल्युशियान क्षेत्र में चावल तथा गन्ना, वर्जिनिया, मेरीलैण्ड, उत्तरी केरोलिना तथा मिसोरी क्षेत्र में तम्बाकू, प्रशान्त महासागर के तट तथा केलीफोरनिया में कपास एवं फल, उत्तरी मैदानों में गेहूँ आदि फसलों का विशिष्टिकरण हुआ । इसी प्रकार कृषि क्षेत्र में विस्तार, उत्पादन में विभिन्नता, सुधरे हुए बीजों तथा औजारों का प्रयोग, आदि विशेषताओं के साथ 1820 से 1840 में खाद का प्रयोग तथा पशुधन में सुधार की प्रवृत्तियां प्रमुख थीं । कृषि में व्यापारिक दृष्टिकोण के विकास का दौर प्रारम्भ हो चुका था । इस तरह 1860 तक कृषि में विशेष प्रगति का अभाव था । 1790 में लोहे के हल का आविष्कार, 1834 के मेककोर्मिक के फसल काटने के यंत्र (Reaper) का आविष्कार, 1859 में मार्श के हार्वेस्टर का बहुत महत्व है ।

कृषि क्रान्ति का काल 1860 से 1914
(Period of Agricultural Revolution 1860 to 1914)

उन्नीसवीं शताब्दी में अमेरिकन गृह युद्ध से लेकर 1914 के प्रथम विश्व युद्ध तक कृषि क्षेत्र में जो द्रुतगामी तथा क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए इन्हें कृषि क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है । इस अवधि में कृषि क्षेत्र में विस्तार, उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि, विशिष्टिकरण व्यापार, वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग, प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि ने अमेरिकन कृषि को विकास की चर्म सीमा पर पहुँचा दिया जैसा कि निम्न तथ्यों से स्पष्ट है—

(1) **कृषि क्षेत्र में विस्तार**—कृषिजन्य पदार्थों की विश्वव्यापी मांग तथा देश में उपलब्ध कृषि क्षेत्र की प्रचुरता और कृषकों में कृषि के प्रति व्यवसायिक दृष्टि-कोण से कृषि क्षेत्र जो 1850 में लगभग 29.35 करोड़ एकड़ था वह 1910 में बढ़कर 87.8 करोड़ एकड़ हो गया। इस तरह 50 वर्षों में लगभग 50 करोड़ की वृद्धि हुई।

(2) **कृषि उत्पादन में वृद्धि**—1860 से 1910 की अवधि में कृषि उत्पा-दन में लगभग चौगुनी वृद्धि हुई। कृषि में मशीनों का उपयोग, सिंचाई की सुविधा, सस्ती साख और सरकार की सौहार्दपूर्ण नीति से उत्पादन में वृद्धि स्वाभाविक थी। कृषि उत्पादन का मूल्य जो 1860 में लगभग 1000 करोड़ डालर था वह 1870 में बढ़कर 1958 करोड़ डालर तथा 1910 में बढ़कर 8500 करोड़ डालर हो गया। यहां तक कि 1914–18 के बढ़े मूल्य स्तर के आधार पर कृषि उत्पादन का मूल्य 17680 करोड़ डालर का अनुमान है।

(3) कृषि क्षेत्र में नियोजित व्यक्तियों की संख्या में भी 126 लाख की वृद्धि हुई।

(4) **कृषि सम्पत्ति में वृद्धि**—कृषि क्षेत्र के विस्तार तथा यन्त्रीकरण से कृषि सम्पत्ति में तेजी से वृद्धि हुई। जहां 1860 में कृषि सम्पत्ति (Farm property) का मूल्य 798 करोड़ डालर था वह 1910 में बढ़कर 7800 करोड़ डालर हो गया अर्थात् लगभग 10 गुनी वृद्धि हुई। कृषि औजार एवं मशीनों का मूल्य 1860 में क्रमश: 24.6 करोड़ डालर से बढ़कर 1880 में 40.6 करोड़ डालर तथा 1910 में 126.5 करोड़ डालर हो गया। कृषि में जहाँ 1850 में 14 व्यक्तियों के पास औसत एक खेत था वह 1900 में प्रति 9 व्यक्तियों के पास एक खेत हो गया।

(5) **कृषि में विभिन्नता तथा विशिष्टिकरण**—कृषि क्षेत्र के विस्तार तथा व्यवसायिक दृष्टिकोण के कारण फसलों में विभिन्नता को प्रोत्साहन मिला पर साथ २ विशिष्टिकरण की प्रवृतियों के कारण दक्षिण भाग में कपास, मिनेसौटा एवं डेकेटा में गेहूं, केलीफोर्निया तथा फ्लोरिडा में फल अधिकता में बोये जाने लगे।

(6) **कृषि पदार्थों के व्यापार में वृद्धि**—देश में यातायात के साधनों के विकास से आन्तरिक बाजारों का विस्तार हुआ तथा साथ २ यूरोपीय देशों में कृषिजन्य पदार्थों की मांग में वृद्धि से इसका निर्यात जो 1870 में लगभग 36.1 करोड़ डालर था वह 1900 में बढ़कर 83.6 करोड़ डालर तक पहुँच गया। इस तरह 40 वर्षों में लगभग 125 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

(7) **कृषि में वैज्ञानिक उपकरण**—गृह-युद्ध के कारण श्रमिकों की कमी को मशीनों के मितव्ययता पूर्ण उपयोग से प्रतिस्थापित किया। यद्यपि सुधरे उपकरणों के उपयोग की शुरुआत पहले ही हो चुकी थी पर कृषि क्षेत्र विस्तार तथा बड़े पैमाने

पर उत्पादन की प्रवृत्तियों से इसे बढ़ावा मिला। जहाँ 1860 में 24·6 करोड़ डालर मूल्य के उपकरण थे उनका मूल्य 1910 में बढ़कर 126·5 करोड़ डालर हो गया। अर्थात् 50 वर्षों में 5 गुनी वृद्धि हुई। 1878 का अप्लेवी का प्रमुख आविष्कार (Self Binding Reaper) का नाम उल्लेखनीय है जिससे कृषि में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए।

(8) **शिक्षा तथा अनुसन्धान**—कृषि क्षेत्र में इस दिशा में सबसे पहला सुव्यवस्थित प्रयत्न मोरियल ऐक्ट अथवा 'राष्ट्रीय कृषि महाविद्यालय अधिनियम–1862' से हुआ जिसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य को 30 हजार एकड़ भूमि संघ द्वारा देने का प्रावधान था और राज्य सरकार उसके विक्रय मूल्य से 5 वर्ष के अन्तर्गत महाविद्यालय स्थापित करने तथा उसके निर्माण एवं प्रबन्ध का भार वहन करने के लिए बाध्य थी। 1914 तक इस अधिनियम के अन्तर्गत 69 महाविद्यालय स्थापित हुए। इसी प्रकार 1887 में जहां अनुसंधान एवं गवेषणा के 20 केन्द्र थे उनकी संख्या 1914 में लगभग 60 थी। इस तरह शिक्षा तथा अनुसंधान ने कृषि क्रान्ति को गति प्रदान की।

(9) **सरकार की उदार नीति**—शिक्षा तथा अनुसंधान और यातायात के विस्तार के साथ २ सरकार ने कृषि विकास के लिए सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि के लिए 1887 में Desert Land Act द्वारा प्रोत्साहन, 1894 में Carey Act द्वारा सिंचाई में निजी क्षेत्र को बढ़ावा, 1902 में Reclamation Act से संघीय सरकार को नहरों के निर्माण में भाग लेने का अधिकार, 1867 में ग्रेनजर्स (Grangers) अधिनियम से वैज्ञानिक तरीकों को अपनाने, ग्रामीण क्षेत्रों के सुधार तथा रेल भाड़े कम करने की व्यवस्था थी। इसी प्रकार रियायती दरों पर पश्चिमोन्मुख प्रयाण के समय भूमि प्रदान करने की नीति से कृषि में प्रगति प्रबल हुई।

इस तरह उपर्युक्त विवरण 1860 के बाद 1914 तक कृषि क्षेत्र में हुए विकास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार किसानों के प्रति व्यावसायिक दृष्टिकोण ने उन्हें उत्पत्ति में वृद्धि, निर्यात में प्रोत्साहन तथा मशीनीकरण की ओर अग्रसर कर कृषि विकास से औद्योगिक विकास की आधारशिला रखी। पर जहां इस अवधि में तीव्र प्रगति हुई वहां कहीं २ परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप निराशा भी व्याप्त हुई।

1860 से अमेरिकी कृषि में क्रान्ति के कारण
(Causes of Revolution in American Agricultural Since 1860)

अमेरिकी कृषि में 1860 से विकास की जो तीव्रगामी प्रक्रिया प्रारम्भ हुई उसके पीछे अनेक कारण थे और इन्हीं कारणों की सक्रियता से आज अमेरिका विश्व की भोजन की टोकरी (Bread Basket) बन पाया है। यों तो प्रत्येक देश में कृषि

विकास में इन तत्वों का न्यूनाधिक रूप में पाया जाना स्वाभाविक है पर उस समय में इन तत्वों से विकास को बल मिला। किसी एक कारण या घटना को उत्तरदायी नहीं ठहराकर उनके सामूहिक सक्रियता में ही क्रान्ति निहित है। अमेरिका में कृषि में 1860 से 1914 की अवधि को कृषि का स्वर्णिम युग (Golden age for American Agriculture) कहा जाता है।

(1) **प्राकृतिक उदारता**—प्राकृतिक साधनों की प्राचुर्यता, विविधता तथा जलवायु की उपयुक्तता ने कृषि-क्रान्ति का सूत्रपात किया। अमेरिका में विशाल मैदान तथा समशीतोष्ण जलवायु से कृषि-जन्य पदार्थों के उत्पादन का अवसर मिला। विभिन्न प्रकार की व्यापारिक फसलें उद्योगों के विकास का मार्ग प्रशस्त करने में उपयोगी सिद्ध हुईं।

(2) **पश्चिमोन्मुख प्रयाण**—पूर्व में जब जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि, औद्योगिक दुष्प्रभाव तथा यूरोप की संक्रमणात्मक स्थिति से पश्चिमोन्मुख प्रयाण से इस विशाल क्षेत्र के विकास में कृषि विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(3) **सरकार की भूमि नीति की उदारता**—सरकार ने कृषि-क्रान्ति में अपनी उदार भूमि नीति से क्रान्ति को गति प्रदान की। इससे जहां एक ओर पश्चिम के विशाल भू-क्षेत्रों को आसान शर्तों में व्यावसायिक कृषि के लिए आवंटन का मार्ग प्रशस्त किया वहाँ दूसरी ओर सरकार को भू-विक्रय से आमदनी भी प्राप्त हुई। 1862 के अधिनियम से वहां के वास्तविक निवासियों को 160 एकड़ भूमि निःशुल्क देने तथा पांच साल में भूस्वामित्व प्रदान करने का प्रावधान था। 1872 के Homestead Act के अन्तर्गत भूमि पर बसने वालों तथा तीन साल में सिंचाई की सुविधा की व्यवस्था करने वालों को 640 एकड़ भूमि सामान्य कीमतों पर बेचने की व्यवस्था की गई। 1877 में रेगिस्तान भूमि अधिनियम (Desert Land Act) पारित किया गया। अतः खेतों के आकार में वृद्धि की प्रवृत्ति बढ़ी। जहाँ सन् 1851 में 51% खेतों का आकार 50 से 500 एकड़ का था वह बढ़कर 1885 में 72% खेत 50 से 500 एकड़ के थे। सन् 1860 से 1910 के 50 वर्षों में कृषि जोतों की संख्या 20 लाख से बढ़कर 60 लाख हो गई तथा 50 करोड़ एकड़ अतिरिक्त भूमि कृषि के लिए उपयोग में आने लगी।

(4) **कृषि में यंत्रों का उपयोग**—कृषि क्षेत्र के विस्तार तथा उसमें व्यावसायिक दृष्टिकोण की अभिवृद्धि से यन्त्रों का उपयोग कृषि-क्रान्ति का महत्वपूर्ण कारण था। 1860 से कृषि में यन्त्रीकरण का अन्दाज इस तथ्य से लग जाता है कि जहां 1860 में 24·6 करोड़ डालर मूल्य के कृषि-यन्त्रों का उपयोग होता था वह बढ़कर 1880 में 40·6 करोड़ तथा 1914 में लगभग 150 करोड़ डालर हो गया।

आजकल अमेरिका में 40 लाख से अधिक ट्रैक्टरों तथा 12 लाख से अधिक ग्रेन कम्बाइन्स का उपयोग होता है ।

(5) **विद्युतिकरण**—कृषि में वैज्ञानिक उपकरणों तथा यन्त्रों के प्रयोग से औद्योगिक क्षेत्र के समान ही विद्युत शक्ति का उपयोग होने लगा । सिंचाई, उत्पादन वृद्धि, पशुपालन तथा ग्रामीण जीवन को आलोकित करना विद्युतिकरण से ही सम्भव हुआ । 1935 के बाद में विद्युतिकरण प्रशासन ने विद्युत का जाल सा बिछा दिया है ।

(6) **यातायात के साधनों का विकास**—कृषि-क्रान्ति में यातायात के साधनों के विकास ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । व्यापारिक फसलों के विकास तथा किसानों को उत्पादन का उचित मूल्य दिलाने का श्रेय यातायात एवं संवाद-वाहनके साधनों के विकास को दिया जाता है। यंत्रीकरण तथा बड़े पैमाने पर उत्पत्ति इनके विकास का ही प्रतिफल कहा जा सकता है। वैसे एक दूसरे का विकास परस्पर सम्बन्धित होता है ।

(7) **सरकार की नीति**—कृषि की क्रान्ति तथा प्रगति का एक कारण सरकार की दूरदर्शितापूर्ण तथा उचित नीति है । समय तथा परिस्थितियों के औचित्यानुसार सरकार ने कृषि के प्रोत्साहन, सुरक्षा तथा विकास के लिए उपयुक्त अधिनियम पारित किये । शिक्षा तथा अनुसंधान साख की व्यवस्था, यातायात का विकास, फसल बीमा व्यवस्था और सिंचाई की सुविधा प्रदान करना आदि सरकार के उदार और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण के द्योतक हैं जिससे कृषि का तीव्रगामी विकास हो सका । 1862 में ही कृषि विभाग बनाया गया ।

(8) **शिक्षा तथा अनुसन्धान का विस्तार**—कृषि का विकास बहुत कुछ कृषि-शिक्षा तथा तत्सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधान पर निर्भर करता है । अमेरिकी सरकार प्रारम्भ से ही सतर्क कही जा सकती है क्योंकि सन् 1862 में राष्ट्रीय कृषि महाविद्यालय अधिनियम, (National Agricultural College Act) जिसे मोरिल ऐक्ट भी कहा जाता है, पास हुआ जिसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य को संघ द्वारा 30 हजार एकड़ भूमि कृषि विद्यालयों की स्थापना तथा संचालन के लिए निःशुल्क दी जाती थी । इस अधिनियम में संशोधन हुए अन्ततः राज्यों को संघ द्वारा 1·1 करोड़ एकड़ भूमि उपर्युक्त काम के लिए दी गई । 1887 में Hatch Act प्रयोगशालायें स्थापित करने के लिए स्वीकृत हुआ और राज्यों को संघ सरकार द्वारा प्रतिवर्ष इन प्रयोगशालाओं के संचालन हेतु 15 हजार डालर अनुदान दिया जाता था । 1906 में यह अनुदान राशि बढ़ाकर 30 डालर हजार प्रतिवर्ष करदी गई । 1914 के स्मिथ-लीवर ऐक्ट के अन्तर्गत राज्य तथा सघ के सहयोग में County Agent System की स्थापना हुई जो राज्य संस्थाओं के सहयोग से किसानों तथा उनकी पत्नियों को निःशुल्क कृषि निर्देश, प्रदर्शन तथा ट्रेनिंग की व्यवस्था की जाती थी । देश में उस समय 60

गवेषणा केन्द्र स्थापित हो गये थे । अब भी सरकार कृषि-शिक्षा तथा अनुसंधान पर भारी व्यय भार वहन करती है ।

(9) **सिंचाई साधनों की सुविधाएं**—अमेरिकी कृषि में क्रान्ति का कारण सिंचाई साधनों के विकास में भी माना जाता है । 1870 में सिंचित क्षेत्र 20 हजार एकड़ भूमि थी । सन् 1887 में Desert Land Act तथा 1894 में Carey Act से सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि हुई । 1902 में Reclamation Act से संघ सरकार ने नहरों के निर्माण में सक्रिय योग दिया और अनेक वृहद् नदी घाटी योजनाओं का कार्य शुरू हुआ । सिंचित क्षेत्र 1930 में 230 लाख एकड़ हो गया । इस तरह सिंचित क्षेत्र में तीव्र वृद्धि से कृषि उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई ।

(10) **वित्तीय साधनों की सुविधायें**—आर्थिक विकास के प्रारम्भिक दौर में वित्तीय साधनों के अभाव में कृषि में ऋण की कठिनाई तथा ब्याज दर ऊंची थी । कुछ राज्यों ने सस्ती साख सुविधा के लिए ग्रामीण साख बैंक स्थापित किए । 1916 में फेडरल फार्म लोन बैंक की पद्धति को लागू किया गया तथा प्रशासन के लिए फेडरल फार्म लोन बोर्ड की स्थापना की गई । इसके अलावा फेडरल लैण्ड बैंक तथा फेडरल फार्म एसोसियेशन नामक संस्थायें संगठित की गई । इस योजना के अन्तर्गत 153·5 करोड़ डालर का सामान्यतः दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध किया गया ।

(11) **कृषि-जन्य पदार्थों की विश्वव्यापी मांग**—बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा कृषि-जन्य पदार्थों की विश्वव्यापी मांग ने कृषि क्रान्ति को सफल बनाया और अधिक उत्पादन के लिए उचित मूल्यों का विस्तृत बाजार उपलब्ध हो गया । खास तौर से अविकसित राष्ट्रों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि तथा वहां की कृषि के पिछड़ेपन ने अमेरिकी कृषि-क्रान्ति को सफल बनाया ।

कृषि में असन्तोष 1860-1914
(Discontent in Agriculture Sector)

गृहयुद्ध के बाद कृषि विकास में 1867 से 1897 के बीच समय-समय पर मंदी के कारण कृषि क्षेत्र में अनिश्चितता और असन्तोष में वृद्धि हुई क्योंकि कृषि उत्पादन और मांग में असन्तुलन के कारण उत्पादन आधिक्य तथा मूल्य-ह्रास कष्टप्रद होते थे । इसके अलावा ग्रामीण कृषि क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का नितांत अभाव, ऊंची ब्याज दर तथा ऋणों की सुविधा का अभाव, रेलों की उपेक्षा तथा उद्योगों की एकाधिकारी प्रवृत्तियों ने कृषि क्षेत्र में बाधाएं उत्पन्न करदी थीं । सरकार भी असन्तोष निवारण करने में असमर्थ रही । वे समय-समय पर सरकार से उपर्युक्त कठिनाइयों के निवारण की माँग करते थे । उन्होंने अपने संगठन भी बनाये जिनमें 1867 ग्रेनजर्स (Grangers) अथवा 'Patrons of Husbandry' तथा Greenback Party के नाम उल्लेखनीय हैं । इन संगठनों का उद्देश्य किसानों के हितों की रक्षा करना,

वैज्ञानिक तरीकों को प्रोत्साहन, ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति में सुधार, विधान द्वारा रेल भाडे पर नियन्त्रण और मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के सम्बन्ध में सरकार का ध्यान आकर्षित करना था। पर सरकारी प्रयत्न भी असफल से रहे।

प्रथम विश्व युद्ध काल में कृषि
(Agriculture during the I World War)

प्रथम युद्ध के प्रारम्भिक कुछ महीनों में मंदी का सा वातावरण था पर 1915 में यूरोप के देशों में अन्न की मांग में वृद्धि होने से कृषि को प्रोत्साहन मिला। 1917 में अमेरिका के युद्ध में शामिल हो जाने से कृषि संगठन युद्ध स्तर पर हुआ। क्षेत्र में विस्तार तथा ऊंचे मूल्यों से किसानों को अत्यधिक लाभ हुआ क्योंकि 1919 में किसानों की शुद्ध आय 9·9 बिलियन डालर थी जबकि 1914 में यह सिर्फ 4.5 बिलियन डालर ही थी अर्थात् दुगुनी से भी अधिक वृद्धि हुई। गेहूं का मूल्य भी 1919 में 1914 के मुकाबले दुगुना था। अनाज, कपास तथा तम्बाकू के निर्यात में भी क्रमश: 400 प्रतिशत, 133 प्रतिशत तथा 100 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यहां तक कि 1920 तक तो अमेरिका विश्व की रोटी की टोकरी (Bread Basket of the world) समझा जाने लगा।

युद्ध काल में सरकारी प्रयत्नों में 1917 का खाद्यान्न उत्पादन अधिनियम (Food Production Act, 1917) और खाद्यान्न तथा ईंधन नियन्त्रण अधिनियम (Food & Fuel Control Act) महत्वपूर्ण थे। पहले में खाद्यान्न उत्पादन तथा इसके संरक्षण की व्यवस्था थी जबकि द्वितीय में संग्रह की रोक, उचित वितरण, न्यायोचित मूल्य तथा कृषि सम्बन्धी नियन्त्रणों का समावेश था।

युद्धोत्तरकाल एवं विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी में कृषि
(Agriculture in Post-war & Depression period)
(1920–1939)

प्रथम विश्व युद्ध के कुछ समय बाद ही कृषि को घोर मंदी का सामना करना पड़ा। निर्यात तथा आन्तरिक उपभोग के लिए कृषि पदार्थों की मांग में कमी हो जाने पर भी कृषि उत्पत्ति में कमी न होने से कृषि-मूल्यों में भारी गिरावट आई। यहां तक कि 1920 से 1922 की अवधि में ही कृषकों की शुद्ध आय घट कर आधी रह गई। यद्यपि 1920 से 1929 की अवधि अर्थव्यवस्था के औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों के विकास का स्वर्णिम युग था पर कृषि को भारी धक्का पहुँचा। 1923 से 1929 तक कृषि-आय में सामान्यत: स्थायित्व रहा पर 1910–20 की अवधि की समृद्धि के मुकाबले में कृषि विकास में क्षति हुई। कृषि उत्पादन में अबाध गति से वृद्धि के कारण 1929 से कृषि में मन्दी अत्यधिक कष्टप्रद हो गई। समूची अर्थ व्यवस्था में मन्दी के संकट में कृपक वर्ग सर्वाधिक पीड़ित रहा। 1929 के बाद कृषि-

आय में तीव्रगामी ह्रास के कारण भूमि का मूल्य घटकर एक तिहाई से एक चौथाई ही रह गया। समृद्धि में गरीबी तथा भुखमरी का ताण्डव नृत्य हो रहा था और बेकारी से चारों ओर निराशा व्याप्त थी।

मन्दी काल में कृषि-मूल्य, आय तथा लाभ में भारी कमी निम्न कारणों का सामूहिक परिणाम स्थान था:—

(1) उत्पादन आधिक्य।
(2) विश्व-व्यापी मुद्रा संकुचन तथा मन्दी का दौर।
(3) यूरोपीय राष्ट्रों में संरक्षण नीति के कारण अमेरिकी कृषि उपज की मांग में भारी कमी।
(4) उत्पादन लागत में वृद्धि तथा लाभ में कमी।
(5) उपभोग प्रवृत्तियों में परिवर्तन से देश की आन्तरिक मांग में भी कमी।
(6) मूल्यों में कमी से होने वाली क्षति-पूर्ति के लिए व्यक्तिगत कृषकों के उत्पादन वृद्धि के प्रयत्नों के सामूहिक प्रभाव से उत्पादन आधिक्य से स्थिति में और बिगाड़ हुआ।

युद्धोत्तर काल में अस्थायी प्रयत्न तथा मन्दी निवारण के लिए न्यू डील

प्रथम विश्व-युद्ध के समय कृषि में सम्पन्नता आई। पर युद्ध की समाप्ति के बाद कृषि-क्षेत्र में मूल्यों तथा लाभ की अत्यधिक कमी के निराकरण के उद्देश्य से कृषि-प्रधान राज्यों के प्रतिनिधियों ने फार्म ब्लाक्स (Farm Blocks) का निर्माण किया और सरकार के सामने राहत तथा सहायता की मांग बुलन्द की गई। तदर्थ अनेक वैधानिक प्रयत्न शुरू किए गए।

प्रारम्भिक उपचार

(1) कृषि उपज के निर्यात को प्रोत्साहन देने तथा विदेशी प्रतिस्पर्द्धा को कम करने के लिए 1921, 1922 तथा 1930 में Tariff Act पारित कर लागू किए गये।
(2) कृषि पदार्थों के मूल्य वृद्धि के लिए 1927 और 1928 में कांग्रेस द्वारा Mc Nary Haugen Bills पास किये गये पर अन्तत: राष्ट्रपति ने उन्हें अस्वीकार कर दिया।
(3) साख तथा ऋण प्रदान करने के लिये 1921 में युद्ध वित्त निगम (War Finance Corporation) को संकटकालीन कृषि साख तथा कृषि उपज के निर्यात के लिए वित्त-व्यवस्था का प्रावधान किया गया। इसी प्रकार 1923 में कृषि साख अधिनियम (Agricultural Credit Act) इस सम्बन्ध में 1916 के अधिनियम के कार्यों के विस्तारार्थ पास किया गया।

(4) प्रथम बार कृषि उपज के विपणन की समस्या के समाधान के लिए 1929 में कृषि विपणन अधिनियम Agricultural Marketing Act पारित हुआ। इसके अन्तर्गत सहकारी संस्थाओं को 50 करोड़ डालर पूंजी से स्थापित फेडरल फार्म बोर्ड के माध्यम से ऋण प्रदान करना था।

उपर्युक्त प्रयत्नों के बावजूद आर्थिक मन्दी अधिक दुखद होती गई, गिरते मूल्यों तथा लाभ की स्थिति में सामान्य कृषक की स्थिति दिनों दिन बिगड़ती जा रही थी।

न्यू डील के अन्तर्गत कृषि

राष्ट्रपति हूवर के प्रारम्भिक उपचारों से मन्दी के क्षेत्र में विशेष सुधार के अभाव में 1933 में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जो प्रभावी उपचार अपनाये उन्हें सामूहिक रूप से न्यू डील (नया कार्यक्रम) की संज्ञा दी जाती है। कृषि क्षेत्र में न्यू डील के अन्तर्गत कृषि साख उत्पादन पर नियन्त्रण, वैज्ञानिक कृषि, बाढ़ नियन्त्रण तथा भूसंरक्षण, ग्रामीण क्षेत्रों का पुनर्वास और बेकारी के निवारण की नीतियों का समावेश था।

1933 के AAA (Agricultural Adjustment Act) के अन्तर्गत उत्पादन में कमी के लिये कृषि क्षेत्र में कमी तथा क्षतिपूर्ति के लिये सहायता, 1933 के Farm Credit Act के अन्तर्गत बैंकों तथा आर्थिक संगठनों द्वारा कृषकों को आर्थिक सहायता की व्यवस्था की गई। इसी प्रकार ऋणग्रस्तता निवारण के लिये Emergency Farm Mortgage Act, 1933 पारित कर सस्ती ब्याज दर पर भूमि बंधक बैंकों द्वारा ऋण देने तथा गिरवी मकान वालों को Home Owners Loan Act, 1933 के अन्तर्गत ऋण दिये जाते थे।

कृषि उपज के विपणन तथा विदेशी व्यापार पर भी उचित ध्यान दिया गया। 1934 में 1930 के तट-कर अधिनियम में संशोधन किया गया जिसमें राष्ट्रपति को अन्य देशों से व्यापारिक संधियाँ करने तथा विशेष परिस्थितियों में आयातकर में 50% कमी करने का अधिकार दिया गया। विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में एक सलाहकार समिति की नियुक्ति के अलावा विदेशी आयात-निर्यात में वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिये निर्यात-आयात बैंक (Export-Import Bank) की स्थापना हुई। कृषि उत्पादन के सट्टे की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण के लिये 1936 में वस्तु विनिमय अधिनियम (Commodity Exchange Act—1936) पास किया। इसी प्रकार विपणन में कुशलता तथा मूल्य वृद्धि के लिये विपणन समझौता अधिनियम (Marketing Agreement Act) 1937 में स्वीकार हुआ।

कृषि उपज के उत्पादन आधिक्य को कम करने के लिये 1933 में स्वेच्छापूर्ण समझौतों के अतिरिक्त प्रभावी कदम के रूप में 1934 में Backhead Cotton

Control Act पारित हुआ । तम्बाकू तथा गेहूँ की उपज की कमी के लिये भी दबाव से काम लिया गया । भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने, किसानों की क्रयशक्ति में वृद्धि करने तथा अन्य फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये 1936 का भू-संरक्षण अधिनियम (Soil Conservation Act) भी महत्वपूर्ण था ।

1936 में AAA को उच्च न्यायालय द्वारा अवैधानिक घोषित कर दिया गया । अतः उसके स्थान पर अधिक प्रभावी अधिनियम Farm Act पारित किया गया जिसमें AAA के सभी महत्वपूर्ण प्रावधानों का समावेश कर दिया गया था । इसमें कपास, चावल, गेहूँ और तम्बाकू के उत्पादकों की $\frac{2}{3}$ बहुमत पर कमी की मात्रा निश्चित कर बाजार मूल्य तथा निश्चित मूल्य का अन्तर, सरकार द्वारा चुकाने की व्यवस्था थी । उत्पादित अतिरिक्त उपज को सरकारी गोदामों में रखने की व्यवस्था थी । इसके अलावा गोदामों में रखी गई उपज पर ऋण प्रदान करने का कार्य वस्तु साख निगम (Commodity Credit Corporation) करने लगा । 1938 में फसल बीमा निगम की स्थापना हुई और सर्व प्रथम गेहूँ की फसल का बीमा आंधी, तूफान, सूखा, पानी, जानवरों तथा कीड़ों के द्वारा होने वाली क्षति के जोखिम से सुरक्षा तथा क्षतिपूर्ति के लिये शुरू हुआ । बाद में 1942 में यह कपास पर भी लागू हो गया ।

न्यू डील की कृषि क्षेत्र में सफलता

न्यू डील के अन्तर्गत 1933 के AAA को सफलता व्यावहारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय थी । जहां 1932 में कृषि मूल्यों का सूचनांक युद्ध स्तर के आधार पर 55 रह गया था वह 1933 में बढ़कर 70, 1934 में 90 तथा 1935 में 108 पर पहुँच गया । किसानों की आय में लगभग दुगुनी वृद्धि हुई । जहां 1932 में उनकी नकद आय 432·8 करोड़ डालर थी वह 1935 में बढ़कर 880 करोड़ डालर हो गई । 1929 के मुकाबले आय में 59% की वृद्धि हुई । सरकार ने भी उनकी आय में 8% की वृद्धि, उत्पादन में एकड़ कटौती के लाभ स्वरूप की । ऋण तथा साख सुविधाओं के विपणन की व्यवस्था तथा फार्म अधिनियम सभी का सामूहिक प्रभाव कृषि को महान् संकट से बचाने में रहा । यद्यपि नीति की सफलता आशानुकूल न रही पर फिर भी सरकार का सामयिक औचित्यपूर्ण हस्तक्षेप कृषि क्षेत्र में मंदी के संकट को कम करने में बहुत कामयाब रहा । समस्याओं का स्थायी रूप से हल न होने से 1937-38 में पुनः मंदी का झटका लगा पर 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने से स्थिति पूर्णतः बदल गई ।

द्वितीय विश्वयुद्ध एवं युद्धोत्तर काल में कृषि
(American Agriculture during & after World War II)

युद्ध की प्रारम्भिक अवस्था में लगातार तीन वर्षों तक अच्छी फसल तथा

विदेशी निर्यात पर नियंत्रण के कारण किसानों को मिलने वाले मूल्य नीचे हो गये तथा उनके पास कृषि उपज के भंडारों में वृद्धि हुई। इस स्थिति पर काबू पाने के लिये सर्व प्रथम 1939 में सामान्य विपणन व्यवस्था के माध्यम से ही घटे हुए मूल्यों पर अतिरिक्त उत्पादन को राहत के रूप में बेचने की व्यवस्था 1939 के Food Stamp योजना के अन्तर्गत की गई। संग्रह के लिये किसानों को ऋण तथा मूल्य समता के लिये सरकारी सहायता दी गई। 1941 में जब अमेरिका भी युद्ध में सम्मिलित हो गया तो युद्ध में रत सैनिकों तथा मित्र राष्ट्रों की मांग की पूर्ति के लिये सरकार की नीति एवं समस्या में एक दम परिवर्तन हो गया। कम उत्पादन योजनाओं के स्थान पर अधिक उत्पादन योजनाओं का दौर शुरू हुआ। अब किसानों को अधिक अन्न उपजाने के लिये प्रोत्साहित किया जाने लगा। कृषि में पांच आधार भूत फसलों—(कपास, चावल, गेहूँ, तम्बाकू तथा गन्ने) के स्थान पर विटामिन युक्त उत्पादनों पर अधिक जोर दिया जाने लगा। सरकारी अधिनियमों तथा सहायता-कार्यक्रमों से गन्ने तथा कपास के अलावा सभी कृषि पदार्थों के उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। यहाँ तक कि खाद्यान्न का उत्पादन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया और उत्पादन 1935-39 के औसत उत्पादन स्तर से 36% अधिक था। उत्पादन में कृषि मशीनों का सर्वाधिक प्रयोग होने लगा। आन्तरिक मांग में वृद्धि होने के साथ-साथ मित्र राष्ट्रों के लिए पूर्ति का एक मात्र स्रोत अमेरिका ही था इससे किसानों को ऊंचे मूल्य तथा लाभ प्राप्त हुए। मित्र राष्ट्रों को सामान तथा सेवाओं की खरीद के लिए Land Lesae Agreement के आधार पर बिक्री की गई। इससे 98 प्रतिशत सहायता ब्रिटेन, फ्रांस, रूस तथा चीन को मिली जिसमें अधिकांश भाग ब्रिटेन तथा रूस को मिला।

मित्र राष्ट्रों को बड़ी मात्रा में खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुएं भेजने के कारण देश में उनका अभाव हो गया। अत: राशनिंग की व्यवस्था करने के लिए Office of Price Administration (OPA) नामक संस्था की स्थापना की गई जो 1945 में राशनिंग व्यवस्था समाप्त हो जाने के बाद में भी 1946 तक कार्य करती रही।

देश में युद्धकालीन मुद्रा स्फीति को रोकने के लिये मजदूरी तथा वेतनों पर नियन्त्रण के लिये राष्ट्रीय श्रम मंडल (National Labour Board) फुटकर तथा थोक मूल्यों की अधिकतम सीमा निर्धारण के लिए OPA तथा कृषि मूल्यों को न्यायोचित स्तर पर रखने के लिए कृषि विभाग तथा OPA के सहयोग को सक्रिय किया गया।

युद्धोत्तर काल में कृषि
(Agriculture in Post-War II)

द्वितीय युद्ध की समाप्ति पर अमेरिकी कृषि पर प्रथम युद्ध के समान प्रतिकूल प्रभाव न पड़ा क्योंकि अविकसित राष्ट्रों में जनसंख्या वृद्धि तथा मित्र राष्ट्रों में

पुर्निर्माण तक अमेरिकी खाद्यान्न की भारी माँग बनी रही। पर कृषि क्षेत्र में तकनीकी क्रान्ति से अत्यधिक उत्पादन होने से कृषि उपज के आधिक्य की समस्या उत्पन्न हो गई। सरकार को मांग एवं पूर्ति के इस असन्तुलन की स्थिति में मूल्य स्थिरता की समस्या के संकट का कड़ा मुकाबला करना पड़ता है। जहां एक ओर मूल्यों में सहायता देकर हानि उठानी पड़ती है वहां उत्पादन के संग्रह, कमी तथा सुविधाजनक शर्तों पर बिक्री की व्यवस्था करनी पड़ रही है। सरकार को जहां 1953 में कृषि को संघीय सहायता के रूप में 3 बिलियन डालर दिया जाता था वह 1963 में बढ़कर 9 बिलियन डालर हो गया। इसका अधिकांश भाग कृषि मूल्यों तथा कृपकों की आय स्थिरीकरण पर व्यय किया जाता है। पी. एल. 480, विदेशी उपहार आदि कार्यक्रमों से कृषि उपज के निर्यात को प्रोत्साहन दिया जाता है। यहां तक कि इसके अन्तर्गत निर्यात की मात्रा 1953 में 2·5 बिलियन डालर से बढ़कर 1963 में 5 बिलियन डालर हो गई है।

इस तरह युद्धोत्तर काल में कृषि क्षेत्र में निम्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं—

(1) **उत्पादन आधिक्य**—1939 के बाद 1949 और 1950 को छोड़कर कृषि उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। सन् 1958 तथा 1959 में सर्वप्रथम खाद्यान्न का वार्षिक उत्पादन 20 करोड़ टन हुआ जो कि युद्ध पूर्व के दशांक के औसत उत्पादन से लगभग 80% अधिक था। कृषि उत्पादन का सूचनांक 1947-49 के आधार पर 1961 में 128 था।

(2) **कृषि आय की अनिश्चितता**—युद्धोत्तर काल में कृषि उपज के मूल्यों की अस्थिरता से गैर कृषि क्षेत्र की आय कृषि क्षेत्र आय से बढ़ गई है। इसके अलावा कृषि क्षेत्र में अनिश्चितता का वातावरण व्याप्त है।

(3) **कृषि क्षेत्र तथा कृषि सम्पत्ति में वृद्धि**—1960 को छोड़कर युद्धोत्तर काल में भूमि के मूल्य तथा कृषि सम्पत्ति में निरन्तर वृद्धि हुई है। 1940 के मुकाबले अब तक तिगुनी वृद्धि हुई है। पूंजीगत लाभ का प्राधान्य रहा है। कृषि में नियोजित मशीनरी तथा अन्य सम्पत्ति में लगभग 6 गुनी वृद्धि हुई है। जहाँ 1930 में प्रति फार्म औसत 1 ट्रेक्टर था अब वह बढ़कर 3 ट्रेक्टर प्रतिफार्म हो गया है। फार्म की संख्या 1930 में 67 लाख से घटकर 1959 में 46 लाख तो रह गई पर आकार में आशातीत वृद्धि हुई है।

(4) **कृषि में श्रम एवं पूंजी की मात्रा में परिवर्तन**—जहां 1860 में कृषि में कुल जनसंख्या का 80% नियोजित था वह घटकर 1900 मे सिर्फ 37%, 1944 में 20% तथा 1963 में केवल 8-9% ही रह गया है। इस तरह जहां एक तरफ मानव श्रम का उपयोग कृषि क्षेत्र में निरन्तर घटता जा रहा है

वहां दूसरी ओर मशीनों का तथा पूंजी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। 1930 के मुकाबले अब ढाई गुना अधिक विनियोग है। नाईट्रोजन खाद तथा उन्नत बीजों पर अधिक विनियोग होता है। अब 3 ट्रैक्टर प्रति फार्म का औसत है जबकि 1930 में यह 1 ट्रैक्टर प्रति फार्म से भी कम था। आज वहां 40 लाख ट्रैक्टरों तथा 12 लाख कम्बाइन्स का उपयोग होता है।

(5) **कृषि आय तथा मूल्यों में सापेक्षिक सुधार**—यदाकदा कृषि आय में तथा मूल्यों में गिरने की प्रवृत्ति को छोड़ सामान्यतः उसमें वृद्धि का ही आभास होता है क्योंकि सरकार अपनी मूल्य सहायता नीति से मूल्यों को नीचे गिरने से रोकती रही है, यहां तक कि सरकार अब 9 बिलियन डालर व्यय करती है।

(6) पशुपालन पर अधिक जोर दिया गया है क्योंकि उपभोक्ता आदतों में परिवर्तन तथा अधिक पौष्टिक भोजन की प्रवृत्ति ने इसे अधिक महत्व दिया है। लगभग 100 करोड एकड़ भूमि चरागाह के रूप में काम आती है। इस तरह खाद्यान्न के स्थान पर सुअरों, मछलियों, मुर्गी-पालन, भेड़ बकरी आदि का उपभोग प्रबल हुआ है।

(7) **कृषि तथा व्यापार में सहयोग की वृद्धि**—आज का अमेरिकी किसान व्यापारी प्रवृत्ति का हो गया है। वह निश्चित बाजार में निश्चित मूल्यों पर वस्तुओं के बेचने के अनुबन्ध करता है। इससे उसकी स्वतन्त्रता में यद्यपि कमी हुई है पर सुरक्षा बढ़ी है।

(8) **सरकार की प्रभावी नीति**—अमेरिकी कृषि क्षेत्र में आय में निश्चितता तथा मूल्यों में स्थिरता और कृषि तथा औद्योगिक मूल्यों में समता बनाए रखने के लिए सरकार ने कृषि मूल्य सहायता (Farm Price Support) की नीति का अनुसरण किया है। उत्पादन आधिक्य के आन्तरिक वितरण, विदेशी व्यापार, निर्यात सम्वर्धन, उपहार योजना, उत्पादन लागत में कमी तथा उत्पादन में आधिक्य की समस्या के हल के लिये उत्पादन में विविधता, क्षेत्र में निरन्तर कमी का प्रयास और सरकार के द्वारा आर्थिक सहायता तथा अनुदान नीति के प्रमुख अंग हैं। इतना सब कुछ करने के बावजूद भी कृषि नीति में अनेक कमियां महसूस की जाती हैं।

युद्धोत्तरकालीन अमेरिकी कृषि की मुख्य समस्याएं
(Main Problems of American Agriculture in Post-War period)

1860 से 1929 की अवधि में अमेरिकी कृषि का तीव्रगामी विकास हुआ पर फिर विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी तथा युद्धोत्तरकालीन परिस्थितियों से अनेक समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ। आज अमेरिकी कृषि में तीव्रगति से तकनीकी साधनों के उपयोग, दोषपूर्ण पुरातन कृषि नीति, उत्पादन आधिक्य, कृषकों की आय मे अनिश्चितता तथा प्रतिकूल मूल्य समता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

(1) **तकनीकी विस्फोट**—अमेरिकी कृषि में उत्कृष्ट कुशलता प्राप्त करने के लिये युद्धोत्तरकाल में जो वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपकरणों तथा साधनों का उपयोग हुआ है उससे दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई है। जहां एक ओर इन तरीकों से उत्पादन में तीव्रगति से वृद्धि होने के कारण उत्पादन आधिक्य (Over-Production) की स्थिति उत्पन्न हो गई है वहाँ दूसरी ओर रोजगार की कमी हुई है। अतः कृषि-जन्य पदार्थों की माँग में कम लोच तथा तकनीकी तरीकों से लोचदार उत्पत्ति ने सन्तुलन स्थापन की विकट स्थिति उत्पन्न करदी है।

(2) **कृषि उत्पादन आधिक्य**—तकनीकी क्रान्ति के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई है पर मांग में उसी गति से वृद्धि न होने से कृषि-जन्य वस्तुओं के स्टॉक में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। जहां 1940 में गेहूं का स्टॉक जो अगले वर्ष के प्रारम्भ में था सिर्फ 40 करोड़ बुशल था पर 1960 में 130 करोड़ बुशल हो गया। इसी प्रकार चावल का स्टॉक भी 1940 में 10 लाख बुशल से बढ़कर 1960 में 135 लाख बुशल था। 1961 में राष्ट्रपति आइजन होवर के आर्थिक विवरण से स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है—

"समस्या का आकार अतिरेक की मात्रा से प्रदर्शित होता है। खाद्यान्न का बचा स्टॉक लगभग समूचे राष्ट्र के पशुधन को अगले 6 महीनों तक के लिए पर्याप्त है। कपास का आधिक्य कपड़ा मिलों को अगले 6 महिनों के लिए पर्याप्त है। अतः स्पष्ट रूप में उत्पादन और प्रभावी मांग में समायोजन की आवश्यकता है। जब तक यह समायोजन नहीं हो जाता, तब तक यह अतिरेक की समस्या सरकार के लिए सिर दर्द बनी रहेगी।"

इस प्रकार उत्पादन आधिक्य से कृषि मूल्यों में गिरावट की प्रवृत्ति को रोकने के लिये प्रति वर्ष सरकार को 7·5 बिलियन डालर से अधिक मूल्यों के कृषि पदार्थों का संचय करना पड़ता है।

(3) **कृषि आय में अस्थिरता**—कृषि क्षेत्र में आय की अस्थिरता भी बड़ी समस्या मानी जाती है। पिछले वर्षों से कृषि क्षेत्र की अपेक्षा गैर-कृषि-क्षेत्र की आय में तेजी से वृद्धि हुई है। उत्पादन आधिक्य और उत्पादन व्यय में अधिकता से लाभ कम ही रह जाता है। सन् 1951-60 के बीच कृषि आय में 25% की कमी हुई है तथा ऋण की रकम दुगुनी हो गई है।

इसके अतिरिक्त कृषि जन्य पदार्थों की मांग कम लोचदार तथा औद्योगिक वस्तुओं की मांग लोचदार होने के कारण दोनों क्षेत्रों में मूल्य समता कृषि के प्रतिकूल और उद्योगों के लिए अनुकूल रहती है। सन 1951-60 के बीच कृषि तथा उद्योग

मूल्य समता दर 80·100 थी। यह प्रतिकूलता कृषि क्षेत्र में लगे लोगों को बुरी तरह प्रभावित करती है और असमानता को बढ़ावा देती है।

(4) **नई प्रभावी कृषि नीति की समस्या**—कृषि की वर्तमान नीति तथा उससे सम्बन्धित अधिनियम जिनका प्रतिपादन 1930 की विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी के काल में हुआ, वर्तमान परिस्थितियों में अनुकूल न होकर, कृषि के लिए समस्या बन गई है। आईजन होवर के अनुसार "कृषि अमेरिकी अर्थव्यवस्था के लिए भारी भार-स्वरूप है क्योंकि अमेरिकी कृषि कानून अप्रभावी, असामयिक तथा खर्चीला है।"

कृषि अधिनियमों की अनुपयुक्तता, खर्चीलापन तथा अप्रभावी तत्वों के कारण कृषि अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर घातक प्रहार है और अधिक प्रभावी, उपयुक्त तथा मितव्ययता पूर्ण नीति ही समस्या का समाधान प्रस्तुत कर सकती है।

(5) **छोटे कृषकों के आय तथा रोजगार की समस्या**—छोटे खेतों पर काम करने वालों की संख्या यद्यपि कम है फिर भी जो कृषक मुख्य रूप से अपने थोड़े से सीमित साधनों से छोटे खेतों से अपनी जीविकोपार्जन करते हैं उनकी बुरी दशा है। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि राष्ट्रीय दृष्टि से यह मानव साधनों का वह स्रोत है जो अंशतः अपव्यय का शिकार है। यह अपव्यय तथा निम्न आय स्तर समृद्धिशाली अर्थव्यवस्था में कलक है।

युद्धोत्तर काल में कृषि समस्याओं के समाधान के प्रयत्न
(Efforts for solution of farm problems in Post-War period)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि युद्धोत्तर काल में और खासतौर से 1951 से कृषि की समस्याओं में निरन्तर वृद्धि हुई है। उत्पादन आधिक्य तथा 1951-60 के दस वर्षों में ही कृषि आय में 25% की कमी होना और ऋणों की मात्रा बढ़कर दुगुनी हो जाना, चिंता के स्वाभाविक कारण हैं। सरकार ने इन समस्याओं के समाधान के लिए जो प्रयत्न विभिन्न क्षेत्रों में किए हैं उनका संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(1) **कृषि शिक्षा एवं अनुसंधान सेवायें**—कृषकों की प्राथमिक शिक्षा, अनुसंधान कार्य तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए देश में Land Grant Colleges, कृषि विस्तार सेवाओं तथा कृषि प्रयोग सस्थानों का जाल सा बिछा हुआ है जिससे कृषक सहायता प्राप्त कर उत्पादन तथा बिक्री में कुशलता ला सकते हैं। कृषि को जीव-जन्तुओं तथा बीमारियों से बचाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। कृषि क्षेत्र में कृषि उपज के नये उपयोग की पद्धति से अपव्यय को बचाकर, कृषकों की आय में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

(2) **सहकारी कृषि विस्तार सेवायें तथा कृषि सहकारी सेवायें**—यह सेवायें विकेन्द्रित कार्यक्रम के रूप में ग्रामीण समस्याओं के यथा-सम्भव विशेष समाधान तथा

विश्लेषण करती हैं। विस्तार कार्यक्रम में उत्पादन लागत में कमी तथा कुशलता, उत्पादकों की उपज के विक्रय में सहायता देकर उन्हें अधिकतम आय उपलब्ध कराना, उन्हें उनके प्रशिक्षण तथा गवेषणा की गतिविधियों को प्रबल करना आदि में सहायता तथा मार्ग दर्शन करना है। कृषि सहकारी सेवाएं उनके सदस्यों को उपज बिक्री तथा उनके लिए क्रय में सेवाएं प्रदान करती है।

(3) **कृषि संरक्षण कार्यक्रम सेवा**—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भूसंरक्षण के लिए आर्थिक सहयोग, जल साधनों के उपयोग पर नियन्त्रण तथा उचित प्रबन्ध, तकनीकी सहायता तथा भूमि के लाभप्रद उद्योगों के सम्बन्ध में सलाह देना आदि का समावेश होता है। यह अनुमान लगाया जाता है कि कुल भूमि का एक तिहाई भाग इससे लाभान्वित हुआ हैं।

(4) **भूसंरक्षण सेवा**—इस सेवा के अन्तर्गत भूमि की उर्वरता की रक्षा करना है। यह अनुमान लगाया जाता है कि अभी कृषि उपयोग में आने वाली 5·2 करोड़ एकड भूमि को क्षरण से बचाने के लिए प्रभावी प्रयत्नों की आवश्यकता है अतः प्रति वर्ष औसतन 15 लाख एकड़ में संरक्षण कार्य प्रगति पर है। राष्ट्रीय वन सम्पत्ति के विकास, संरक्षण तथा प्रबन्ध के लिए भी वन सेवा (Forest Service) सक्रिय है।

(5) **कृषि उत्पादन की विक्रय व्यवस्था तथा सहायता कार्यक्रम**—अमेरिकी कृषि की उत्पादन आधिक्य परिस्थितियों को देखते हुये केन्द्रीय विक्रय व्यवस्था का अत्यधिक महत्व है। इसके अलावा कृषि उपज के मूल्य में स्थिरता और कृषकों की आय की निश्चितता के लिए सरकार ने विक्रय सेवा, वायदे के सौदों, निर्यात, संग्रह सुविधा, आर्थिक सहायता और उत्पादन क्षेत्र में कमी या उत्पादन में विविधता को प्रोत्साहन देना आदि कार्यक्रम अपनाए हैं।

(i) कृषि विपणन सेवा (Agricultural Marketing Service) केन्द्रित विपणन की वह व्यवस्था है जो खासतौर से विपणन समझौतों तथा आदेशों, प्रमाणीकरण, खाद्यान्न मूल्यों के सम्बन्ध में अनुसंधान, संग्रह आदि सभी व्यवस्था करती है। खाद्यान्न उपहार की व्यवस्था भी की जाती है। कृषि उपज के सट्टे को नियन्त्रित करने तथा मूल्यों में भारी उतार-चढ़ाव और धोखे की प्रवृत्तियों पर रोक के लिए, वस्तु विनिमय अधिनियम (Commodity Exchange Act) के अन्तर्गत वस्तु विनिमय अधिकारी (Commodity Exchange Authority) है।

(ii) कृषि उपज के निर्यात सम्वर्धन तथा अमेरिकी कृषि की समृद्धि और स्थिरता के लिए कृषि विदेश सेवा (Foreign Agricultural Service) है जो *P.L.* 480 के अन्तर्गत विदेशों में कृषि उपज का निर्यात, उसके व्यापार का विस्तार, विदेशों में कृषि के विकास की आवश्यक सूचना तथा विदेशों में अमेरिकी कृषि उपज

के आयात प्रतिबन्धों को प्रत्यक्ष तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से दूर करवाना आदि हैं । जहां Food for peace प्रोग्राम के अन्तर्गत 1953 में निर्यात 2·5 विलियन से बढ़कर 1963 में 5 विलियन हो गया ।

(iii) वस्तु स्थिरीकरण सेवा—कृषि मूल्यों में समता रखने, उत्पादन पर नियन्त्रण तथा उत्पादन आधिक्य की विक्रय व्यवस्था के लिए Agricultural Price Support Legistation के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्वपूर्ण 1948 और 1949 के कृषि अधिनियम हैं । 1948 के अधिनियम के अन्तर्गत 90% मूल्य समर्थन तथा 1949 के अधिनियम के अन्तर्गत Modernised Parity Formula की व्यवस्था थी जिसमें 1910-14 के कृषि मूल्यों को सहायता का आधार माना गया । कोरिया युद्ध के बाद मूल्य समर्थन के लिए कई अधिनियम पारित हुये जिनमें दरों में विभिन्नता अपनाई गई है ।

वस्तु स्थिरीकरण सेवा का केन्द्र बिन्दु साख निगम है जो कृषि मूल्यों में भारी उतार-चढाव से सुरक्षा प्रदान करता है । यह संस्था अपने विभिन्न उपविभागों से कृषि उपज को भविष्य में बेचने के संग्रह करने को प्रोत्साहन देना, भंडार की सुविधा देना तथा निर्यात सम्बर्धन करने का कार्य करती है । किसानों को विक्रय न करने के लिए 10 विलियन डालर से अधिक ऋण बाकी है । भंडारों के लिए 1949 से 1963 तक की अवधि में 100 विलियन डालर का विनियोग किया गया है जिनमें 50 करोड़ बुशल कृषि उपज संग्रह की जा सकती है ।

(iv) भूमि बैंक—जब वस्तु स्थिरीकरण सेवा से भी उत्पादन आधिक्य की समस्या का समाधान न हो सका तो 1956 के कृषि अधिनियम (Agriculture Act, 1956) के अन्तर्गत Soil Bank की स्थापना की गई । जो दो प्रकार से समस्या के समाधान का प्रयत्न करता है—

(1) Acerage Reserve के अन्तर्गत गेहूं, कपास, तम्बाकू और चावल के उत्पादन क्षेत्रों में कमी करने वाले किसानों को क्षतिपूर्ति के रूप में निश्चित रकम चुकाने की व्यवस्था है ।

(2) Conservation Reserve के अन्तर्गत कृषि भूमि को दूसरी फसलों से हटाने तथा निर्देशित फसलों के उत्पादन पर अनुदान की व्यवस्था है ।

यह योजना अधिक सफल नहीं हुई क्योंकि निम्नकोटि की भूमि को ही Reserve के लाभ उठाने में काम ली जाती है ।

इस प्रकार उपर्युक्त कृषि सहायता कार्यक्रम पर 1953 में संघ सहायता की राशि 3 विलियन डालर थी जो बढ़कर 1963 में 9 विलियन डालर हो गई । इसका

अधिकांश भाग 5 विलियन डालर कृषि मूल्यों तथा आय के स्थिरीकरण पर व्यय हुआ। अतिरेक की समस्या के लिए राज्य सरकारों को 200 मिलियन डालर सहायता दी गई। 1963 में Food for peace programme में 5 विलियन डालर मूल्य की कृषि उपज निर्यात की गई। कृषि उपज को भण्डारों में रखने पर सरकार ने 1963 में 7·5 विलियन डालर व्यय किया। इस तरह अमेरिका सरकार अपनी समृद्ध कृषि के लिए हर यथा सम्भव सहायता प्रदान करती है। प्रो० एच० क्रुस (H. Krooss) का कथन यहां उपयुक्त लगता है—"कृषि उत्पादन में आधिक्य की समस्या का हल नहीं हो पाया है केवल उसकी लागतों का सामाजीकरण कर लिया गया है। अब कृषक को उत्पादन आधिक्य का सारा भार वहन नहीं करना पड़ता परन्तु कुछ सीमा तक वह करदाताओं तथा शहरी उपभोक्ताओं द्वारा वहन किया जाता है।"

अध्याय 7

अमेरिका में श्रमिक-संघ आन्दोलन का विकास

(Growth of Trade–Unionism in U. S. A.)

औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप जहां एक ओर घोर सम्पन्नता एवं अपार वैभव के युग का समारंभ हुआ वहां दूसरी ओर कारखाना प्रणाली में सर्वहारा वर्ग का शोषण तथा उनकी विवशता की शुरुआत हुई। मालिकों के शोषण तथा कारखानों की यातनाओं के विरुद्ध श्रमिकों की प्रतिक्रिया से उनमें संगठित होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। इस तरह श्रमिक-संघ आन्दोलन औद्योगिक क्रान्ति की देन है। श्री शैडवेल (Shadwell) के शब्दों में "कारखानों ने इसे सम्भव तथा कारखानों की दशाओं ने इसे आवश्यक बनाया।"

"श्रमिक-संघ श्रमिकों के ऐसे स्थायी संगठन को कहते हैं जिसका उद्देश्य काम की दशाओं का बनाए रखना तथा सुधारना होता है" (सिडनी तथा वेब)। श्री वी.वी. गिरी के अनुसार "श्रमिक-संघ श्रमिकों द्वारा अपने आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए बनाए गये ऐच्छिक संघ हैं।" इस तरह श्रमिक संघ अपने सदस्यों की उद्योगपतियों के शोषण से रक्षा कर उनके जीवन को समृद्धिपूर्ण, अनुशासित, कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक बना कर, आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने वाली महत्वपूर्ण कड़ी है। उपर्युक्त परिभाषाओं के सन्दर्भ में अमेरिका में श्रमिक-संघों के विकास को स्पष्ट करना कठिन है क्योंकि उनके उद्देश्य तथा तरीके यूरोपीय देशों के श्रमिक-संघों से कुछ भिन्न थे। अमेरिका में श्रमिक-संघ आन्दोलन श्रमिकों को अपने मजदूरी स्तर में सुधार, कार्य के तौर-तरीकों में सुधार के लिये अपने तात्कालिक आर्थिक ढांचे में एक संगठित तथा सुनियोजित प्रयास था।

अमेरिकी श्रमिक-संघों का क्रमिक विकास
(Development of Trade Unionism in U.S.A.)

अमेरिका में श्रमिक-संघों का विकास यूरोपीय देशों की तुलना में देर से प्रारम्भ हुआ तथा प्रगति में शिथिलता थी। अध्ययन की दृष्टि से हम श्रम-संघों के क्रमिक विकास को निम्न शीर्षकों में विभाजित करते हैं—

से 1850 का काल अमेरिका के लिये राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं बौद्धिक भावनाओं और उन्माद का काल था। इस प्रकार का अनुभव इससे पूर्व कभी नहीं हुआ था। भिन्न-भिन्न विचार धारा वाले लोगों ने जैसे चार्ल्स फोरियर (Charles Fourier), एलवर्ट ब्रिसवेन, होरेस ग्रीले तथा रोवर्ट ओवन ने अपने प्रयासों से परिवर्तन लाकर प्रभाव जमाने की चेष्टा की, पर वे अपने उद्देश्यों में सफल न हो सके।

इस समय तक श्रमिकों में राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक मांगों की पूर्ति करवाने के प्रति उत्साह दृढ़ बनता जा रहा था। उन्होंने समान निःशुल्क शिक्षा, प्रतिदिन कार्य के 12½ घण्टों के स्थान पर 10 घन्टे, हड़ताल का पूर्ण वैधानिक अधिकार, सामूहिक सौदेबाजी, कारखानों में सुरक्षा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम आदि बातों पर जोर देना आरम्भ कर दिया था। इसके अलावा राजनैतिक उद्देश्यों से उनके आन्दोलनों में भी सम्मिलित होते थे। 1845 में Working Men's Protective Union स्थापित की गई। इस सहकारी संगठन के अन्तर्गत 1852 में 400 वितरण केन्द्र थे जो 1855 तक बढ़कर 800 हो गये पर 1853 से ही संगठनात्मक मतभेद हो जाने तथा गृह-युद्ध के कारण यह आन्दोलन समाप्त हो गया।

इस समय तक श्रमिक हड़तालें मुख्यतः काम के घन्टों को लेकर हुईं न कि मजदूरी वृद्धि की मांग से; क्योंकि वास्तविक मजदूरी मे तो वैसे ही 1830 से 1860 में 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। 1840 तक आन्दोलनों के फलस्वरूप 10 घण्टे प्रतिदिन काम को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया था। यहां तक कि अमेरिका के राष्ट्रपति वान बेरेन (Van Buren) ने केन्द्रीय कर्मचारियों के लिये 10 घण्टे कार्य करने का अधिनियम स्वीकार कर लिया। मजदूरों के प्रदर्शनों, विरोधों तथा राजनैतिक दबाव के कारण 1853 तक कई राज्यों में 10 घन्टे काम का सिद्धान्त पूर्णतः स्वीकार कर लिया।

देश में यातायात तथा संवाद वाहन के साधनों के विकास ने श्रमिक-संघ आन्दोलन को व्यापक रूप प्रदान किया। व्यापारिक कार्यकलापों में वृद्धि तथा केलिफोर्निया में स्वर्ण खानों की खोज से श्रमिक आन्दोलन में नये जीवन का संचार हुआ और 1850 से 1860 की अवधि में लगभग 10 नई यूनियनें बनीं जिनमें इन्टरनेशनल टाईपोग्राफिकल यूनियन (1850), दी हेटफिनिशर्स (1854), दी नेशनल यूनियन ऑफ मेकनिस्ट्स एण्ड ब्लेक स्मिथ्स (1859) तथा दी नेशनल मोल्डर्स यूनियनें आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। धीरे-धीरे जनता तथा सरकार का श्रमिक-संघों के प्रति रवैया बदलता जा रहा था, पर वास्तव में गृह-युद्ध से पूर्व श्रमिक-संघों का उचित विकास नहीं हो पाया था और प्रगति धीमी थी। विकास की मंदता के निम्न कारण थे—

(1) **व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मनोवृत्ति**—प्रारम्भिक विकास के समय अधिकांश

अमेरिकी समाज श्रमिक-संघों का विरोध इस मनोवृत्ति से करते थे कि इनसे उनकी स्वतंत्रता तथा निजी साहस पर कुठाराघात होगा क्योंकि अमेरिकी सभ्यता एवं संस्कृति में व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना गहरी जडें जमाये हुये थी और उसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप उन्हें मान्य न था। यह तब तक चला जब तक कि श्रमिक-संघों के प्रति उनका विश्वास जम न गया।

(2) **कृषक वर्ग के हितों से विरोध**—कृषि श्रमिकों के हित औद्योगिक श्रमिकों के हितों से भिन्न थे। क्योंकि ऊंची मजदूरी कृषकों के हितों के विरुद्ध थी अतः पारस्परिक विरोधी भावना से उन्हें कृषकों का सहयोग प्राप्त न हो सका।

(3) **साहसियों का विरोध**—साहसी मजदूरी कोष सिद्धान्त के अभ्यस्त थे और वे श्रमिकों को रोजगार में लगाते समय उनके श्रमिक-संघ के सदस्य बनने की शर्त लगाते थे। यहां तक कि कुछ कम्पनियां अपने ही श्रम-संघ बनाती थीं जिनमें वास्तविक श्रमिकों का प्रतिनिधित्व न होकर साहसियों के हितों का ही प्रतिनिधित्व होता था। वे साधारणतया ऐसे ही श्रमिकों को काम पर रखते थे जो श्रमिक-संघों के सदस्य नहीं थे। इससे श्रमिक-संघों का निर्माण कठिन होता जा रहा था।

(4) **सरकार की उदासीनता**—औद्योगिक श्रमिकों का राजनैतिक अल्पमत होने से तथा उनमें राजनैतिक संगठन के अभाव में श्रमिक-संगठनों की शक्ति कम थी। सरकार भी उनके कार्यों तथा विकास के प्रति उदासीन थी। यहां तक कि उनके द्वारा मजदूरी वृद्धि के लिये किये गये संगठनात्मक आन्दोलनों को षड़यंत्र माना जाकर, अपराधियों की भांति दण्ड दिया जाता था। सर्वप्रथम 1853 में काम के घण्टों सम्बन्धी अधिनियम स्वीकार हुआ।

(5) **श्रमिकों में संगठन की रुचि का अभाव**—अमेरिकी श्रमिक यूरोपीय प्रवासी थे और उनका अमेरिका में स्थायी स्वार्थ न होने से, श्रमिक संघों की सदस्यता के प्रति इच्छा न थी। इसके अलावा बहुत से श्रमिकों का कृषि क्षेत्र में सम्बन्ध होने से उनकी रुचि श्रमिक संघों में न थी। वे हड़ताल करने से होने वाले आर्थिक नुकसान को उठाने के लिए तत्पर न थे।

(6) **विशाल प्राकृतिक तथा आर्थिक साधनों की उपलब्धता**—साधनों की प्रचुरता होने से श्रमिक अपने झगड़ों में न पड़कर उनका उपयोग करने में उत्सुकता दिखा रहा था। उसमें मध्यमवर्गीय प्रवृत्तियां प्रबल हो गई थीं और इस तरह यह आन्दोलन वास्तविक रूप में पीड़ितों, शोषितों का आन्दोलन न बन सका।

(7) **अमेरिकी संविधान में श्रम प्रान्तीय विषय था**—ऐसी परिस्थिति में विभिन्न राज्य सरकारें श्रमिक समस्याओं का हल अपने ही ढंग से करती थीं। अधिनियमों की विभिन्नता में प्रभावशाली श्रमिक:संघों का निर्माण सम्भव न हुआ।

इस तरह उपर्युक्त कारणों से गृह-युद्ध से पूर्व अमेरिका में श्रमिक-संघ आन्दोलन

अधिक शक्तिशाली न बन सका पर ज्यों-ज्यों 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में आर्थिक तथा औद्योगिक जटिलताओं में वृद्धि हुई, श्रमिकों की मध्यमवर्गीय दार्शनिक विचार धारा कुण्ठित होने लगी और श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास में ही, उसे अपना भविष्य सुरक्षित नजर आने लगा।

गृह-युद्ध के बाद श्रमिक-संघ आन्दोलन
(Trade Union Movsment after the Civil War)

गृह-युद्ध, अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की तरह, श्रमिक संघ आन्दोलन के लिए भी एक युगान्तकारी घटना सिद्ध हुई। युद्ध काल में ही मुद्रा स्फीति के कारण सामान्य मूल्य स्तर में 76% की वृद्धि परन्तु मजदूरी दरों में केवल 50% की ही वृद्धि होने से श्रमिकों में असन्तोष की लहर भभक उठी तथा हड़तालों का तांता लगने लगा। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय तथा राष्ट्रीय श्रम संगठनों की वृद्धि हुई और उनका संगठनात्मक आधार अधिकाधिक सुदृढ़ होना जा रहा था।

गृह-युद्ध के पश्चात् भी श्रमिकों की दशा में सुधार के आसार धूमिल थे। बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना तथा श्रम विभाजन की पेचीदगी से कुशल श्रमिकों की भी दुर्दशा और मजदूरी में कमी होने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही थी। नियोजक तथा नियोजित के बीच सम्बन्ध कटु होते जा रहे थे। उद्योगों के केन्द्रीयकरण से श्रमिकों में पारस्परिक सद्भाव बढ़ा और उन्होंने अपनी स्थिति को और बिगड़ने से रोकने के लिये अधिकाधिक संगठित होना प्रारम्भ किया। दास-प्रथा के अन्त, 1864 के विदेशों से श्रमिक आयात करने की स्वतन्त्रता प्रदान करने वाले अधिनियम से तथा युद्ध के बाद छंटनी से, श्रमिकों की संख्या में वृद्धि तथा मोल-भाव करने की क्षमता घटने से मजदूरी में और अधिक कमी आ गई। जनसंख्या में वृद्धि ने भी मजदूरी कम करने में योग दिया। गृह-युद्ध में औद्योगिक सम्पत्ति का कुछ ही उद्योगपतियों के पास केन्द्रीयकरण होने से श्रमिकों का शोषण करने में अधिक समर्थ थे। शिक्षा के प्रसार तथा छापेखाने के प्रचार से श्रमिकों में संगठन की भावना भड़काना अधिक सरल हो गया। इस तरह उपर्युक्त परिस्थितियों ने युद्ध तथा युद्धोत्तर काल में श्रमिक आन्दोलन को अग्रसर करने के लिए आवश्यक वातावरण बना दिया था।

गृह-युद्ध के बाद सभी श्रमिक संस्थाओं ने राष्ट्रीय यूनियन की स्थापना का प्रयत्न किया तथा श्रमिक संघ आन्दोलन में पर्याप्त सरगर्मी रही। 1861 से 1873 के तेरह वर्षों में 23 बड़े श्रमिक-संघों का निर्माण हुआ। सन् 1866 में W. H. Sylivis के प्रयत्नों से National Labour Union की स्थापना हुई। इस संस्था में मजदूरों तथा किसानों को संगठित करने तथा उनके कल्याणकारी कार्य—उत्पादन सहकारी संस्थाएं, लाभ तथा ब्याज पर नियन्त्रण, श्रम का 8 घन्टे का कार्यकाल को बढ़ाना था। यह सच्चे अर्थों में श्रमिक-संस्था न होकर विशिष्ट उद्देश्यों से प्रेरित

एक राजनैतिक संस्था थी। अतः अधिक समय तक जीवित न रहकर 1872 में समाप्त हो गई। फिर भी इस संस्था ने अपने अल्पकालीन अस्तित्व में आठ घण्टे कार्य, राष्ट्रीय श्रम ब्यूरो की स्थापना, अनिवार्यताओं के आयातकर में कमी, सस्ते प्रवासी श्रम के आयात पर प्रतिवन्ध आदि मांगें रखी। इसी प्रकार मेसेच्यूसेटस में 'Knight of St. Crippin' संघ की स्थापना हुई पर राजनीति में सक्रियता के कारण इसका भी विघटन हो गया।

कल्याणकारी श्रम आन्दोलन (Twilight of Welfare Unionism)—1869 में फिलाडेल्फिया के यू. एस. स्टीफेन्स ने अपने 6 साथियों से मिलकर The Noble order of the Knights of Labour नामक श्रमिक-संघ की स्थापना की जिसका उद्देश्य उपार्जित धन का अधिकाधिक भाग मजदूरों को मजदूरी के रूप में दिलाकर, उनके बौद्धिक, शारीरिक तथा साँस्कृतिक विकास को प्रबल करना था। इस संघ का आदर्श वाक्य था "एक व्यक्ति का घाव सारे देश को विकल कर सके।' इस आदर्श घोषणा के आदेश में घोषणा की गई कि श्रम पवित्र और दोष रहित है और संगठन का निर्माण इसे गिरने से रोकने तथा लालच से उत्पन्न होने वाली बुराइयों से अलग रखना है।

आदर्श आदेश के इन सिद्धान्तों की लोक प्रियता से संगठन की प्रगति होती गई। 1878 तक तो प्रगति धीमी थी पर बाद में यह गुप्त संस्था स्थायी मान ली गई। इसमें बैंकर, डाक्टर, वकील तथा सैलून कीपर्स के अलावा सब सदस्य बन सकते थे। 1884 में सदस्य संख्या 6 लाख तथा जो 1886 में बढ़कर 7 लाख हो गई। यह संस्था कई कारणों से असफल रही—

(1) हितो की विविधता—सदस्यता के द्वार सभी वर्गों के लिये खुले थे पर हितों में समानता न होने से कार्यक्रमों का सफल संचालन सम्भव नहीं हो सका।

(2) हे मार्केट का रक्तपात पूर्ण दंगा, नाइट्स की करतूत मानी जाने लगी और इससे लोगों का विश्वास उठ गया।

(3) Jay Gould's South Western Rail Road के विरुद्ध नाइट्स की हड़ताल असफल रही। असफलता में विघटनकारी तत्व प्रभावी थ।

(4) इन नाइट्स के द्वारा आयोजित 200 उत्पादन सहकारिताओं में, जिनमें 20 लाख डालर की पूंजी लगी थी दिवालिया सिद्ध हुई और सदस्यों तथा जनता की सहानुभूति नाइट्स के विरुद्ध होने लगी।

1900 में नाइट्स के सदस्यों की संख्या केवल एक लाख ही रह गई जिनमें

अब केवल किसान, स्वतन्त्र मेकेनिक तथा व्यापारी ही रह गये। अकुशल श्रमिकों के लिए महान सेवाएं देने वाला श्रमिकों का एक पहला देश व्यापी संगठन मुख्यतः असफल रहा। यद्यपि यह संस्था 1917 तक चलती रही पर इसका पतन 1886 से ही प्रारम्भ हो गया था।

अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर (1886)
(American Federation of Labour)

नाइट्स में कुशल एवं अकुशल श्रमिकों में बढ़ता हुआ आपसी मतभेद और कल्याणकारी श्रमिक-संघों एवं राष्ट्रीय श्रम संस्थाओं में उद्देश्यात्मक संघर्ष होने के कारण 1881 से ही पतन प्रारम्भ हो गया था। असन्तुष्ट कुशल श्रमिकों के नेताओं ने 1881 में Federation of Organised Trades & Labour Unions की स्थापना की। 1886 में सेम्यूल गोम्पर्स, एडोल्फ स्ट्रेसर तथा मेकग्वायरें के प्रयत्नों से Federation of Organised Trades and Labour Unions के विलिनीकरण से American Federation of Labour (AFL) की स्थापना हुई। सेम्यूल गोम्पर्स जो 1886 में इसका अध्यक्ष नियुक्त हुआ वह मरणपर्यन्त 1924 तक इसका अध्यक्ष बना रहा। यह संघ औद्योगिक संघों तथा छोटे-छोटे दस्तकारी संघों को मिलाकर शीर्ष संघ के रूप में थे। व्यक्तिगत सदस्यता को कोई स्थान नहीं था। सदस्यता केवल सुसंगठित तथा मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय संघों के लिये ही खुली थी। इस संघ में उन गलतियों की पुनरावृत्ति न की गई जिनसे नाइट्स का पतन हुआ था। प्रारम्भ में अकुशल श्रमिकों, महिलाओं तथा नीग्रो लोगों को जिन्हें संगठित करना मुश्किल माना जाता था सम्मिलित नहीं किया। राजनैतिक उद्देश्यों से सरोकार न था और दिवा स्वप्न देखने के बजाय यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया। गोम्पर्स जो एक समाजवादी थो, ने अनुभव किया कि अमेरिका में पूंजीवाद के विरुद्ध कोई आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। इसलिए उसने AFL में श्रमिकों के संघों को ही सम्मिलित किया तथा नियोजकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध से ही समस्याओं के समाधान का तरीका अपनाया। प्रत्येक क्राफ्ट के एक ही राष्ट्रीय संघ को मान्यता देने से उसमें एक ही प्रकार के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले संघ ही थे जिससे अधिक मजदूरी, कार्य के कम घन्टे तथा कार्य करने की दशा में सुधार की समभावनाओं में वृद्धि हुई। शान्तिमय उपायों के साथ-साथ हड़तालों को भी मान्यता दी गई। इस प्रकार कुशल श्रमिकों की भावनाओं का प्रतिनिधित्व किया गया।

इन सब विशेषताओं के कारण 1886 से 1898 तक यद्यपि प्रगति धीमी रही पर 1900 के बाद प्रगति में तेजी आई। सम्मिलित श्रमिक संघों को बहुत अधिक उचित स्वतन्त्रता तथा उद्देश्यों की यथार्थता से 1886 में स्थापित यह संस्था 1936 तक अमेरिका में श्रमिकों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में सक्रिय रही। युद्ध के समय

सरकार ने श्रमिकों के प्रतिनिधित्व को मान्यता श्री गोम्पर्स को War Labour Board में नियुक्त करके दी। इसके अलावा दूसरे मण्डलों में भी AFL को प्रतिनिधित्व मिला। सरकार ने यूनियनों के द्वारा निर्धारित वेतन, कार्य के घन्टे तथा काम की दशाओं को स्वीकार कर लिया। इससे यह संघ बहुत शक्तिशाली बन गया। जहां 1890 में इसकी सदस्य संख्या 1 लाख थी वह 1898 में बढ़कर 5 लाख, 1914 में 20 लाख तथा 1920 में बढ़कर 40·79 लाख हो गई।

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद सरकारी ठेकों में कमी होने से तथा उद्योगपतियों के सामने बाजार की प्रतिस्पर्द्धा सामने आने से अनेक हड़तालें सामने आई। 1920 के जून से दो साल की आर्थिक मन्दी ने स्थिति को और नाजुक बना दिया। हड़तालों की विफलता, श्रमिकों का बाहुल्य तथा आर्थिक संकट से श्रमिक-संघों में सदस्य संख्या $\frac{1}{4}$ घट गई पर मूल्यों के घटने पर भी मजदूरी में कमी न होने से 1922 में श्रमिकों की आर्थिक स्थिति फिर भी ठीक थी। 1923 से 1929 तक के समृद्धि के समय भी सदस्यों की संख्या में अधिक वृद्धि न हुई क्योंकि उद्योगपतियों द्वारा श्रमिक संघ की सदस्यता रखने वालों को हतोत्साहित किया गया। फिर 1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी ने श्रमिक-संघों की कमर तोड़ दी और इसकी सदस्य संख्या 1930 में केवल 30 लाख ही रह गई। 1931 में 28·9 लाख थी। फिर भी यह AFL श्रमिकों के प्रधान देशव्यापी संगठन के रूप में कार्य करता रहा। 1935 से इसका पतन प्रारम्भ हुआ क्योंकि उस समय जे. एल. लीविस की अध्यक्षता में एक नये संगठन Committee for Industrial Organisation की स्थापना हो गई, फिर भी यह संस्था कार्य करती रही और अन्तत: AFL तथा CIO (Congress of Industrial Organisation का 1955 में एकीकरण हो गया। AFL का विकास निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है—

वर्ष	सदस्य संख्या (लाखों में)
1890	1·00
1900	5·48
1914	20·00
1920	40·79
1931	28·89
1951	90·00

वाम-पक्षी श्रम आन्दोलन
(Left wing Unionism)

जहां 1861 के बाद अमेरिकी श्रम आन्दोलन में कल्याणकारी संघों तथा श्रमिक संघों के उद्देश्यात्मक संघर्ष से AFL की स्थापना हुई वहां श्रमिक संघों में वामपक्षी विचारधारा का भी कुछ प्रभाव नजर आता था। जर्मन के क्रान्तिकारियों ने 1867 में समाजवादी पार्टी बनाने का प्रयत्न किया और 1885 में शिकागो में प्रवासियों ने Metal Workers Federation बनाया और अन्त में नाइट्स में विलीन हो गये या AFL में सम्मिलित हो गये। पर सफलता न मिलने पर 1895 में इन क्रान्तिकारियों ने Denial Deleon के नेतृत्व में Socialist Trade & Labour Alliance संगठित की और AFL से प्रतिद्वन्दता प्रारम्भ की। इसके अलावा वामपक्षी क्रान्तिकारियों ने 1893 में Western Federation of Mines, 1898 में Western Labour Union बनाई गई। इस तरह आपसी आन्तरिक कलह से ये सब संस्थाएं असफल ही रहीं।

1905 में वामपक्षी क्रान्तिकारी नेताओं ने AFL से प्रतिस्पर्द्धा के लिए पुनः एक बहुत बड़ी यूनियन Industrial Workers of the World (I. W. W.) बनाई जिसमें असंगठित प्रवासी श्रमिकों, पश्चिम के अकुशल श्रमिकों तथा अल्प-आय वाले विदेशियों को सम्मिलित किया गया। यह सामूहिक सौदेबाजी के स्थान पर प्रत्यक्ष कार्यवाही में विश्वास रखती थी और अन्ततः ऐसे श्रमिक समाज का निर्माण करना चाहती थी जिसमें उद्योगों पर श्रमिक-संघों का स्वामित्व तथा श्रमिकों को संचालन का अधिकार होगा। प्रथम विश्व-युद्ध तथा रूस में क्रान्ति से इस यूनियन में राष्ट्र विरोधी हरकतों का आभास होने लगा और 11 वर्षों में ही इसका अल्पकालीन अस्तित्व समाप्त हो गया। इसमें लगभग 70 हजार सदस्य थे।

वामपक्षी नेता William Z. Foster ने भी प्रथम विश्व-युद्ध काल में साम्यवादी आन्दोलन का प्रारम्भ International Educational League of North America की स्थापना से किया और उसने 1919 में U.S. Steel Corporation के विरुद्ध हड़ताल आयोजित की और 1922 में अपने सघ को अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद से सम्बन्धित कर दिया। परन्तु अमेरिकी जनता में साम्यवाद की राष्ट्र विरोधी गतिविधियों तथा सरकार के कठोर रुख से साम्यवादी कार्यकर्त्ताओं तथा संस्थाओं को भूमिगत होना पड़ा। इस तरह वामपक्षी क्रान्तिकारियों के इन यत्र-तत्र सगठनों की हिंसात्मक कार्यवाहियों से अर्थव्यवस्था में प्रभावी सफलता न मिल सकी।

रेलवे ब्रदरहुड्स
(The Railway Brotherhoods)

प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व AFL के अलावा चार रेल्वे यूनियनों जिसमें (1)

आरगेनाइजेशन आफ इन्जीनियर्स (2) दी आर्डर ऑफ रेल्वे कन्डक्टर्स (3) दी इन्टरनेशनल फायरमेन्स यूनियन और (4) ब्रदरहुड ऑफ ट्रेनमेन सम्मिलित थी, अधिक शक्तिशाली संगठन के रूप में Railway Brotherhoods के नाम से प्रसिद्ध थी।

इसके अलावा महिलाओं की यूनियनों में भी निरन्तर विकास हो रहा था और सभी प्रकार के उद्योगों में महिलाओं के श्रमिक-संघ बन गए थे। यहां तक कि 1920 में उनकी सदस्य संख्या 4 लाख थी।

1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी में श्रमिक-संघ आन्दोलन
(Trade Union Movement during the Great Depression of 1930)

1930 की विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी ने समूची अमेरिकी अर्थव्यवस्था को झकझोर दिया। गिरते हुए मूल्यों में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी फैली और श्रमिकों की आर्थिक दशा दयनीय हो रही थी। श्रमिक-संघ आन्दोलन पर बुरा प्रभाव पड़ा। अमेरिकन फेडरेशन की सदस्य संख्या जो 1920 में 40·79 लाख थी। 1931 में घटकर 28·9 लाख ही रह गई। कुछ क्रान्तिकारी नेताओं ने AFL में घुस कर मार्क्सवाद फैलाने की असफल चेष्टा की। इन विषम परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए सरकार के रुख में परिवर्तन हुआ। New Deal (न्यू डील) के अन्तर्गत श्रमिकों के संगठनों को अधिक सुदृढ़ तथा श्रमिकों को सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार दिया गया।

1933 में National Industrial Recovery Act (NIRA) के द्वारा श्रमिकों की सामूहिक सौदेबाजी को मान्यता दी गई, पर बाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसे अवैध घोषित करने पर 1935 में Labour Relations Act (जिसे वेजनर ऐक्ट भी कहा जाता है) पारित किया गया जिससे श्रमिकों को न केवल सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार मिला बल्कि National Labour Relations Board की भी स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त 1935 में Social Security Act के पारित होने से श्रमिकों को सुरक्षा के लाभ प्राप्त होने लगे। इस तरह मंदी के समय में सरकार के द्वारा सहानुभूति और श्रमिकों के प्रति रुचि से श्रमिक-सघ आन्दोलन में पुनः जान आ गई। 1936 में श्रमिक-संघों की सदस्य संख्या जो 1931 में लगभग 50 लाख थी बढ़कर 73 लाख हो गई।

कांग्रेस ऑफ इन्डस्ट्रियल आरगेनाइजेशन
(Congress of Industrial Organisation—(CIO)

नवम्बर 1935 में AFL के विभाजन स्वरूप जे. एल. लेविस (John L. Lewis) की अध्यक्षता में अकुशल श्रमिकों का एक नया संगठन Committee for Industrial Organisation की स्थापना हुई। इसे 1936 में Congress of

Industrial Organisation (CIO) के रूप में मान्यता मिली। आर्थिक मन्दी के भयंकर दुष्प्रभाव न्यू डील की प्रगतिशील नीतियों तथा AFL में कमियों को दूर करने के लिए इस नये संगठन का निर्माण हुआ। बड़े पैमाने की उत्पत्ति तथा औद्योगिकरण में बढ़ती हुई पेचीदगी से अकुशल तथा अर्द्ध-कुशल श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती जा रही थी और अमेरिकन फेडरेशन में उनको सदस्यता की मनाई करदी गई थी। अतः CIO की स्थापना निम्न उद्देश्य से की गई—

"बड़े औद्योगिक स्तर पर चलने वाली इकाइयों में असंगठित श्रमिकों को संगठित करने में प्रोत्साहित करने तथा विकास करने के लिए इस संघ की स्थापना की जा रही है।"

इस प्रकार AFL तथा CIO दो संस्थाओं की स्थापना हो गई थी जिसमें 1940 में सदस्य सख्या 90 लाख थी। दोनों संस्थाओं में संरचना एक सी थी। Prof. Raynolds के अनुसार 'The great majority of both (AFL and CIO unions were business unions.' पर इनकी नीतियों तथा कार्यविधि में भिन्नता थी। CIO एक औद्योगिक यूनियन थी न कि सिर्फ दस्तकारी यूनियन। इसमें महिलायें, नीग्रो, अकुशल तथा कुशल सभी उद्योगों में संलग्न श्रमिक सदस्य बन सकते थे। इसमें राजनैतिक उद्देश्यों का भी समावेश किया गया तथा इसकी नीतियों में रूढ़िवादिता को समाप्त कर अधिक प्रगतिशील नीतियाँ अपनाई गई जबकि AFL की सदस्यता कुशल श्रमिकों के लिए खुली थी। राजनैतिक उद्देश्यों से सरोकार न था, और रूढ़िवादी सुधार जैसे कार्य के घन्टों में कमी, मजदूरी में वृद्धि और दशाओं में सुधार के अलावा कार्य नहीं थे।

इस संगठन में प्रारम्भ में United Mine Workers यूनियन के अलावा 6 बड़े उद्योगों की यूनियनें भी सम्मिलित थीं और सदस्य संख्या लगभग 10 लाख थी। अगले दो वर्षों में AFL से निकाली गई कुछ संस्थाओं के और शामिल हो जाने से इसकी सदस्यों की संख्या 30 लाख से अधिक हो गई तथा राष्ट्रीय यूनियनों की संख्या 32 थी जिनमें स्टील, रबर, सीमेन्ट, खनिज तेल ओटोमोबाइल्स आदि सम्मिलित थे।

इस प्रकार 1940 तक अमेरिकी श्रमिक-संघ आन्दोलन में इन दो शक्तिशाली सस्थाओं का महत्व बहुत बढ़ गया था। उन दोनों में मिलाकर श्रमिक सदस्यों की संख्या 73 लाख हो गई थी कि जबकि 1931 में AFL में सदस्य संख्या केवल 28·9 लाख ही थी। इन दोनों संगठनों में संरचनात्मक एकता होते हुए भी नीतियों तथा कार्यप्रणाली में भेद था।

आगे चलकर इन दोनों संगठनों के एकीकरण के प्रयत्न किए गए पर असफल रहे। अन्ततः 1955 में इन दोनों का एकीकरण कर लिया गया जिसकी सदस्य

संख्या 150 लाख थी। इस नये एकीकृत संगठन का नाम "American Federation of Labour & Congress of Industrial Organisation" हो गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध तथा युद्धोत्तर काल में श्रमिक-संघ आन्दोलन
(Trade Unionism in Second World War & Postwar period)

द्वितीय विश्व-युद्ध से पुनः श्रमिकों की मांग में वृद्धि हुई तथा सरकार ने भी युद्धकालीन संकट की परिस्थिति में औद्योगिक शान्ति रखने के महत्व को देखते हुए AFL तथा CIO दोनों को War Labour Board तथा अन्य संस्थाओं में प्रतिनिधित्व दिया। इससे श्रमिकों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ की तथा कुल श्रमिकों का लगभग 25% श्रमिक संगठनों के अन्तर्गत आगया। मजदूरी पाने वाले 80% श्रमिक श्रम-संस्थाओं के रूप में संगठित थे और हर उद्योग में इन संगठनों का प्रभाव था।

युद्ध तथा युद्धोत्तर काल में कुछ हड़तालों से जनता में श्रमिक-संघों के प्रति विरोध की भावना जागृत हुई तदनुसार 1947 में Labour Management Relations Act (जिसे Taft Hartley Act भी कहा जाता है) पारित हुआ जिसमें नियोजकों तथा नियोजितों के बीच सन्तुलन स्थापना की दृष्टि से श्रमिक-संघों के अधिकारों में कमी की गई।

युद्धोत्तर काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि युद्ध के समय से ही AFL तथा CIO में आपसी द्वेष एवं विरोध समाप्त हो गया। इससे 1950 में दोनों के नेताओं ने इन संस्थाओं के एकीकरण के प्रयास प्रारम्भ किये। अनेक बार विफलताओं के बाद 1955 में AFL तथा CIO का एकीकरण हो गया जिससे अमेरिका में श्रमिकों की सर्व शक्तिशाली संस्था—"American Federation of Labour & Congress of Industrial Organisations" (AFL & CIO) का निर्माण हुआ। इसके संविधान के अनुसार" Each affiliated national and international union is entitled to have its autonomy, integrity and jurisdiction protected and preserved".

युद्धोत्तर काल में श्रमिक संघों के विकास की यह विशेषता रही है कि बड़े संघों का निर्माण हुआ है। 1956 में 10 बड़ी श्रम संस्थाओं में कुल सदस्यों का 45% भाग था। 5 संस्थाओं की सदस्य संख्या 1 लाख थी जबकि 40 की 25000 से कम थी। 1959 में श्रमिक-संघों में भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण तथा उसके उन्मूलन के लिये Labour Management Reporting & Disclosure Act पारित हुआ।

श्रमिक संघ आन्दोलन की वर्तमान स्थिति
(Present position of Trade Unionism in U.S A.)

अमेरिकी अर्थव्यवस्था में श्रम संस्थाएं महत्वपूर्ण भाग अदा करती रही हैं।

आज देश में लगभग 80 हजार स्थानीय या औद्योगिक श्रम संस्थाएं हैं जो लगभग 200 राष्ट्रीय स्तर के श्रमिक संगठनों से सम्बद्ध हैं। इनमें से आधे से अधिक संगठन राष्ट्रीय श्रमिक यूनियन फेडरेशन AFL & CIO से सम्बद्ध हैं। इन सब श्रमिक-संघों की सदस्य संख्या 190 लाख है जिसमें 34 लाख महिला सदस्य भी शामिल हैं। यद्यपि 190 लाख सदस्यों की संख्या बड़ी संख्या लगती है परन्तु यह संख्या कुल कार्यशील जनसंख्या का लगभग 25% भाग ही है। अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सदस्यता समान नहीं है। जहां माइनिंग, निर्माण उद्योगों, यातायात तथा सार्वजनिक सेवाओं में अधिक से अधिक श्रमिक श्रम-संस्थाओं के सदस्य हैं वहां सेवा, उद्योगों, थोक तथा फुटकर व्यापार और आफिस कर्मचारियों की बहुत कम संख्या श्रमिक संस्थाओं के सदस्य हैं। अनेकों प्रयत्नों के बावजूद कृषि मजदूर अब भी असंगठित हैं। निजी उद्योगों में 55% कर्मचारी, उद्योगों में 75% श्रमिक तथा यातायात एवं निर्माण कार्य के 90% श्रमिक यूनियनों से सम्बद्ध हैं। श्रमिक यूनियनों की प्रवेश फीस तथा मासिक चन्दा जो क्रमशः 25 से 100 डालर तथा मासिक चन्दा 3 से 5 डालर है सालभर में कुल मिलाकर 60 करोड़ डालर होती है, इसी से उनकी सम्पन्नता का पता लग जाता है।

देश के सभी भागों में श्रमिक-संघों की सदस्यता का विवरण असमान है। औद्योगिक क्षेत्रों जैसे पूर्वी भाग, पश्चिमी भाग तथा मिडिल वेस्ट में सदस्यता अधिक विस्तृत है जबकि दक्षिण तथा दक्षिणी-पश्चिमी भाग में श्रमिक संघ बहुत ही कमजोर हैं। इन्टरनेशनल यूनियनों में कुछ सदस्य संख्या सिर्फ 100 या 100 से कम है जैसे इन्टरनेशनल ऐसोसियेशन ऑफ साईड्रोग्राफर्स जबकि यूनाइटेड आटोमोबाइल, यूनाइटेड स्टील वर्कर्स और इन्टरनेशनल ब्रदरहूड ऑफ टीमस्टर्स जैसी संस्थाओं की सदस्य संख्या प्रत्येक में 10 लाख से भी अधिक है। इन बाद वाली तीन संस्थाओं की सदस्य संख्या श्रमिक-संघों की कुल सदस्य संख्या का लगभग 20% भाग है। इसके अलावा 100 छोटी यूनियनों में सदस्यों की संख्या कुल श्रमिक संघों की सदस्य संख्या के 5% के बराबर ही है। इस विषमता का कारण यह है कि जिन उद्योगों में श्रमिकों की जितनी संख्या अधिक है वे उतने ही अधिक संगठित हैं। इनमें हम लौह एवं इस्पात उद्योग, ओटोमोबाइल उद्योग, सड़क यातायात तथा सार्वजनिक उपयोग के उद्योग को सम्मिलित करते हैं।

स्थानीय संघ इस संगठन की बेसिक इकाई है जो एक ही दस्तकारी उद्योग का संगठन हो सकता है और अगर औद्योगिक यूनियन है तो उसमें नियोजित सभी श्रमिक सम्मिलित होते हैं। इन स्थानीय संघों का मुख्य कार्य वर्तमान समय में उसके सदस्यों के लिये कोई सामूहिक सौदा कर अनुबन्ध करना है। इस तरह नियोजकों तथा नियोजितों के श्रम-संघों के बीच अनुबन्ध ही उनको शोषण से सुरक्षित रखता

है। जहां दूसरे देशों में श्रमिकों को अपनी सुरक्षा के लिये सरकारी अधिनियमों की शरण लेनी होती है पर अमेरिका में उनकी सुरक्षा सामूहिक सौदेबाजी में निहित है। स्थानीय संघ तथा नियोजकों के बीच यह समझौता साधारण या विस्तृत व जटिल हो सकता है। इन समझौतों में संघ-प्रबन्ध सम्बन्ध, ठेके की इकाई, यूनियन प्रतिनिधित्व, सुरक्षा, पंच फैसला, नियोजितों का अनुशासन मजदूरी भुगतान, छुट्टी, स्वास्थ्य एवं कारखाने की दशा, समझौते की अवधि आदि सब बातों का समावेश किया जाता है। कभी-कभी श्रमिकों के कल्याण, बेरोजगारी लाभ, अवकाश ग्रहण लाभ आदि के लिये अलग समझौता किया जाता है।

इन श्रम-संघों का किसी न किसी रूप में राजनैतिक उद्देश्यों से सम्बन्ध रहा है। विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी से पूर्व ये संघ उन उम्मीदवारों को सहायता करते जो श्रमिक हितों के प्रति सहानुभूति रखते थे। पर उसके बाद और आज इन श्रमिक संघों में राजनैतिक सक्रियता में वृद्धि हुई है। इस राजनैतिक सक्रियता के बावजूद भी अमेरिका में Labour Party जैसी कोई राजनैतिक दल होने की संभावना नहीं हैं। क्योंकि अधिकांश अमेरिकियों की सामाजिक मनोवृत्ति अब भी व्यक्तिगत (Individualistic) है। पूंजी और श्रम में विरोध तथा अनेक झगड़ों के बावजूद भी श्रमिकों में श्रमिक-संघों में अविश्वास तथा संशय है। जनता में भी इन यूनियनों को मान्यता देने की प्रवृत्ति सिर्फ युद्धों व आर्थिक संकट के समय ही रही है। सामान्य समय में जनता की सहानुभूति श्रमिक-संघों में कभी भी नहीं रही, यहां तक कि वे श्रमिक-संघों की असीम शक्ति की आलोचना करते हैं।

कुछ श्रमिक संघों में भ्रष्टाचार तथा तानाशाही पनपी है। कुछ श्रमिक नेता श्रम-संघों का दुरुपयोग कर राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।

अमेरिका में सरकार श्रमिक-संघों को दूसरे देशों के समान अधिनियमों के बनाते समय प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व का अवसर प्रदान नहीं करती। युद्ध के समय ही श्रमिक-संघों से अधिक सहयोग की कोशिश की जाती है। सरकार के इस रवैये के कारण श्रमिक-संघों की शक्ति अपेक्षाकृत सीमित रही है।

उपर्युक्त विवरण की पृष्ठभूमि में यह कहा जा सकता है कि अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था में श्रमिक-संघ आन्दोलन एक प्रभावी शक्ति रही है जो वहां के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में जागृति उत्पन्न कर सकी है। आज वहां के विशाल श्रमिक संघों जिनमें इन्टरनेशनल यूनियन ऑफ ओटोमोबाइल्स, एयर क्राफ्ट, कृषि यंत्र श्रमिक यूनियन, अन्तर्राष्ट्रीय ब्रदरहुड ऑफ टीमस्टर्स, यूनाइटेड स्टील वर्कर्स आदि प्रत्येक में 10 लाख से भी अधिक सदस्य हैं जबकि यूनाइटेड ब्रदरहूड ऑफ कारपेन्टर्स एण्ड जोइनर्स, इन्टरनेशनल एसोसियेशन ऑफ मेकेनिस्ट्स तथा

यूनाइटेड माइन वर्कर्स में प्रत्येक में 5 लाख से अधिक सदस्य हैं। इनमें से अधिक राष्ट्रीय संघ तो अमेरिकन फेड़रेशन ऑफ लेबर एण्ड कांग्रेस ऑफ इन्डस्ट्रीयल ओरगेनाइजर्स (AFL-CIO) से सम्बद्ध हैं जिसकी सदस्य संख्या अब लगभग 16 लाख हो गई है। इस तरह श्रमिक-संघ आन्दोलन पूंजीवादी राष्ट्र अमेरिका में भी अग्रसर होता जा रहा है और उन्हें न्यायोचित अधिकार तथा आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हुई हैं।

Note—(अमेरिका में उस यूनियन को "इन्टरनेशनल" कहा जाता है जिसके सदस्य कनाडा में भी होते हैं।)

अध्याय **8**

अमेरिका में पूर्ण रोजगार के लिए आर्थिक नियोजन

(Planning for Full Employment in U. S. A.)

आज हम कल्याणकारी तथा पूर्ण रोजगार की नीतियों के युग में रह रहे हैं। प्रत्येक देश में वहां के लोगों का आर्थिक कल्याण तभी सम्भव हो सकता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति एक न्यूनतम रहन-सहन के स्तर को बनाये रखने की क्षमता रखता हो और देश में इस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न हो जावें कि पर्याप्त आय से जीवन स्तर में सुधार तथा उन्नति सम्भव हो। इसके लिए रोजगार वह प्रारम्भिक स्थिति है जिसके विना मनुष्य का जीवन सुखी नहीं बन सकता और सुख एव समृद्धि के विना कल्याण का उद्देश्य निरा स्वप्न रह जाता है। अतः सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, मानवीय आदि सभी दृष्टियों से देश की मानव-शक्ति का समुचित उपयोग महत्वपूर्ण है।

पूर्ण रोजगार का अर्थ

साधारण बोल-चाल में पूर्ण रोजगार (Full Employment) का अर्थ उस स्थिति से लगाया जाता है कि देश में प्रत्येक काम करने योग्य व्यक्ति को सब समय काम मिला होता है। यह अर्थ व्यावहारिक दृष्टि से ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि प्रत्येक देश में हर समय कुछ न कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो काम करने के योग्य होते हुए भी अपनी स्वेच्छा से अथवा संरचनात्मक परिवर्तनों (Structural changes) के कारण काम नहीं करते और न उनको रोजगार पर लगाने का कोई उपाय ही होता है। अतः इसका अर्थ है कि काम करने के इच्छुक व्यक्तियों को अगर उचित मजदूरी पर अविलम्ब रोजगार मिल जाता है तो उसे पूर्ण रोजगार कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने कहा है "पूर्ण रोजगार का अर्थ यह नहीं होता कि सब श्रमिकों को सब समय काम मिले। इस विचार में स्वयं बेकार रहने की प्रवृत्ति तथा संघर्षण बेकारी का होना स्वाभाविक रूप से निहित है।"

आज प्रत्येक देश में राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति एवं स्थायित्व के लिए देश की समस्त कार्यशील जनसंख्या के लिए यथासम्भव पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करना सरकार का नैतिक दायित्व है। युद्धकालीन अर्थव्यवस्था में तो पूर्ण रोजगार की स्थिति सामान्य रूप से उत्पन्न हो जाती है किन्तु शान्तिकालीन अर्थ-व्यवस्था में पूर्ण रोजगार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार की अर्थव्यवस्था में फेर-बदल एवं हस्तक्षेप की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। समाजवादी देशों में राज्य का उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण होने से उद्देश्य की पूर्ति में सुगमता होती है पर पूंजीवादी राष्ट्रों में जहां मंदी और तेजी सामान्य हैं तथा राज्य का अर्थव्यवस्था में सीमित हस्तक्षेप होता है, पूर्ण रोजगार के उद्देश्य का प्राप्त करना कठिनाइयों से परिपूर्ण है।

अमेरिका की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को 1930 की विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी ने झकझोर कर जब अस्त-व्यस्त कर दिया, बेकारी के ताण्डव नृत्य, गिरते उत्पादन तथा राजनैतिक उथल-पुथल में आर्थिक नियोजन तथा राज्य हस्तक्षेप का मजाक उड़ाने वाले पूंजीवादी राष्ट्र आर्थिक नियोजन के हामी होने लगे, तव द्वितीय विश्व-युद्ध ने इस हस्तक्षेप की नीति को और अधिक सुदृढ़ बनाया। द्वितीय विश्वयुद्ध काल में अमेरिकी अर्थव्यवस्था में बहुत तेजी से विस्तार हुआ तथा युद्ध जीतने के लिए आर्थिक नियोजन का बहुत सहारा लिया गया। यह व्यवस्था युद्ध समाप्ति के बाद भी चालू रही क्योंकि युद्ध के बाद बेकारी बढ़ने की बहुत सम्भावना थी।

पूर्ण रोजगार के लिये आर्थिक नियोजन

अमेरिकी सरकार तथा प्रशासन को युद्धोत्तर काल में सम्भावित बेकारी का मुकाबला करने के लिए युद्धकालीन नियोजन को लागू रखा तथा बेकारी की समस्या के समाधान के लिए अनेक वैधानिक उपचारों की व्यवस्था की गई। कांग्रेस की स्टॉफ कमेटियों में सम्भावित बेकारी की अवधि, भार तथा उपचारों के लिए विस्तृत अध्ययन किया गया और तदनुसार 1945 में पूर्ण रोजगार अधिनियम (Full Employment Act) बनाया गया जिसमें बेरोजगारी का बड़े पैमाने पर मुकाबला करने के उपचारों की व्यवस्था की। यह अधिनियम उस समय कार्यान्वित न किया जा सका। अतः 1946 में नया रोजगार अधिनियम (Employment Act–1946 पारित हुआ। युद्धोत्तर काल में यह महत्वपूर्ण विधान था। अतः Prof. G. Soule ने इसे "अमेरिकी अर्थव्यवस्था में द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद अमेरिकी सरकार का महत्वपूर्ण आर्थिक आविष्कार है" की संज्ञा दी है। यह अप्रत्यक्ष रूप में अमेरिकी अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। इस अधिनियम का उद्देश्य अमेरिकी अर्थव्यवस्था को मंदी तथा तेजी के दुष्प्रभावों से बचा कर प्रगति तथा स्थायित्व की ओर अग्रसर करना था।

अधिनियम के अनुसार अधिकतम रोजगार, उत्पादन तथा क्रय-शक्ति की वृद्धि (To promote maximum employment, production and purchasing power) संघ सरकार का उत्तरदायित्व हो गया तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आवश्यक वैधानिक तन्त्र की व्यवस्था की गई है।

इस अधिनियम में नीति की घोषणा इस प्रकार है—"यह संघीय सरकार की नियमित नीति और उत्तरदायित्व है कि वह अपनी आवश्यकताओं तथा दायित्वों एवं अन्य राष्ट्रीय नीतियों को निभाने में कृषि, उद्योग, श्रमिक, राज्य, स्थानीय प्रशासन की आवश्यक सहायता तथा सहयोग लेकर उनका समन्वय करे। अपने सब कार्यों, योजनाओं और साधनों का उपयोग प्रतियोगी उपक्रमों तथा सामान्य कल्याण कार्यों के निर्माण, स्थायित्व को विकसित तथा बढ़ाने में करे जिससे स्वयं रोजगार या काम की तलाश करने वालों को लाभप्रद रोजगार के अवसर प्रदान किये जा सकें और अधिकतम रोजगार, उत्पादन तथा क्रय-शक्ति सम्भव हो सके।"

इस विस्तृत घोषणा से स्पष्ट है कि अमेरिकी संघ सरकार ने अपने परम्परावादी, पूंजीवादी, अर्थतंत्र में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक साहस को बनाये रखते हुए उन दशाओं का सृजन तथा वृद्धि करना है जिससे अधिक रोजगार, अधिक उत्पादन तथा अधिक क्रय-शक्ति के अवसरों में वृद्धि करने का उत्तरदायित्व अपने पर लिया है।

नियोजन की पद्धति
(System of Planning)

इस अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रपति को एक आर्थिक सलाहकार परिषद् (Council of Economic Advisers) की स्थापना का अधिकार दिया गया। इस परिषद् में उच्च कोटि के योग्य आर्थिक विशेषज्ञों को सम्मिलित किया गया है। यह परिषद् प्रति वर्ष जनवरी में कांग्रेस को आर्थिक प्रतिवेदन (Economic Report) प्रस्तुत करती है जिसमें तात्कालिक आर्थिक स्थिति का विस्तृत विवरण देते हुए, अगर आवश्यक हुआ तो सुधारों (Correctives) की सिफारिश करती है। कांग्रेस के दोनों सदनों में राष्ट्रपति के आर्थिक प्रतिवेदन पर Standing Joint Commettee की व्यवस्था है जो प्रतिवेदन के गहन अध्ययन के बाद कांग्रेस को फिर अपनी रिपोर्ट देती है और आवश्यक हुआ तो सुधार के लिए आवश्यक अधिनियम पारित किया जाता है। राष्ट्रपति की आर्थिक सलाहकार परिषद् के सदस्य विशेषज्ञों को उद्योग, कृषि, श्रम, राज्य तथा स्वायत्त संस्थाओं या अन्य किसी व्यक्ति या संस्था से विचार-विमर्श (Consultation) की स्वतन्त्रता होती है।

प्रो० हेन्सन के अनुसार राष्ट्रपति का आर्थिक प्रतिवेदन (President's Economic Report) तथा इस प्रतिवेदन पर जोइन्ट कमेटी की रिपोर्ट दोनों आर्थिक

नियोजन के लिए महत्वपूर्ण आर्थिक प्रलेख (Documents) हैं। एक रूप में राष्ट्रपति का यह आर्थिक प्रतिवेदन अमेरिका की आर्थिक कार्य-क्रम प्रणाली (Methodology of Economic Programming) की पाठ्य-पुस्तक है। राष्ट्रपति पर इस अधिनियम के अन्तर्गत रोजगार, उत्पादन तथा क्रय-शक्ति स्तर के सम्बन्ध में लक्ष्य निर्धारित करने तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक कार्य-क्रम देने की जिम्मेदारी होती है।

इस अधिनियम (Employment Act–1946 को कार्यान्वित करने का श्रेय सर्वप्रथम राष्ट्रपति ट्रूमन (Truman) को दिया गया है जिन्होंने डेमोक्रेटिक प्रशासन में इसे लागू किया। उस समय अमेरिकी कांग्रेस में अल्प मत रिपब्लिकन पार्टी, जो कि पूर्ण रोजगार के लिए आर्थिक क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप के बिल्कुल विरुद्ध थी, अधिनियम का अधिक विरोध न किया। यहां तक कि जब राष्ट्रपति ट्रूमन के बाद रिपब्लिकन पार्टी के श्री आइजन होवर ने सत्ता सम्हाली तो उन्होंने इस अधिनियम को आर्थिक स्थायित्व तथा प्रगति के लिए पूर्ण समर्थन देकर, इसे कार्यान्वित करने का दृढ़ निश्चय किया। विभिन्न राष्ट्रपतियों के आर्थिक प्रतिवेदनों (Economic Reports) के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस अधिनियम का कार्यान्वियन देश में मंदी तथा तेजी के दुष्प्रभावों को दूर करने तथा आर्थिक स्थायित्व और विकास के लिए किया गया है। यही कारण है कि 1946 के बाद मुद्रा स्फीति (Inflationary trends) तथा 1953–54 और 1957–58 की आर्थिक सुस्ती (Economic Recession) पर नियन्त्रण कर, वर्तमान समृद्धि तथा सम्पन्नता को प्राप्त करने में सफल हुआ है। इस अधिनियम को लागू करने के बाद कोई बड़ा अवसाद, सुस्ती तथा भयावह तेजी नहीं आई है। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं:—

(1) **प्रतिस्पर्द्धात्मक साहस का विकास**—इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने प्रतिस्पर्द्धात्मक साहस पद्धति (Competitive Enterprise System) का विकास किया है। युद्धोत्तर काल में नये व्यवसाइयों की तीव्र गति से वृद्धि हुई है। न केवल व्यक्तिगत छोटी इकाइयों का विस्तार ही हुआ है बल्कि उत्पादन की नई इकाइयां तथा प्रक्रिया का भी विस्तार हुआ है।

(2) **आर्थिक सुरक्षा तथा समृद्धि में वृद्धि**—अमेरिकी जनता की समृद्धि, संस्कृति तथा आर्थिक सुरक्षा में Employment Act–1946 का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके कार्यान्वित करने से वृद्धावस्था, मृत्यु, बीमारी तथा बेकारी की संकटकालीन परिस्थितियों में आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए निजी तथा सार्वजनिक बीमा पद्धतियों का विकास किया गया है। संघ सरकार के बेकारी बीमा क्षेत्र का विस्तार 1946 के अधिनियम से बहुत अधिक हो गया है।

(3) **रोजगार में वृद्धि**—व्यक्तिगत आय तथा वित्तीय सुरक्षा की दृष्टि से रोजगार में वृद्धि, काम तथा काम के अवसरों में वृद्धि को सुदृढ़ किया गया है। आइ-जन होवर, केनेडी, जॉनसन आदि राष्ट्रपतियों ने वेकारी को समाज का वहुत बड़ा शत्रु तथा बुराई माना था। तदनुसार निक्सन भी वेकारी की समस्या के समाधान के लिए कृत संकल्प हैं।

वेरोजगारों की दर में निरन्तर कमी हो रही है। जहां पहले यह दर 6 से 8 प्रतिशत थी अब 1964 में यह संख्या 4·9% थी। गैर सैनिक श्रम-शक्ति में पिछले कुछ वर्षों में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। 1964 में यह संख्या 7·62 करोड़ थी उसमें 7·24 करोड़ व्यक्ति रोजगार में लगे हुए थे। इसके अलावा 5·2 करोड़ रोजगार योग्य जनसंख्या में 90 लाख को पूर्ण रोजगार प्राप्त नहीं था।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 1946 का रोजगार अधिनियम (Employment Act–1946) एक प्रकार से प्रतिस्पर्द्धात्मक प्रणाली में साधनों का नियोजन है जिसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा पूंजीवादी अर्थतन्त्र के अन्तर्गत महत्वपूर्ण सामूहिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। यह नवीन तथा अनअपेक्षित संकटों से मुक्ति के लिए नीति निर्धारण में मार्ग दर्शन करता है। राष्ट्रपति के 1961 के आर्थिक प्रतिवेदन में इस अधिनियम के लागू होने में 6 लाभ बताये—

(1) **अर्थव्यवस्था पर पूर्ण नजर**—आर्थिक सलाहकार परिषद् द्वारा अर्थ-व्यवस्था पर पूरी नजर रखने से विकास तथा स्थायित्व पर प्रशासन तथा अधिनियमों का प्रभाव तथा वास्तविकता का पता लग जाता है। इसमें विस्तृत अध्ययन से बुद्धि-मत्तापूर्ण नीति का कार्यान्वयन सम्भव होता है।

(2) **मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण**—कोरिया युद्ध तथा उसके बाद मुद्रा स्फीति पर प्रभावी नियन्त्रण सम्भव हुआ। यद्यपि युद्धोत्तर काल में उत्पन्न मुद्रा स्फीति पर वहुत समय तक नियन्त्रण कठिन रहा।

(3) **उद्देश्यों में समन्वय**—इस अधिनियम ने अमेरिकी जनता को यह पाठ पढ़ाया है कि दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन उद्देश्यों, निजी तथा सामाजिक उद्देश्यों, मालिकों तथा मजदूरों के पारस्परिक उद्देश्यों में समन्वय होने पर ही सन्तुलित एवं तीव्र विकास सम्भव है।

(4) **सबका सहयोग**—अर्थव्यवस्था का सन्तुलित विकास सिर्फ सरकार से ही सम्भव नहीं। उसमें निजी व्यक्ति, संस्थाओं, राज्य सरकारों, स्वायत्त सरकारों आदि सभी का सहयोग आवश्यक है।

(5) **प्रशासन तथा नीति में संरचना**—नई चुनौतियों तथा नवीन परिस्थि-तियों के अनुकूल नीतियों का निर्माण तथा प्रशासनिक परिवर्तन अर्थव्यवस्था के सफल

नियन्त्रण तथा विकास के लिए आवश्यक है। इस सम्बन्ध में रोजगार अधिनियम में पर्याप्त व्यवस्था तथा मार्गदर्शन है।

(6) **दृढ़ विश्वास का आधार**—अमेरिकी जनसंख्या में, अधिनियम के लागू होने के बाद, तीव्र गति से वृद्धि हुई है पर साथ-साथ उत्पादन में भी तीव्र वृद्धि हुई है। भविष्य में विकास तथा प्रगति के लिए दृढ़ विश्वास का आधार भूतकालीन नीतियाँ ही रहती हैं। 1946 के बाद में अर्थव्यवस्था में स्थायित्व और प्रगति का जो रुख रहा है वह भविष्य में प्रेरणास्पद है।

इसके अलावा श्रमिकों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था में वृद्धि हुई है। इसके अलावा व्यवसायियों, निजी व्यापारियों, फर्मों तथा श्रमिक संगठनों के लिए प्रशिक्षण कार्य-क्रमों में वृद्धि की गई है। अनुसन्धान तथा विकास कार्यों में अदृश्य पूंजी का सृजन हुआ है जिसका अधिकाधिक व्यय भार सरकार द्वारा उठाया जाकर निजी साहसियों को लाभान्वित किया गया है। व्यवसायों के प्रबन्ध तथा कुशलता में वृद्धि होने से प्रोद्यौगिक तथा आविष्कार के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात हुआ है।

रोजगार नीति की आलोचना

कुछ आलोचकों द्वारा यह संकेत दिया जाता है कि अप्रत्यक्ष नियन्त्रण की इस पद्धति को आर्थिक नियोजन कहना भ्रमात्मक है इससे कोई लाभ नहीं है। सरकार तथा निजी व्यक्तियों में सहयोग आंशिक ही होता है।

युद्धोत्तर काल में भयंकर मुद्रा स्फीति, 1953–54 तथा 1957–58 में अर्थ-व्यवस्था में सुस्ती (Recession), पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अवसाद और तेजी के चिन्ह, भावी भयंकर आर्थिक मंदी और पूंजीवाद के पतन को संकेत करते हैं।

बेरोजगारी में वृद्धि तथा बेरोजगारी की औसत अवधि में वृद्धि होना इस नीति की असफलता को प्रकट करती है। 30 लाख बेकार सामान्य स्थिति में हैं। जो कुछ सुधार बेरोजगारी की समस्या के समाधान में हो सका है वह मुख्य रूप से शीत युद्ध तथा युद्ध के भय से सैनिक शक्ति में वृद्धि से हुआ है। 6 में से एक अमेरिकी को सैनिक क्षेत्र में रोजगार मिलता है। बेकारी का 5% दर भी अधिक है जबकि नियोजन प्रधान देशों में बेकारी का पूर्ण समापन हो गया है यहां तक कि उन्हें श्रम-शक्ति की कमी महसूस हो रही है।

आर्थिक असमानता में भी वृद्धि हुई। गरीब तथा अमीर की खाई बढ़ती जा रही है।

पूर्ण रोजगार के लिए आर्थिक नियोजन का मूल्यांकन
(Evolution of Econ. Planning for full Employment)

अमेरिका में युद्धोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था में सम्भावित मुद्रा विस्फीति तथा बेकारी का मुकाबला करने के लिए रोजगार अधिनियम के रूप में प्रतिस्पर्द्धात्मक

अर्थव्यवस्था में जो आर्थिक नियोजन की नीति का अनुसरण किया गया, उससे वास्तव में अमेरिकी अर्थव्यवस्था में तेजी और मंदी के दुष्प्रभावों को दूर कर आर्थिक स्थायित्व और विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है। बेरोजगारी का प्रतिशत 6–8% से घट कर अब लगभग 4·5 प्रतिशत ही रह गया है। 1946 के बाद आर्थिक समृद्धि तथा सम्पन्नता में आशातीत वृद्धि हुई है। अधिकतम उत्पादन, रोजगार तथा क्रय-शक्ति का उद्देश्य बहुत कुछ पूरा हुआ है। पर इस सम्पन्नता की आड़ में हम 30 लाख लोगों की बेरोजगारी को नजर अन्दाज नहीं कर सकते। 1953–54 तथा 1957–58 की आर्थिक सुस्ती (Recession), बड़े आर्थिक अवसाद (Depression) का संकेत देते हैं। देश में जनसंख्या 25–27 लाख प्रति वर्ष बढ़ रही है। यह तो गनीमत है कि शीत युद्ध तथा विश्व-युद्ध के भय से शस्त्रों की दौड़ में 6 अमेरिकियों में एक फौज में खप जाता है। पर उद्योगों में बढ़ती हुई स्वचालितता (Automation) निःशस्त्रीकरण, वियतनाम में शान्ति स्थापना के प्रयत्न, बेकारी की औसत अवधि में वृद्धि अन्धकार-मय स्थिति की ओर संकेत करते हैं तथा सरकार के द्वारा यह अप्रत्यक्ष नियन्त्रण की नियोजन पद्धति असफल होगी। अभी भी बहुत से अमेरिकियों को यह सन्देह है कि क्या यह अधिनियम अमेरिका को बड़ी आर्थिक मंदी में छिन्न-भिन्न होने से बचा सकेगा? प्रो० हेन्सन ने इस अधिनियम के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—"अभी हमें वास्तविक परीक्षा से गुजरना है। यह परीक्षा तब होगी जब स्थायी पूंजी विनियोग-प्लान्ट साज-सामान, निर्माण तथा भवन-निर्माण आदि की कुल मात्रा में भारी कमी आजाय।"

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यही कहा जा सकता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में इससे बेहतर आर्थिक नियोजन की और कोई पद्धति सम्भव नहीं है। यह एक अच्छी शुरूआत मानी जानी चाहिए कि कम से कम इस शुरूआत से अमेरिका अपनी अर्थव्यवस्था में 1930 की जैसी मंदी की पुनरावृत्ति तो न होने देगा। चाहे यह पद्धति मंदी तथा तेजी के इन व्यापार-चक्रों को बिल्कुल समाप्त न कर सके पर इनके दुष्परिणामों को बहुत कुछ कम करने में समर्थ होगा। बेरोजगारी पर नियन्त्रण करना सफलता की ओर अग्रसर करेगा। अन्ततः इस प्रारम्भिक नियोजन से भावी कठोर नियन्त्रण का मार्ग प्रशस्त होगा।

———

भाग-3
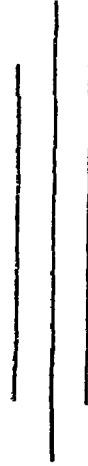
जापान के आर्थिक विकास के युग-प्रवर्तक-चिन्ह

अध्याय 1

मेजी पुनर्संस्थापन काल में जापान की अर्थव्यवस्था का विकास

(Development of Japanese Economy During Meiji Restoration)

भूमिका (ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि)

आज औद्योगिक प्रगति तथा आर्थिक समृद्धि का दंभ भरने वाले जापान के विकास का समारम्भ 14 जुलाई 1953 से होता है जबकि अमेरिका की जल सेना का एक नाविक पेरी (Perry) टोकियो से तीस मील दक्षिण कुरिहामा नामक स्थान पर उतरा। 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही सामन्त तथा शोगुन (Shogun) शासन में विदेशियों के प्रति भय व्याप्त होने से उनसे अलगाव (पृथकता) के लिये अनेक प्रतिवन्ध लगाये गये ताकि जापान में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव न पड़े। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि 1853 से पूर्व जापान रेशम के कीड़े की तरह एकान्तवास कर रहा था और पेरी के प्रथम आगमन पर शोगुन शासन दुर्भेद्य ही प्रतीत होता था। 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही तोकुगावा शासन की पृथकत्व (Seclusion) की आधारभूत नीति को बनाये रखना कठिन होगया था क्योंकि अंग्रेजी, रूसी तथा अमेरिकी सभी जापान से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने को आतुर थे। 1854 में जब पेरी का दूसरी बार सुरगा की खाड़ी (Surga Bay) में आगमन हुआ तो वह बिना व्यापारिक समझौता किये लौटने को तैयार न था और इस समझौते से जापान की पृथकत्व की नीति में एक दरार पड़ गई और तोकुगावा शासन का पतन प्रारम्भ हुआ। 1858 में जापान शासकों को फ्रेंच ब्रिटिश तथा अन्य राष्ट्रों के साथ समझौते से पांच बन्दरगाह विदेशियों से व्यापार के लिये खोल दिये गये। इसके साथ संधियों में प्रादेशिक अधिकार भी दिये गये। 1863 और 1864 में कागोशिमा (Kagoshima) तथा शिमोनेस्की (Shimonoseki) में पश्चिमी देशों की बमबाजी से उनकी विशाल शक्ति का परिचय मिला जिसमें शोगुन शासन बिल्कुल असहाय तथा दया का पात्र बन गया। इस प्रकार तोकुगावा शासन

की त्रुटियों का पर्दाफाश हुआ और देश में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ।

तोकुगावा शासन के पतन में देश के आन्तरिक कारण भी महत्वपूर्ण थे। केवल वाह्य कारणों को ही तोकुगावा शासन के पतन के लिये उत्तरदायी मानना उपयुक्त नहीं होगा क्योंकि शोगुन शासन की नींव देश में आन्तरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक परिवर्तनों के कारण खोखली हो गई थी और उस समूचे ढांचे को धराशायी करने के लिये विदेशी आक्रमण के एक झटके की ही आवश्यकता थी। वाह्य कारणों ने तोकुगावा शासन के पतन और परिवर्तनों का सृजन नहीं किया वल्कि उन्हें गति प्रदान की। पतन और परिवर्तनों के लिये कारण तो जापान की आन्तरिक व्यवस्था में पहले से ही विद्यमान थे। इस तथ्य के सहयोग में जे वी. सोसम (J. B. Sausom के अनुसार—"इस तरह पतन तथा परिवर्तनों के द्वार, वाह्य आह्वान पर नहीं वल्कि आन्तरिक विस्फोट के कारण खुले।" इस सम्वन्ध में ग्रिफ्स (Griffs) का निम्न कथन उल्लेखनीय है[1]—

"विदेशी तथा विदेशी विचार सामन्तशाही शासन के विनाश के कारण न होकर, अवसर-दाता थे। उनकी उपस्थिति ने भावी घटनाओं को गति प्रदान की। जापान में तत्कालीन शानदार परिवर्तनों के वास्तविक कारण आन्तरिक थे न कि वाह्य, भावना से प्रेरित थे न कि प्रभाव से।"

उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तोकुगावा शासन के पतन तथा परिवर्तनों के लिये आन्तरिक कारण अधिक उत्तरदायी थे। इन आन्तरिक कारणों का वर्गीकरण हम धार्मिक, बौद्धिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

(1) **धार्मिक तथा बौद्धिक कारण**—तोकुगावा इयासू (Iyeyasu 1603–16) ने जापान में बौद्ध धर्म को राष्ट्रीय धर्म बनाया और अतीत के गौरव के प्रति आस्था को हतोत्साहित किया। किन्तु मिंग वंश के पतन के बाद बहुत से चीनी विद्वानों ने जापान में आकर बौद्धिक चेतना तथा जागरण का सृजन कर उन्होंने जापानियों को जापान के प्राचीन वैभव से अवगत कराया और उनमें नयी बौद्धिक चेतना जागृत की। इससे सम्राट के प्रति श्रद्धा तथा तोकुगावा शासन के विरुद्ध घृणा का वातावरण तैयार हुआ। इसमें जापान के शिंतो (Shinto) धर्म का सक्रिय योगदान रहा। 19वीं शताब्दी के मध्य में शिन्तो धर्म का, जो सम्राट को ईश्वर तुल्य, जापानियों की देवताओं से उत्पत्ति और इस प्रतिष्ठित उत्पत्ति के रूप में उनमें विचित्र

1. W. E Griffs—The Micado's Empire Vol. 1 p.p. 192, 193.

गुणों का भंडार मानता था, पुनरुत्थान होने लगा। जापानी विद्वानों ने शिन्तो धर्म की महानता और तोकुगावा शासन के ढ़ोंग को जनता के सामने निर्दयता पूर्वक स्पष्ट कर शोगुन के विरुद्ध असन्तोष की ज्वाला भड़का दी।

(2) **राजनैतिक कारण**—तोकुगावा शासन की पृथकत्व की नीति ने कुछ प्रगतिशील और आधुनिक विचार रखने वाले सामन्तों में विरोध उत्पन्न किया। क्यूशू के शशूमा सामन्तों (The Lord of Satsuma in Kyushu) ने विदेशी प्रभावों का स्वागत करने के लिए न केवल यूरोपीय व चीनी व्यापारियों से गुप्त व्यापारिक समझौते ही किए वल्कि पश्चिमी राष्ट्रों की समृद्धि के उत्तरदायी क्रियात्मक विज्ञानों के अध्ययन के लिए जापानी विद्वानों को प्रोत्साहित किया तथा बहुत से सेमुराई केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के विरुद्ध पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन के लिए चुपके से जापान छोड़कर विदेशों में चले गये। इन सब प्रयत्नों से जापान में तोकुगावा शासन के विरुद्ध राजनैतिक विरोध बढ़ता गया। जापान के वौद्धिक वर्ग में, पश्चिमी राष्ट्रों की भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक सर्वश्रेष्ठता के ज्ञान ने, उन्हें जापान की शासन-व्यवस्था की तत्कालीन प्रणालियों का आलोचक बना दिया और वे उन खतरों के प्रति सशंकित हो उठे जो पश्चिमी राष्ट्रों की बढ़ती हुई शक्ति से जापान को प्रभावित कर सकते थे।

(3) **सामाजिक कारण**—तोकुगावा शासन के पतन तथा मेजी शासन के पुनर्संस्थापन में सामाजिक कारण भी महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। सामन्तवादी तत्वों का पतन होने लगा। डायमियो की वित्तीय स्थिति विगड़ने से उनके मातहत कार्य करने वाले सेमुराइयों को वड़ी मात्रा में हटाया गया तथा बड़ी मात्रा में पत्र मुद्रा जारी की गई। समाज में क्षोभ उत्पन्न हुआ और व्यक्तिगत सम्बन्धों पर आधारित प्राचीन सामाजिक शृंखला अस्त-व्यस्त होने लगी। पुश्तैनी नौकर रखने की प्रणाली का त्याग कर दिया गया और इस प्रकार सेमुराई परिवार और उनके नौकरों के परिवार के बीच पहले जो दृढ़ वैयक्तिक सम्बन्ध थे, नष्ट हो गए। इन परिवर्तनों से तोकुगावा समाज के पदों और कर्त्तव्य का स्पष्ट अन्तर धुन्धला हो गया। तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाने वाले व्यापारियों का सम्मान वढ़ने लगा। खेतिहारों पर सामन्तशाही का प्रभाव समाप्त होने लगा। संक्षेप में यह कहना पर्याप्त है कि 'व्यक्तिगत सम्वन्धों की सम्पूर्ण प्रणाली जिस पर कि समाज की पुरानी प्रणाली आधारित थी, छिन्न भिन्न हो रही थी।'

(4) **आर्थिक कारण**—तोकुगावा शासन के पतन तथा मेजी पुनर्संस्थापन का सवसे महत्वपूर्ण आन्तरिक कारण आर्थिक अस्त-व्यस्तता थी। शोगुन शासन में निरंकुश राज्य सत्ता से प्रशासन में व्यभिचार और धृष्टता बढ़ी, कार्य-कुशलता में कमी हुई। सामन्तों को ही शासन पद मिलने से अयोग्य प्रशासक नियुक्त हुए और योग्य नागरिकों को वंचित रखा गया। वित्तीय संकटों के कारण नये करों की भरमार

से कर-भार कष्टमय और असह्य हो गया। किसानों तथा व्यापारियों में कर-भार वृद्धि से क्षोभ बढ़ा। घोर वित्तीय संकटों का सामना करने के लिए शोगुन शासन द्वारा कई बार जापानी मुद्रा का अपकर्षण (Debasement) करने से 19वीं शताब्दी के मध्य तक उसकी क्रय-शक्ति 1661 की क्रय-शक्ति की केवल 1/8 रह गई। देश में खोटे सिक्कों के चलन, बढ़ते हुए मूल्य स्तर और घटती हुई क्रय-शक्ति से जनता में घोर असन्तोष फैल गया।

सामन्तवादी समाज के ध्वंस से उत्पन्न आर्थिक परिस्थितियों ने आग में घी का कार्य किया। डाइमियो के आर्थिक संकट से सेमुराइयों का अपदस्थ होना तथा निम्न वर्गीय सेमुराइयों की निर्धनता डाइमियो की ऋण-ग्रस्तता से व्यापारी वर्ग की समृद्धि शक्ति और प्रभाव में वृद्धि से शोगुन का अस्तित्व खतरे में पड़ गया क्योंकि जिन संस्थाओं, डाइमियों, सेमुराइयों पर शोगुन अपनी आय प्राप्त करने तथा शासन के लिए निर्भर था वे स्वय पतनोन्मुख थी।

18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से जापान में भूकम्प, अकाल और अनेक प्राकृतिक प्रकोपों की शृंखला ने जापान की अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने में योग दिया। जनसंख्या की कमी होने लगी। शोगुन शासन द्वारा बाह्य आक्रमणों के खतरे से देश की सुरक्षा—व्यवस्था को सवल बनाने के लिए अत्यधिक व्यय से अर्थव्यवस्था पर वित्तीय भार बढ़ा।

इस प्रकार आर्थिक कारणों में हम शासन में भ्रष्टाचार एवं अकुशलता, बढ़ता हुआ कर-भार, मुद्रा के अपकर्षण से मुद्रा प्रसार, सामन्तवादी समाज के ध्वंस होने से आर्थिक संकट, प्राकृतिक प्रकोपों की भरमार तथा बाहय आक्रमणों से सुरक्षा व्यवस्था पर भारी व्यय आदि का समावेश करते हैं।

इस प्रकार 1854 तक देश में धार्मिक, बौद्धिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से तोकुगावा शासन को विपरीत परिस्थितियों तथा प्रतिकूल भाग्य के परिणामस्वरूप पृथकत्व की नीति का परित्याग करने को बाध्य होना पड़ा। नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन की प्रक्रिया में भी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था पर अत्यधिक दबाव से शोगुन को दोष का भागी बनना पड़ा। इससे स्पष्ट है कि शोगुन को दो तरफा कुख्याति मिली—एक ओर समाज में व्याप्त शासन-व्यवस्था और आर्थिक बुराइयों के लिए तो दूसरी ओर उन दोषों को दूर करने के लिए उठाये गये कार्यक्रमों से। बढ़ते हुए क्षोभ और असन्तोष के दावानल में शासन की प्रत्येक गति-विधि पर अविश्वास और सन्देह की भावनाओं मे शोगुन को पदच्युत करने का ही एक मात्र मार्ग दिखाई देने लगा। राष्ट्र को एक साहसी तथा दृढ़ नेतृत्व की आवश्यकता सर्वत्र महसूस की जाने लगी। अत: अन्तत: सेमुराई वर्ग के एक छोटे समूह के नेतृत्व में क्षोभ पीड़ित लोग सम्राट के नाम पर शोगुन के विरुद्ध आगे बढ़े और

1868 में तोकुगावा घराने (Tokugawa Regime) का अन्त हुआ।

1868 ई० में जापान में तोकुगावा घराने के अन्त से उनके द्वारा 18वीं और 19वीं शताब्दी में बनाये रखा गया सामन्तवादी ढाँचा भी समाप्त हो गया। तोकुगावा घराने के पतन से अब उनका प्रभाव समाप्त होने लगा और उन सरदारों तथा सैनिक सचिवों की कोई पूछ न रही जिनका तोकुगावा शासन काल में बोलवाला था।

(मेजी पुनर्संस्थापन 1868)
(The Meiji Restoration of 1868)

1868 में तोकुगावा घराने का अन्त हुआ और उसी वर्ष सम्राट केयो (Kei-o) की मृत्यु हुई और उसका 16 वर्षीय उत्तराधिकारी मेजी सम्राट की गद्दी पर बैठा। इस प्रकार जापान के इतिहास में 1868 ई० का मेजी पुनर्संस्थापन (The Meiji Restoration of 1868) एक महान घटना सिद्ध हुई जिसमें 800 वर्षों के बाद जापानी सम्राट को राजसिंहासन पर पुन. आरूढ़ होने का सौभाग्य मिला और टोकियो शक्ति एवं सम्मान का केन्द्र बना। इस महान ऐतिहासिक घटना ने जापान के सदियों के एकान्तवास को समाप्त कर आधुनिक जापान के जीवन का शुभारम्भ किया तथा पश्चिमी प्रभावों के लिए उसके द्वार हमेशा के लिए खोलकर आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था की नींव डाली। मेजी के शासन काल में ही जापान के भावी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

मेजी पुनर्संस्थापन और पश्चिमी देशों तथा अमेरिका से आर्थिक तथा राजनैतिक सम्बन्धों का अर्थव्यवस्था पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। यहां तक कहा जाता है कि मेजी पुनर्संस्थापन ने जापान में सदियों की एकत्र शक्ति के प्रवाह को खोल दिया।

"The Meiji Restoration was like the bursting of a dam behind which had accumulated the energies and forces of centuries)

पुनर्संस्थापन के बाद केन्द्रीय शासन की बागडोर प्रत्यक्ष रूप से सम्राट के हाथ में आगई और प्रशासन का कार्य सत्सुमा (Satsuma), चोश (Choshu), टोसा (Tosa) और हिज़ेन (Hizen) आदि कुलों के उन शक्तिशाली नेताओं के हाथ में था जिन्होंने तोकुगावा विरोधी विद्रोह का नेतृत्व किया था। सेमुराइयों की जिन्होंने शोगुन का समर्थन किया था शक्ति छिन गई और उनमें विद्रोह फैला जो 1870 में खुलकर सामने आया एवं शांत कर दिया गया। राज्य नियन्त्रण करने वालों में एक मत न होने से 1874 में सागा (Saga) कुल में और 1877 में अधिक गम्भीर सत्सुमा (Satsuma) विद्रोह हुए। ये विद्रोह दम तोड़ती हुई सामन्तशाही के अन्तिम अवशेष थे। इनके दमन से ही जापान की राजनैतिक-क्रान्ति पूर्ण हुई तथा सम्पूर्ण देश का एकीकरण सम्भव हो सका।

विकास की प्रक्रिया का प्रारम्भ
(Begining of the Process of Development)

नये शासन ने अनुभव किया कि जापान की सैनिक कमजोरी और उसका आर्थिक पिछड़ापन, उसे पश्चिमी शक्तियों के लिये सहज ही लूट का सामान बना सकते हैं। इस समय विदेशों के पराक्रम की प्रशंसा मिश्रित भय अनेक जापानियों के मन में समाया हुआ था और वे सोचने लगे थे कि पश्चिमी सामग्री से सुसज्जित होकर ही जापान आक्रमणों का शिकार होने की अपेक्षा आक्रान्ताओं की श्रेणी में आ सकता है। अतः नये शासन के लिये प्रतिरक्षा एक महत्वपूर्ण कार्य हो गया और उसने यह निर्णय लिया कि युद्ध और उद्योग में पश्चिमी प्रणालियों को शीघ्रता से अपनाने में ही जापान अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर सकता है तथा असमान संधियों का निराकरण कर सकता है। तदनुसार पुनर्संस्थापन के बाद जापानी नेताओं ने "समृद्ध राष्ट्र; सुदृढ़ सेना" का नारा बुलन्द किया क्योंकि वे जानते थे कि जापान का भविष्य (1) सैनिक शक्ति में वृद्धि तथा (2) देश का द्रुत गति से आर्थिक विकास, पर ही निर्भर करता है—"मेजी काल का नारा, जिससे नये जापान के निर्माण के लिये प्रबुद्ध विचारकों को प्रोत्साहन मिला, वह था "फु कोकु–केया–हे" "समृद्ध राष्ट्र; सुदृढ़ सेना।"

जापान निवासी मेजी पुनर्संस्थापन के समय 'समृद्ध राष्ट्र; सुदृढ़ सेना' (Rich Nation; Strong Army) के नारे से प्रेरित होकर यह अनुभव करने लगे थे कि पश्चिमी भौतिक साधनों के अपनाने से जापान स्वयं एक प्रधान राष्ट्र बन सकता है। जापान में आधुनिकीकरण का नेतृत्व मार्क्स के सर्वहारा वर्ग से न मिलकर जापान के पुराने निम्न वर्गीय समृद्ध वर्ग (Lower Starta of the aristocracy of old Japan) से मिला। नये प्रशासन में पहले सेमुराई वर्ग को कार्यभार सौंपा गया जिन्होंने बाद में चलकर व्यापारिक नेतृत्व दिया। इस प्रकार जापान के नेतृत्व-कर्त्ताओं को परम्परागत प्रतिष्ठा तो प्राप्त थी ही और उनमें पुरातन समाज को परिवर्तित करने की पूर्ण शक्ति और अदम्य साहस भी था।

मेजी पुनर्संस्थापन काल में परिवर्तन

मेजी पुनर्संस्थापन के फलस्वरूप देश समायोजन की नई प्रक्रिया से गुजर रहा था। अतः सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन आवश्यक हो गये। सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों का राष्ट्र के आर्थिक विकास से एक अविभाज्य सुदृढ़ सम्बन्ध होता है अतः जापानी अर्थव्यवस्था पर मेजी पुनर्संस्थापन के प्रभावों को बताने से पूर्व इनका संक्षिप्त विवरण लाभ-प्रद होगा—

(1) **सामाजिक परिवर्तन**—1869 में सामन्तशाही प्रथा को समाप्त कर दिया गया तथा सामन्तों ने अपने अधिकार यह कहते हुए लौटा दिये कि सम्पूर्ण भूमि

सम्राट की है अतः सम्पूर्ण देश में एक समान ही व्यवस्था कायम करने के लिये हम लोग अपने सम्पूर्ण अधिकारों को लौटा देते हैं।" 1969 के विधान के समक्ष विभिन्न सामाजिक वर्गों की समानता की घोषणा की गई तथा किसी भी व्यापार में प्रवेश की अनुमति मिल गई। शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। सामन्तशाही व्यवस्था की समाप्ति से कई पेशों में जो विकसित थे, कुशल कारीगरों की बेकारी फैलने लगी। जापान की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई जिसका अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा। अल्पकाल के लिये शहरी जीवन अस्त-व्यस्त हो गया।

(2) **राजनैतिक परिवर्तन**—सम्राट के हाथ में केन्द्रीय सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण संभव हुआ। आवागमन एवं व्यापार के प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया गया। 1871 में हान के स्थान पर परफेक्चर (Perfectures) स्थापित किये जो बाद में 1878 में परफेक्चर के लिये असेम्बली की व्यवस्था की गई। इस प्रकार प्राचीन सामन्तशाही व्यवस्था से सम्बद्ध समूची प्रशासनिक व्यवस्था को समाप्त कर 1881 की एक शाही घोषणा के अनुसार 1890 में एक राष्ट्रीय प्रतिनिधि असेम्बली की स्थापना की गई।

मेजी पुनर्संस्थापन काल में जापानी अर्थव्यवस्था का विकास
(Development of Japanese Economy during Meiji Restoration)

मेजी पुनर्संस्थापन काल में जापानी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में तीव्रगामी प्रगति हुई और इस प्रगति ने जापान के आधुनीकरण, औद्योगिक विकास तथा आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त कर, राजनैतिक और सामाजिक सुदृढ़ता प्रदान की। विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति का ब्यौरा संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है—

(1) **कृषि विकास**—1869 में सामान्तशाही प्रथा की समाप्ति से सरदारों ने भूमि का अधिकार सरकार को यह कहते हुए सुपुर्द कर दिया कि "सम्पूर्ण भूमि सम्राट की है अतः सम्पूर्ण देश में एक समान ही भूमि-व्यवस्था कायम करने के लिये हम लोग अपने सम्पूर्ण अधिकारों को लौटा देते हैं।"

भूमि की नई व्यवस्था में किसान सामन्तवादी प्रतिबन्धों से मुक्त हो गये और उन लोगों को जिन्होंने भूमि प्राप्त करने के लिये सामन्तों को अनुदान दिया था, भूमि के स्वामी बना दिये गये। किसानों को फसल बोने की स्वतंत्रता पहले पहल मिली।

मेजी युग के पुर्वार्द्ध में नयी-नयी फसलों तथा खेती के सुधरे हुए तरीकों को अपनाने के लिये प्रोत्साहन दिया गया। सरकार ने किसानों को प्रशिक्षित करने के लिये विशेष प्रकार के शिक्षकों की नियुक्ति की। कृषि विद्यालय खोले तथा विशेषज्ञों को कृषि-क्षेत्र की विदेशी प्रणालियों के अध्ययन हेतु भेजा गया। सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि, सुधरे तरीकों से कृषि उर्वरकों के प्रयोग तथा पौध संरक्षण कार्यक्रमों से कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। चावल के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र 1878 में

25·79 लाख चो से बढ़कर 1908 में 29·22 लाख चो हो गया। अन्य अनाजों के क्षेत्र में भी आशातीत वृद्धि हुई।

खाद्यान्नों के औसत वार्षिक उत्पादन में वृद्धि

(Increase in Average Annual production of Cereals)

(In Lakh Koku) लाख कोकु* में

वर्ष	चावल	जौ	गेहूँ
1879–83	309	55	22
1889–93	385	69	31
1899–1903	423	83	37
1909–1913	502	97	49

इसके अलावा मेजी पुनर्संस्थापन काल में कृषि तथा अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों में उत्पादन के सूचनांक में तेजी से परिवर्तन और वृद्धि हुई। इसका दिग्दर्शन निम्न तालिका से होता है—

मेजी पुनर्संस्थापन काल में कृषि उत्पादन में वृद्धि (1873 से 1913)

(1921–25 का औसत वार्षिक उत्पादन=100)

वर्ष	कृषि	पशुधन	मत्स्य-उद्योग	जंगल	खनिज	कुल कच्चा माल
1873	28 6	—	—	—	—	15·7
1880	37·2	3·9	—	—	3·7	23·4
1890	50 1	11·3	—	—	11·2	36·7
1900	65·0	34 4	16·8	26·6	28·2	52·1
1910	76·4	56·0	33·9	72·9	61·3	68·4
1913	84·6	58·0	45·4	77·6	81·3	78·1

स्रोत—वाई कोइडे, फिजिकल वोल्यूम ऑफ रा मेटेरियल प्रोडेक्शन इन जापान।

इसी प्रकार कच्चे रेशम का उत्पादन जो 1868 में 2·78 लाख क्वान था वह 1889-93 में बढ़कर 11·10 लाख क्वान, 1899-03 में बढ़कर 19·24 लाख क्वान और 1909-13 में बढ़कर 33·75 लाख क्वान हो गया। इस प्रकार उत्पादन में वृद्धि 12 गुना के लगभग थी। 1921-25 के आधार वर्ष पर कृषि का उत्पादन सूचनांक तिगुना तथा कुल कच्चे माल का सूचनांक 5 गुना बढ़ गया। यह मेजी शासन काल में कृषि क्षेत्र में विकास का परिचायक नहीं तो और क्या है ?

* एक कोकु = 4·96 बुशल।

अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्रों में विकास के कारण मेजी काल में जापान की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के बावजूद कृषि पर जनसंख्या का भार कम हुआ। जहां 1868 के पूर्व तथा 1872 में जनसंख्या का 80% भाग कृषि पर आश्रित था, 1913 में यह प्रतिशत घट कर 60 रह गया। जापान में जनसंख्या में वृद्धि तथा कृषि योग्य भूमि की कमी के कारण कृषि जोतों के आकार में वृद्धि न की जा सकी और गहन कृषि को ही अधिक महत्व दिया गया। उपर्युक्त तालिका से हम देखते हैं कि कृषि के क्षेत्र में उत्पादन में लगभग 60 से 70% की वृद्धि होने पर भी कृषकों की आर्थिक प्रगति मंद रही। औद्योगिक फसलों में कपास की प्रधानता थी पर 1900 तक भारत से कपास के आयात से उत्पादन प्रायः समाप्त हो गया।

यातायात के साधनों का अभाव, बढ़ता हुआ जन भार तथा सरकार के कर बोझ से कृषि का विकास मंद ही रहा।

(2) **औद्योगिक विकास**—मेजी पुनर्संस्थापन के पूर्व जापान की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में औद्योगिक विकास नाम मात्र का था। अतः देश में आर्थिक समृद्धि के लिये मेजी पुनर्संस्थापन के पहले 15-20 वर्षों में द्रुतगति से औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक पृष्ठभूमि का निर्माण किया गया। देश में उद्योगों के विकास के लिये आवश्यक प्राकृतिक साधनों के अभाव के बावजूद 1868 के बाद जापान ने औद्योगिक क्षेत्र में अद्वितीय प्रगति की। सरकार ने प्रारम्भ से ही स्वयं कदम बढ़ाया, कई महत्वपूर्ण निर्माण-उद्योगों की स्थापना की गई और साथ-साथ शोगुन तथा डायमियों के कई उद्योगों को अपने हाथ में लेकर उनका पुनर्गठन किया। सरकार ने उद्योगों के विकास के लिये आवश्यक धन, कृषि से ऊंची दर से कर वसूली से जुटाया।

आठवें दशक में सरकार ने आइची (Aichi) और हिरोशिमा (Hiroshima) में पश्चिमी ढंग की सूती मिलें खोलीं। गैर सरकारी साहसियों को उद्योगों में प्रोत्साहित करने के लिये विदेशों से कताई मशीनों का आयात कर, किश्तों पर बेचा गया। 1870 में मायेबाशी Maebashi) और तोमिओको (Tomioko) में फ्रांसीसी और इतालवी नमूनों के कारखाने खोले गये। इसके अलावा 19वीं शताब्दी के आठवें दशक में पश्चिमी तकनीक को प्रोत्साहन देने के लिये अन्य नमूने के कारखानों में शिराकावा ह्वाइट टाईल वर्क्स, दी फुकुगावा सीमेंट वर्क्स, सेनजी वुलन वेव फैक्टरी, सोडियम सल्फेट तथा ब्लीचिंग पाउडर के कारखानों के नाम उल्लेखनीय हैं। क्षेत्रीय विकास के अन्तर्गत होक्केडो Hokkado) के विकास आयोग ने सप्पोरो (Sapporo) में किण्वासवन व चीनी के कारखाने खोले।

जापान की सैन्य शक्ति को सुदृढ़ करने के लिये नई शासन व्यवस्था ने शोगुन शासन के गोला-बारूद व शस्त्रास्त्र कारखानों पर कब्जा कर लिया और उनमें नये

सिरे से उपकरण लगवाये। नागासाकी का लोहा ढलाई घर नई सरकार के तोप निर्माण का प्रथम केन्द्र बना। कागोशिमा का पोत-निर्माण यार्ड, युद्ध पोतों के निर्माण के कारखाने में परिवर्तित किया गया 1876 में सेना की वर्दी लिये एक ऊनी मिल तथा 1879 में एक इन्जीनियरी कारखाना खोला गया। सारी खनिज सम्पत्ति पर भी सरकार का स्वामित्व घोषित कर दिया गया और आठवें दशक के पूर्वार्द्ध में सरकार नौ बड़ी-बड़ी खदानों (सोना, चांदी, तांबा, लोहा, अयस्क और कोयला) को चला रही थी।

"19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दशकों में पश्चिमी ढ़ंग का ऐसा एक भी महत्वपूर्ण उद्योग नहीं था जिसकी स्थापना का श्रेय राज्य को न हो। 1880 के एक अनुमान के अनुसार सरकारी औद्योगिक उपक्रमों के अन्तर्गत 51 व्यापारिक जहाज, 5 गोला बारूद के कारखाने, 3 पोत निर्माण प्रांगण, 52 अन्य कारखाने, 10 खानें तथा 75 मील लम्बी रेलवे और प्रधान शहरों को जोड़नेवाली तार प्रणाली थी।"[1]

सरकार ने तकनीशियनों के प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कीं। 1875 में सरकार की सेवाओं में कुल 527 विदेशी विशेषज्ञों को नियुक्त किया गया था। राज्य में बड़े पैमाने पर इन्जीनियरिंग व माइनिंग विद्यालय खोले। परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के अन्त तक जापान तकनीकी शिक्षा में आत्मनिर्भर हो गया था।

सरकार ने प्रत्यक्ष रूप में स्वयं औद्योगिक उपक्रमों तथा कारखानों की स्थापना करने के अतिरिक्त साहसियों एवं उद्यमकर्त्ताओं को उद्योगों की स्थापना के लिये प्रोत्साहित किया। उन्हें वित्तीय साधन, तकनीकी सहयोग तथा विदेशों से मशीनें मंगवाने तथा मंगाकर किश्तों पर बेचने तक की व्यवस्था की। 1869 में सरकार द्वारा एक कॉमर्सियल ब्यूरो की स्थापना की गई तथा 1877 में युनाव पार्क में एक औद्योगिक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

1882 के बाद राज्य की औद्योगिक नीति में परिवर्तन हुआ जिसमें सरकार ने उद्योगों पर सरकार के प्रत्यक्ष स्वामित्व की नीति का परित्याग कर अप्रत्यक्ष रूप में निजी उद्यमकर्त्ताओं को उद्योगों की स्थापना में सहयोग तथा वित्तीय सहायता की नीति अपनाई। जहां उद्योगों में बड़ी मात्रा में पूंजी आवश्यक थी और निजी व्यक्तियों की क्षमता से परे थी; सरकार ने स्वयं सहभागिता के आधार पर हिस्सा लिया। सरकार ने जिन अनेक उद्योगों को स्वयं स्थापित किया था तथा ठीक चल निकले थे, उन्हें निजी उद्योगपतियों तथा जायबत्सु (Zaibatsu) संस्थाओं को उचित मूल्यों पर बेच दिया। इस प्रकार विकास कार्यों में निजी उद्योगपतियों ने खास-तौर से

1 The Currency of Japan Page 76-80.

बन्दरगाहों पर बसे ब्रिटेन तथा अमेरिका निवासियों द्वारा नये उद्योगों की स्थापना तथा पुराने उद्योगों की काया पलट करने तथा उन्हें आधुनिक मशीनों से सुसज्जित करने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया । मेजी शासन में औद्योगिक क्षेत्र में हुए विकास का पता निम्नतालिका से लगता है—

जापान में मेजी शासन काल में औद्योगिक विकास
(1884 से 1914)

वर्ष	कोयला (लाख टन में)	कच्चा रेशम (लाख किलोग्राम में)	सूती धागे का उत्पादन (हजार गांठों में)	पिग आयरन (हजार टन में)
1884	1·47	26·97	13	18
1894	10·93	52·18	292	55
1904	37·05	74·88	695	133
1914	83·59	140·84	1666	474

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सभी प्रकार के उद्योगों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई । जहाँ 1884 में औद्योगिक उत्पादन स्तर बहुत नीचा था, वह प्रथम विश्व-युद्ध तक तो इतने उच्च स्तर पर पहुँच गया कि जापान की गिनती औद्योगिक राष्ट्रों में की जाने लगी थी ।

इस प्रकार मेजी शासन के पुनर्संस्थापन काल में जापान की सरकार द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने की नीति से जापान के आर्थिक विकास को तीव्रगति प्रदान की गई । विदेशी प्रतियोगिता, विदेशी आक्रमण से सुरक्षा का भय और विदेशी व्यापार के विकास में जापान में निर्माण उद्योगों को प्रोत्साहन मिला ।

(3) **यातायात एवं संचार विकास**—कृषि और औद्योगिक विकास के लिये यातायात एवं संचार विकास पर भी मेजी पुनर्संस्थापन काल में पूरा ध्यान दिया गया । इनका विकास, व्यापार और देश की सुरक्षा के लिये भी आवश्यक था । 1869 के अकाल में रेल-निर्माण पर जोर दिया गया पर पूंजी का अभाव था । सन् 1872 में तोक्यो और याकाहामा के बीच पहली रेलवे लाइन ब्रिटिश पूंजी व सहयोग से बनकर तैयार हुई । दो वर्ष बाद ओसाका-कोबे लाईन का निर्माण हुआ । इसके लिये सरकार को बाह्य तथा आन्तरिक साधनों से कर्ज लिया । 1881 में सरकार ने रेलवे निर्माण में निजी कम्पनियों को प्रोत्साहित किया । नाहन रेलवे कम्पनी का निर्माण 1881 में हुआ और उसकी सफलता से प्रोत्साहित हो अन्य कम्पनियों

ने भी रेलवे लाइनों का निर्माण किया। फिर भी राज्य का प्रत्यक्ष योग अधिक था। सन् 1873-74 में राजकीय रेलवे लाइनों की लम्बाई केवल 29 किलोमीटर थी। वह 1880 में बढ़कर 120 किलोमीटर तथा 1902-3 में 1710 किलोमीटर हो गई और इसके अलावा निजी रेलवे लाइनों की लम्बाई 4845 किलोमीटर थी।

विदेशी व्यापार तथा सैनिक दृष्टिकोण से मेजी सरकार ने जहाजरानी के विकास का प्रयास किया। पहला कदम 1870 में Mercantile Marine Law के अन्तर्गत "कैशो-केशा" नामक सामुद्रिक यातायात कम्पनी की स्थापना हुई। अगले कुछ वर्षों में और कई छोटे-छोटे प्रयास हुए पर इनमें "मिशुबिशी शोकार्थी" तथा "कैशो-केशा" दो ही प्रमुख थी। 1885 में मिशुबिशी कम्पनी को एक दूसरी कम्पनी के साथ मिलाकर "निष्पान युशैन कैशा' नामक कम्पनी बनाई गई जिसके पास 65 हजार टन क्षमता के 58 जहाज थे। चीन-जापान युद्ध के समय जहाजरानी उद्योग के विकास को बल मिला। सरकार ने व्यापारिक जहाजों के विकास की ओर भी ध्यान दिया। 1874 में सरकार ने विदेशों से सामुद्रिक जहाज खरीद कर मित्सुबिशी पुर्र को सौंप दिये। जहाजों को चलाने और नाविकों को प्रशिक्षण देने के लिये विदेशी कप्तान रखे गये। सरकार अनेक पोत-निर्माण प्रांगणों को सहायता दे रही थी। जहां 1873 में जहाजों का टन भार 26 हजार टन था, वह बढ़ कर 1880-82 में 50 हजार टन हो गया।

मेजी शासन के पुनर्संस्थापन के साथ ही संचार की उन नई प्रणालियों के विकास की ओर भी ध्यान गया जिनका पश्चिमी राष्ट्रों के औद्योगीकरण में बहुत महत्वपूर्ण हाथ रहा है। 1871 में डाक-तार प्रणाली का आरम्भ हुआ। 1877 में जापान डाक-संघ में शामिल हो गया।

इस तरह सरकार ने स्वयं धन लगाकर या अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन देकर जापान में मेजी पुनर्संस्थापन काल में रेल यातायात, सामुद्रिक यातायात और संचार-व्यवस्था का यथासाध्य विकास किया।

(4) **विदेशी व्यापार**—जापान की बढ़ती हुई जनसंख्या, अल्प प्राकृतिक साधन तथा सीमित क्षेत्र के कारण उसको अपने आर्थिक अस्तित्व के लिये विदेशी व्यापार पर निर्भर करना पड़ता है। तोकुगावा शासन में पृथकत्व की नीति से विदेशी व्यापार सीमित था पर मेजी पुनर्संस्थापन के साथ-साथ जापान ने विदेशी व्यापार में आश्चर्यजनक वृद्धि की। 1880 से 1913 की अवधि में विदेशी व्यापार में आठ गुनी वृद्धि तथा 19वीं शताब्दी के अन्त तक विदेशी व्यापार राष्ट्रीय आय का लगभग 10 प्रतिशत तथा दो युद्धों के बीच वह 15 से 20% तक पहुँच गया। इसीलिये तो प्रो लॉकवुड (Lockwood) ने कहा है—"No part of modern Japan is

more dramatic than the revolutionary growth in her foreign Commerce after 1868."

विदेशी व्यापार की वृद्धि का अन्दाजा इन तथ्यों से अधिक स्पष्ट है कि जहां 1870 में जापान का विदेशी व्यापार 75 लाख डालर था वह 1890 में 375 लाख डालर हो गया। 1910 में 2230 लाख डालर तक पहुँच गया और 1920 में 9450 लाख डालर हो गया।

विदेशी व्यापार में तीव्र गति से वृद्धि होने के पीछे कुछ महत्वपूर्ण कारण थे उनमें पहला अलगाव (पृथकत्व) की नीति का परित्याग, दूसरा प्रदर्शन प्रभाव, तीसरा औद्योगिक विकास के लिये मशीनों का आयात तथा तकनीकी सहायता की प्राप्ति आदि थे। सरकार ने विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिये तथा विदेशी व्यापार की देख-रेख के लिये एक वाणिज्यक ब्यूरो (Commercial Bureau) की स्थापना की थी। इसके जरिये कलात्मक उत्पादनों के निर्यात के विकास के लिये एक संगठन की नींव भी डाली गई थी। इस ब्यूरो ने ही 1877 में तोकियो के युयनों पार्क में एक औद्योगिक प्रदर्शनी आयोजित की थी।

इस समय सरकार द्वारा विदेशी व्यापार में गहरी दिलचस्पी लेने का कारण था कि सरकार अपने पाश्चात्यीय कार्य-क्रमों को पूरा करने के लिये मशीनें, गोला बारूद, युद्ध-पोत, व्यापारिक जहाज, उपभोग वस्तुएं मिट्टी का तेल, सूती वस्त्र व ऋण व ब्याज की अदायगियां। अतः बाध्य होकर 8वें दशक में सरकार ने चावल, चाय व रेशम के भंडार खरीद कर स्वयं निर्यात किया। भुगतान शेषों से चिन्तित हो कुछ आयातों को बन्द करने के लिये स्वयं औद्योगिक उपक्रम स्थापित किये। इनमें, सीमेंट, कांच और इमारती सामान के उद्योग प्रमुख थे।

(5) **सरकारी आय तथा वित्तीय व्यवस्था का विकास**—मेजी सरकार को प्रारम्भिक अवस्था में वित्तीय कठिनाई का सामना करना पड़ा क्योंकि उसे आन्तरिक युद्ध तथा भावी विकास कार्य-क्रमों के लिये अधिक मात्रा में व्यय करना पड़ा। जहां 1868 में कुल व्यय 2·5 करोड़ येन[1] था, सामान्य साधनों से प्राप्त सरकारी आय केवल 37 लाख येन थी। इस कमी की पूर्ति पत्र-मुद्रा जारी कर की जाती थी। पत्र-मुद्रा में विभिन्नता तथा प्रमाणिकता के अभाव में मौद्रिक एवं वित्तीय क्षेत्र में घोर अराजकता थी। मेजी शासन काल में सुधार का प्रयास जारी था। 1872 में करों की नई व्यवस्था, भूमि-कर में वैज्ञानिक आधार पर तीव्र वृद्धि से सरकार की आय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।

---

1 येन = जापानी मुद्रा को कहते हैं।

सरकारी आय (लाख येन में)

वर्ष	सरकार की कुल आय	करों से प्राप्त आय	भूमिकर	भूमिकर कुल कर राजस्व का प्रतिशत
1870	209·6	93·2	82·2	88·1
1873	858·1	650·1	606·0	93·8
1876	694·8	591·9	503·5	85·0

मेजी शासन के प्रारम्भिक वर्षों में धनी व्यापारियों ने कई नये कावसे गुमी (कम्पनियां) बनाईं जो बैंकिंग का साधारण कारोबार करते थे तथा आरक्षित पूंजी पर नोट जारी कर सकते थे। 1872 में पश्चिमी ढंग के बैंक खोले गये। राजकुमार इतो (Ito) की सलाह से अमेरिकी प्रणाली को राष्ट्रीय बैंकिंग के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। इन नियमों के अन्तर्गत केवल 4 राष्ट्रीय बैंक स्थापित हो पाये। उन्हें पत्र-मुद्रा जारी करने का अधिकार दिया गया।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मेजी पुनर्संस्थापन के बाद जापान के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक क्षेत्र के परिवर्तनों से जापान की कृषि, औद्योगिक व्यवस्था, यातायात एवं संचार, विदेशी व्यापार तथा वित्तीय क्षेत्र में तीव्र प्रगति हुई। इससे धीरे-धीरे जापान की गणना विश्व की महान् शक्तियों में की जाने लगी। मेजी शासन के पुनर्संस्थापन काल में सरकार ने औद्योगिक और सैनिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये कृषि से कर आदि के रूप में अधिकतम रकम वसूल करने की नीति अपनाई, यहां तक कि भूमि कर कुल कर राजस्व का 85 से 88 प्रतिशत था।

राज्य ने औद्योगीकरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध के लिये स्वभावतः बहुत बड़ा उत्तरदायित्व स्वयं ग्रहण किया। यह नीति आर्थिक परिवर्तनों के लिये महत्वपूर्ण तथा अतिआवश्यक थी। देश में मेजी पुनर्संस्थापन के समय नेताओं ने जो नारा बुलन्द किया था उसकी पूर्ति में अर्थव्यवस्था का पाश्चात्य ढंग पर विकास आवश्यक था। इसीलिये तो कहा गया है कि जापान का उद्योग पश्चिमी साम्राज्य-वाद के विरुद्ध राज्य द्वारा प्रोत्साहित एक सुरक्षात्मक उपाय था। उन्होंने अपने को स्वतंत्र रखने के लिये देश का औद्योगीकरण किया।

आधुनिक जापान के निर्माण का श्रेय मेजी शासन काल के जापानी नेताओं की दूरदर्शिता, राष्ट्रभक्ति और भौतिकता के प्रति पाश्चात्य दृष्टिकोण को दिया जाता है कि जिससे जापान अल्पकाल में सर्वांगीण प्रगति की ओर अग्रसर होकर विश्व की महान् शक्तियों में गिना जाने लगा।

———

अध्याय **2**

जापान में कृषि विकास

(Agriculture Development in Japan)

आर्थिक विकास के प्रारम्भिक स्तर पर देश में कृषि की प्रधानता होती है और कृषि का पिछड़ापन, अत्यधिक जन-भार, दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था, ऋण ग्रस्तता, और कृषि के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण आदि विशेषताएं होती हैं। जापान की कृषि में भी ये विशेषताएं विद्यमान थीं।

तोकुगावा शासन काल में कृषि की स्थिति

इस काल में जापान की अर्थव्यवस्था पूर्णतः कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था थी और देश की तीन चौथाई से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित थी। देश की प्राकृतिक बनावट में पहाड़ी प्रदेश की अधिकता से कुल क्षेत्र के 16 प्रतिशत भाग में ही खेती होती थी। जनसंख्या की विशालता और भूमि की स्वल्पता से कृषि के अन्तर्गत औसत प्रति व्यक्ति क्षेत्र बहुत कम था। खेत छोटे-छोटे आकार के यहां तक कि औसत जोत का आकार 1·2 एकड़ था। भूमि की दोषपूर्ण व्यवस्था में सामन्तवादी कृषि में किसान शोषण के शिकार थे। कृषि में अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों, उत्पादकता की कमी, अत्यधिक करों के बोझ तथा शोगुन और डायमियों द्वारा किसानों से उनकी फसल का दाना-दाना हड़प लेने की प्रवृत्ति से, किसान ग्रामीण-साहूकारों की ऋण-ग्रस्तता के शिकंजे में फंसे हुए थे। किसान की स्थिति दयनीय थी और यदा-कदा अकाल पड़ने से वे भुखमरी और बेकारी के शिकार थे।

मेजी पुनर्संस्थापन काल में कृषि
(Agriculture during Meiji Restoration)

मेजी पुनर्संस्थापन से देश में आर्थिक समृद्धि के प्रति पाश्चात्य दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ और जापानी कृषि क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

सर्वप्रथम तो किसानों को सामन्तवादी प्रतिबन्धों से मुक्त किया गया। सामन्तवादी प्रथा को 1869 में समाप्त किये जाने से सरदारों ने अपनी जागीरें सरकार को यह कह कर सुपुर्द कर दीं कि "सम्पूर्ण भूमि सम्राट की है अतः सम्पूर्ण देश में एक

समान ही व्यवस्था कायम करने के लिए हम लोग सम्पूर्ण अधिकारों को लौटा देते हैं।"

नई भूमि-व्यवस्था में सामन्तों को, अनुदान देने वाले कृषकों को भूमि का स्वामी बना दिया गया और उन्हें फसल बोने-काटने की पहली बार स्वतन्त्रता प्रदान की गई। मेजी पुनर्स्थापन काल मे इन भू-स्वामियों ने कृषि में नये तरीकों को अपनाने में पहल की।

कृषि में सुधार के लिये सरकार ने नई-नई फसलों, खेती के सुधरे तरीकों, सिंचाई के साधनों में वृद्धि तथा पौध संरक्षण कार्यों को प्रोत्साहित किया। कृषि योग्य भूमि के अभाव में गहन कृषि को बढ़ाया गया तथा साथ ही कृषि-क्षेत्र में भी वृद्धि की गई। जहां 1878 में चावल की खेती 25·79 लाख चो[1] (Cho) में होती थी, उसे बढ़ा कर 1908 में 29·22 लाख चो कर दिया गया। इसी प्रकार की वृद्धि दूसरी फसलों के क्षेत्र में भी हुई।

विदेशी फसलों को जापानी परिस्थितियों के अनुकूल बनाने और खेती में सुधरे हुए उपाय खोजने के लिये प्रायोगिक कृषि-केन्द्र स्थापित किये गये। देश में कृषि विद्यालय खोले गये। जापानी विशेषज्ञों को विदेशों में कृषि के तरीकों के अध्ययन के लिए भेजा गया। सरकार द्वारा किसानों को प्रशिक्षित करने के लिये घूम-घूम कर शिक्षा देने वाले शिक्षकों को देश के विभिन्न भागों में भेजा गया।

विभिन्न प्रयत्नों के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। कृषि पर आश्रित जनसंख्या के अनुपात में सापेक्षिक कमी हुई। जहाँ 1868 में जापान की कुल जनसंख्या (3 करोड़) का 80% भाग कृषि पर आश्रित था वह 1913 में घट कर 60 प्रतिशत ही रह गया। वैसे 1872 में खेती का कार्य करने वाली आबादी 145 लाख थी वह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक 175 लाख तक पहुँच गई।

अनाजों के वार्षिक औसत उत्पादन में वृद्धि

(लाख कोकू[2] में)

वर्ष	चावल	जौ	गेहूँ
1879–83	308·74	55·16	22·19
1889–93	385·49	69·45	33·02
1899–03	422 68	83·33	37 00
1909–13	502·42	96·77	49·01

(1) 1 चो (Cho) = 2·45 एकड़

(2) 1 कोकू = 4·96 बुशल

ग्रामीण आबादी का प्रतिशत 1893 में 84% था वह घट कर 1913 में 72% ही रह गया।

जापान में कृषि क्षेत्र में कोकून (Cocoon) तथा कच्चे रेशम के उत्पादन में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। मेजी शासन के प्रारम्भिक काल में तो कोकुन की एक फसल ही होती थी पर बाद में दो फसलें उत्पन्न की जाने लगीं। कच्चे रेशम की उत्पादन वृद्धि पर भी ध्यान केन्द्रित किया क्योंकि यह निर्यात व्यापार में महत्वपूर्ण था। 1868 और 1883 के बीच कच्चे रेशम का निर्गात दुगुना हो गया जो बाद में और भी तेज गति से बढ़ा। यहाँ तक कि 1909–13 में कच्चे रेशम का निर्यात 1883 के मुकाबले 7 गुना तथा 1868 के मुकाबले लगभग 15 गुना था।

कच्चे रेशम की उत्पत्ति में वृद्धि से जापान में इस उद्योग को और भी बढ़ावा मिला। जहां 1883 में उद्योग का उत्पादन एवं निर्यात क्रमश: 457 हजार क्वान तथा 365 हजार क्वान था वह 1899–1903 में औसत रूप से बढ़ कर क्रमश: 1924 हजार क्वान तथा 1110 हजार क्वान हो गया। यहां तक कि 1909–13 तक तो यह बढ़ कर क्रमश: 3375 हजार क्वान और 2563 हजार क्वान तक पहुँच गया था। 1893 में रेशम लपेटने के 3202 कारखाने थे।

इस प्रकार रेशम के उत्पादन की उल्लेखनीय प्रगति रही।

जनसंख्या के भार में वृद्धि होने तथा कृषि योग्य भूमि की स्वल्पता होने से खेतों का आकार बहुत छोटा था। इन छोटे खेतों में श्रम-प्रधान कृषि अपनाई गई। जापान की $\frac{1}{3}$ जोतों का आकार आधा चो था। देश की $\frac{2}{3}$ से अधिक जोतें 1 चो व उससे कम थीं। दक्षिणी जापान में शायद ही कहीं 2·5 एकड़ के निजी खेत थे जबकि उत्तरी जापान के होक्केडो द्वीप में कृषि जोतों का आकार कुछ बड़ा था। अत: मेजी शासन काल में उत्पादन में वृद्धि तथा कृषि में सुधार से भी किसानों की दयनीय स्थिति में विशेष सुधार न हो सका।

मेजी शासन काल में भूमि-व्यवस्था में सुधार के फलस्वरूप जहाँ 1868 में रैयतवाड़ी प्रथा के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र 20 प्रतिशत था वह 1887 में 40 प्रतिशत, 1910 में 45 प्रतिशत हो गया। मेजी काल में किसानों का $\frac{1}{3}$ कृषक रैयत, $\frac{2}{5}$ भाग भूस्वामी कृषक तथा शेष आंशिक भूस्वामी कृषक एवं श्रमिक थे।

किसान सहायक पेशों के रूप में मत्स्य पालन तथा वनों में लगे हुए थे। औद्योगिक फसलों में मुख्य कपास थी उसका उत्पादन भी 1900 तक बिल्कुल समाप्त हो गया।

मेजी सरकार अपनी औद्योगिक तथा सैन्य-शक्ति की सुदृढ़ता की महत्वाकांक्षा में कृषि से अत्यधिक कर वसूल करती थी। यह कुल कर राजस्व का लगभग 85 से 88% भाग था। इसके सन्दर्भ में ठीक ही कहा गया है—

"The Meiji policy might be characterised as desired to extract the maximun amount of revenue from agriculture to defray the expenses of the State and to forward the industrial and military ambitions of its ruling group."

1873 में तो भूमि कर का भाग कुल कर राजस्व का 93·8% भाग था।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण यह स्पष्ट करता है कि मेजी सरकार के द्वारा कृषि क्षेत्र में विकास के उठाये गये कदमों के बावजूद जनसंख्या के भार में निरन्तर वृद्धि, सरकारी करों का बढ़ता बोझ, यातायात के साधनों का अभाव, किसानों की ऋण-ग्रस्तता और यदा-कदा अकाल की परिस्थितियों से विकास की गति मंदी रही और उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति न रही। किसान की दशा अब भी दयनीय थी।

प्रथम विश्व युद्ध से आर्थिक मंदी तक जापानी कृषि (1914—1933)
(Japanese Agriculture during First World War & Great Depression 1914-1933)

मेजी शासन के बाद प्रथम विश्व युद्ध से लेकर विश्व व्यापी आर्थिक मंदी काल में जापान की कृषि में भी उतार-चढ़ाव का दौर आया पर कुछ क्षेत्रों को छोड़, प्रगति सामान्य ही रही। इस अवधि में कृषि पर आश्रित जनसंख्या का अनुपात अपेक्षाकृत कम हुआ। जहाँ 1913 में कृषि पर आश्रित जनसंख्या कुल जनसंख्या का लगभग 60% भाग था वह घट कर 1930 में 48% भाग ही रह गया। फिर भी खेतीहर परिवारों की संख्या 55 लाख के आस-पास स्थिर रही। जोतों के आकार में भी परिवर्तन कम हुआ क्योंकि जनता का विरोध तो बड़े खेतों के निर्माण में बाधा था ही, प्राकृतिक परिस्थितियां भी अनुकूल नहीं हैं। फिर भी आकार के अनुसार खेतों की संख्या इस प्रकार थी—

खेतों की संख्या
(हजार संख्या)

वर्ष	5 टान (Tan) से कम	5 टान से 1 चो	1 चो से 2 चो तक	2 चो से अधिक	कुल जोड़
1913	2003	1816	1079	546	5444
1930	1939	1916	1227	517	5600

1 चो = 10 टान = 2·45 एकड़

इस अवधि में भू-धारण प्रणाली में बहुत कम परिवर्तन हुआ यद्यपि काश्तकारों की संख्या कम हो रही थी। भूमि पर पट्टे की व्यवस्था प्रचलित थी।

कृषि की मुख्य फसलों में चावल, गेहूं तथा जौ थी। चावल के अन्तर्गत कुल कृषि क्षेत्र का 55% भाग था और औसत वार्षिक उत्पादन कम होने से बढ़ती हुई

जनसंख्या की पूर्ति के लिये कोरिया और फारमोसा से चावल आयात किया जाता था। गेहूं का उत्पादन चावल के उत्पादन का $\frac{1}{6}$ भाग था। जौ के उत्पादन तथा कृषि क्षेत्र में कमी हुई जबकि गेहूं के उत्पादन तथा क्षेत्र में कुछ वृद्धि हुई।

1914 से 1930 की अवधि में कृषि की उपजों की किस्म का काफी विस्तार हुआ। अनेक प्रकार की फल-सब्जियां उगाई जाने लगीं। देश में मत्स्य-पालन तथा मुर्गी-पालन को भी प्रोत्साहन मिला। प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थानीय रासायनिक उद्योगों के विकास से नाइट्रोजन उर्वरकों की पूर्ति और खपत में वृद्धि हुई।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान चावल की कीमतें बहुत बढ़ गई। जनवरी 1920 में चावल का प्रति कोकू मूल्य 55 येन था, वह युद्ध समाप्ति से 1921 में केवल 25·5 येन ही रह गया। फिर बाद में 1927 तक तो ऊंचे स्तर पर रहा पर दिसम्बर 1930 तक तो मूल्य गिर कर 18 येन प्रति कोकू ही रह गया। चावल का औसत उत्पादन (1910–14) से 51 कोकू था, वह 1930–34 में बढ़ कर 62 कोकू हो गया।

सरकार ने भावी खाद्यान्न पूर्ति की दृष्टि से चावल की उत्पत्ति में वृद्धि के लिये उर्वरकों के उपयोग, सिंचाई के लिए पेशगियाँ दी गयीं। 1910 से 1929 की अवधि में उत्पादन में 30% की वृद्धि हुई। फारमोसा तथा कोरिया उपनिवेशों में उत्पादन वृद्धि से आयात कर जनसंख्या की मांग की पूर्ति की गई। जापान द्वारा खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि का लाभ उसे सामरिक और आर्थिक लाभ के रूप में मिला।

कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि कच्चे रेशम के उत्पादन में हुई। यह वृद्धि 300 प्रतिशत थी। 1929 तक खेती करने वाले सभी परिवारों की संख्या का 60 प्रतिशत भाग इस व्यवसाय को गौण रोजगार के रूप में कर रहा था और महिला कामगारों की मांग बढ़ गई थी। निर्यात में भी तेजी से वृद्धि हुई और ऊंचे मूल्यों से कृषक परिवारों की आय में वृद्धि हुई। 1920 में प्रत्येक सौ किन का औसत निर्यात मूल्य 1191 येन था, वह 1923 में बढ़ कर 2150 येन प्रति 100 किन हो गया। पर विश्वव्यापी मंदी में मूल्य गिर कर 1930 में 540 येन तथा 1932 में 390 येन रह गया इससे जापानी कृषकों की आमदनी में गिरावट के दुर्भाग्यपूर्ण राजनैतिक प्रभाव पड़े। कच्चे रेशम का औसत उत्पादन 1909–13 में 33·75 लाख क्वान था, वह बढ़ कर 1930–34 में 115 लाख क्वान हो गया।

मत्स्य-पालन की प्रगति भी उल्लेखनीय कही जा सकती है। 1921–25 के आधार वर्ष के अनुसार 1914 में मत्स्य उत्पादन का सूचनांक 43 था, वह 1929 में बढ़ कर 127 हो गया। तेल से चलने वाले समुद्री इन्जनों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि स्वाभाविक थी।

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व तथा प्रथम विश्व युद्ध और विश्व व्यापी आर्थिक मंदी के समय जापानी कृषि की स्थिति निम्न सूचनाँक से स्पष्ट होती है:—

कृषि-पशु पालन व मत्स्य पालन उत्पादन सूचनांक
(1921–25 का औसत उत्पादन = 100)

वर्ष	कृषि	पशु पालन	मत्स्य पालन
1873	28·6	—	—
1890	50·0	11	—
1900	65 3	34·4	16·8
1913	84·6	58·0	45·4
1920	104	77·5	82·9
1925	107	110	115
1930	118	135	123
1933	126	168	156
1934	101	171	151

1921 से 1924 तक की अवधि में कृषि उत्पादन सूचनांक गिर गया था यहां तक कि 96 हो गया था। मंदी की अवधि में विभिन्न प्रयत्नों से उत्पादन को ऊंचे स्तर पर ही रखने की चेष्टा की गयी। पर फिर भी 1934 में कृषि उत्पादन में भयंकर गिरावट आई जहां 1933 में सूचनांक 125·7 था, वह गिर कर 101 ही रह गया। कुल कच्चे माल का सूचनांक 1913 में 78 था वह 1933 में 130 हो गया पर 1934 में 113 ही था।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि 1914–32 की अवधि कृषि विकास की उतार-चढ़ाव की अवधि रही और उत्पादन में वृद्धि के बावजूद 1930 की विश्व व्यापी मंदी ने जापान की कृषि को भी अपनी चपेट में ले लिया। रेशम के निर्यात में कमी, चावल तथा रेशम दोनों के मूल्यों में कमी को देखते हुए सरकार ने मंदी के प्रभावों को दूर करने के लिए 1929 में रेशम के उत्पादकों को प्रोत्साहित करने तथा उनके घाटे की पूर्ति के लिए "The Silk Stabilisation and Indemination Act" पारित किया। इसी प्रकार चावल के मूल्यों को स्थिर करने के लिए 1933 में "The Comprehensive Rice Law" पारित किया। इससे पहले 1921 में Rice Act पारित किया गया था। इसके अलावा किसानों की सुविधा के लिए 1933 में Rice Bureau की भी स्थापना की गई थी।

किसानों की ऋण-ग्रस्तता को मिटाने तथा उन्हें सस्ती एवं सुलभ साख के लिए 1900 में चार प्रकार की सहकारी संस्थाओं की स्थापना की जाने लगी। 1933 तक

1837 में स्थापित हाईपोथेक बैंक ऑफ जापान ने किसानों को 75 करोड़ येन का ऋण दिया था । 1932 में जापान की सरकार ने दो विधान— (1) The Special Loans and Loss Compensation Act और (2) The Immovables and Mortgage Loan & Loss Compensation Act पारित किये जिनके अन्तर्गत सेन्ट्रल कोऑपरेटिव बैंक तथा मोर्टगेज बैंक को दी गई सरकारी गारन्टी के अन्तर्गत किसानों को अल्पकालीन और दीर्घकालीन ऋणों के भुगतान के लिए निश्चित सीमा तक ऋण दिये जाते थे ।

सरकार ने किसानों की आर्थिक स्थिति में स्थायी तौर पर सुधार लाने के लिए 1932 में कृषि आर्थिक पुनरुत्थान ब्यूरो (The Agricultural Economic Recovery Bureau) की स्थापना की । सरकार के इतने प्रयत्नों के बावजूद भी कृषक वर्ग में असन्तोष फैला हुआ था । वे सरकार पर उद्योग एवं सैनिक साधनों के विकास की तुलना में कृषि की अवहेलना का आरोप लगाते थे तथा चाहते थे कि सरकार नीति में परिवर्तन करे जिससे उन्हें भी विकास से लाभान्वित होने का मौका मिले ।

अगर निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो जापान द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व एक कृषि प्रधान पर विकसित औद्योगिक राष्ट्र बन गया था । मेजी शासन काल से ही सरकार की नीति, उद्योगों, विदेशी व्यापार तथा सैन्य शक्ति के विकास से प्रेरित होने के कारण कृषि विकास पर बहुत कम ध्यान दिया गया । कृषकों से ऊंचे दर से भूमि कर, नीचे मूल्य आदि से उद्योग व व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिये कृषकों के हितों की बलि देदी । फिर भी कृषि क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि हुई । आधुनिकीकरण का प्रारम्भिक बोझ कृषकों ने उठाया । कृषि उत्पत्ति के निर्यात से ही विदेशी विनिमय संकटों का सामना किया । जिस प्रकार स्टालिन की रूस की कृषि सम्बन्धी नीति वहां के कृषकों के लिए कष्टमयी थी उसी प्रकार मेजी सरकार द्वारा अपनाई गई कृषि नीति जापानी किसानों के लिए कठोर तथा दुःखदायी थी और किसानों के आर्थिक जीवन स्तर में कोई उल्लेखनीय प्रगति न रही ।

द्वितीय विश्व युद्ध व युद्धोत्तर काल में जापानी कृषि

जापान की कृषि विश्व व्यापी आर्थिक मंदी के बाद पुनरुत्थान की ओर अग्रसर तो थी ही पर फिर द्वितीय विश्व युद्ध की चिनगारी भड़क उठी और कृषि से खाद्यान्न की पूर्ति की ओर सरकार का ध्यान गया[1] पर विशेष प्रगति के पूर्व ही 1945 में जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया तथा सुप्रीम कमान्डर ऑफ एलायड पावर्स (S.C.

---

1. युद्ध काल में कृषि उत्पादन में अत्यधिक कमी हो गई । यह कमी 1933–35 के उत्पादन स्तर के मुकाबले भयावह थी जैसा कि आगे सूचनांक से स्पष्ट है ।

A.P.) के रूप में जनरल मेकारथर ने शासन की वागडोर सम्हाली। सैनिक शासन ने कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार किये। 1946 में Owner Farmer Establishment Act पारित किया तथा उसके अनुसार सभी जमींदारों से एक निश्चित मात्रा से अधिक भूमि को लेकर अतिरिक्त भूमि को रैयतों के हाथ वेच दिया। इससे वस्तुतः वड़े-वड़े किसानों को समाप्त कर दिया गया और उनको भूमि का मुआवजा पत्र-मुद्रा में चुकाया गया।

मुद्रा स्फीति से मुआवजे का मूल्य तो नगण्य था ही पर किसानों का ऋण वोझ भी समाप्त हुआ। खाद्यान्न के अभाव से ऊंचे मूल्यों का किसानों को लाभ मिला। इसके अलावा 1949 में जमींदारों से अतिरिक्त भूमि लेने तथा उन्हें रैयतों के हाथ बेचने के कार्य की समाप्ति से रैयती भूमि का प्रतिशत 46% से घट कर अब केवल 8% ही रह गया। इस तरह युद्धोत्तर काल में जापान मुख्य रूप से कृषक स्वामियों (Peasant Proprietors) का देश वन गया।

युद्धोत्तर काल में जापानी कृषकों की समृद्धि
(Peasant Prosperity in Post-War Japan)

सैनिक शासन काल में भूमि सुधारों की प्रगति से जमींदारों तथा बड़े-बड़े किसानों की निश्चित सीमा से अतिरिक्त भूमि जब सरकार द्वारा हस्तगत कर रैयतों के हाथ बेच दी गयी तो वे स्वयं स्वामी बन कर पुरानी शोषण-पद्धति से मुक्त हो गये।

खाद्यान्नों के भीषण अभाव से उनको उनकी उत्पत्ति का ऊंचा और मनचाहा मूल्य मिलने से आय में अत्यधिक वृद्धि हुई। कोरिया युद्ध से भी मूल्यों में वृद्धि हुई।

कृषि में यन्त्रीकरण ने किसानों को कम लागत पर अधिक उत्पादन करने का सुअवसर प्रदान किया। जहां द्वितीय विश्व युद्ध तक चावल के खेतों में ट्रैक्टरों का उपयोग विल्कुल नहीं किया जाता था, वहां युद्धोत्तर काल में कृषि सम्बन्धी उपकरणों तथा यन्त्रों और ट्रैक्टरों का उपयोग तेजी से बढ़ा। वर्तमान में 80% चावल के क्षेत्र में यन्त्रों की सहायता ली जाती है।

इस प्रकार युद्धोत्तर काल जापानी कृषि के लिये समृद्धि का काल सिद्ध हुआ।

1952 में सैनिक शासन की समाप्ति के बाद जापान की अर्थव्यवस्था के द्रुतगति से विकास में कृषि का विकास भी महत्वपूर्ण रहा। किसानों की आर्थिक सम्पन्नता वढ़ी है। वे अव कृषि को जीवन-यापन का साधन न मान कर कृषि के प्रति व्यावसायिक दृष्टिकोण रखते हैं। इससे आज जापान कृषि-प्रधान देश होते हुए भी विकसित औद्योगिक राष्ट्र वन रहा है।

जापान में विश्व व्यापी आर्थिक मंदी के वाद तथा द्वितीय विश्व युद्ध एवं युद्धोत्तर काल में कृषि क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि निम्न सूचनांक से स्पष्ट होती है:—

कृषि तथा मत्स्य उत्पादन सूचनांक (1936–1960)

(1933–35 = 100)

वर्ष	कृषि	मत्स्य पालन
1936	105	111
1938	107	105
1945	60	83
1950	99	109
1955	130	186
1960	139	226

सामान्य सूचनांक के आधार पर कृषि क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में उतार-चढ़ाव का पता लगाना कठिन है। अतः यहां यह बताना उपयुक्त है कि चावल का उत्पादन सूचनांक 1936 में 112 से घट कर 1945 में केवल 65 ही रह गया था पर 1952 तक वह 110 तक पहुँच गया। पशु-धन का उत्पादन सूचनांक 1938 में 113 था वह 1945 में घट कर 24 ही रह गया पर 1960 में वह बढ़ कर 327 पहुँच गया है। फलों का उत्पादन सूचनांक भी 1938 में 109 से घट कर 1945 में 63 रह गया था, वह 1952 में 176 तथा 1960 में 380 पहुँच गया। इस तरह पशु-धन, फल व शाक सब्जी के उत्पादन सूचनांक बहुत बढ़े हैं पर रेशम (कोकुन) का उत्पादन सूचनांक जो 1938 में 84 था, वह 1949 में 18 रह गया पर अब 1960 में भी 33 ही है। अतः कोकुन के उत्पादन में वृद्धि न हो सकी तथा उत्पादन घट कर एक तिहाई ही है।

कच्चे रेशम का औसत उत्पादन एवं निर्यात 1930–34 में 115 लाख क्वान तथा 81 लाख क्वान था वह 1945–59 में घट कर क्रमशः 19 लाख तथा 9 लाख क्वान ही रह गया। 1960 में वृद्धि हुई और उत्पादन तथा निर्यात दोनों क्रमशः 48 लाख तथा 14 लाख क्वान हो गये हैं फिर भी पूर्व रिकार्ड बिन्दु के लगभग 30 से 33% ही है।

वर्तमान स्थिति

जापानी कृषि वस्तुतः संक्रमण काल (Transitional period) से गुजर रही है। पुरानी मान्यताओं तथा पुराने तरीकों का स्थान नये वैज्ञानिक ढंग ले रहे हैं। कृषि को अधिकाधिक वैज्ञानिक ढंग पर लिया जा रहा है। कृषि पर बढ़ता हुआ जन-भार अब कृषि में यन्त्रीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण बहुत कम हो गया है। जहां 1950 में कृषि में 360 लाख श्रमिक नियोजित थे 1965 में उनकी संख्या घट कर 115 लाख ही रह गई है।

चावल तथा गेहूं की फसलों के अलावा व्यावसायिक फसलों, जैसे—आलू, सायाबीन, तम्बाकू तथा संतरा आदि के विकास पर बहुत बल दिया जा रहा है। इससे खाद्यान्न के आयात में निरन्तर वृद्धि हो रही है। जहां 1960 से पहले खाद्यान्न के आयातों का मूल्य लगभग 70 से 80 करोड़ डालर होता था और कुल आयात का 19·3 प्रतिशत भाग था 1963 में बढ़ कर 150 करोड़ डालर हो गया है और कुल आयात का लगभग 22 प्रतिशत भाग है।

जापान की कृषि की सफलता इस बात से स्पष्ट है कि जहाँ जापान में कुल कृषि योग्य भूमि देश की उपलब्ध भू-तल का 16 प्रतिशत भाग है पर वह देश खाद्यान्न में अपनी 80 प्रतिशत पूर्ति के लिए आत्मनिर्भर है। युद्धोत्तर काल में दलदलों को सुखा कर तथा जल-प्रवाह व्यवस्था को ठीक करके, नवीन कृषि योग्य भूमि प्राप्त की गई है पर आवश्यकता की तुलना में वह नगण्य है। जापान के 67% भू-क्षेत्र पर वन हैं तथा शेष 33% में आधे से ज्यादा भाग पर्वतों, जलाशयों से घिरा हुआ है। केवल 54·6 लाख हेक्टर भूमि (16%) ही बचती है। यह यहां की कृषि की सबसे बड़ी कठिनाई है कि कृषि योग्य समतल भू-भाग की कमी से कृषि क्षेत्र के विस्तार की सम्भावनाएं नहीं के बराबर हैं। मैदानी भाग अत्यन्त छोटे एवं बिखरे हैं। प्रति व्यक्ति भूमि का भाग कम है। जापानी फार्मों का इसी कारण औसत आकार लगभग 2·08 एकड़ है। 67 प्रतिशत खेत 2·5 एकड़ से भी छोटे हैं तथा 90 प्रतिशत खेत 4 5 एकड़ से कम हैं। केवल 1 4 प्रतिशत खेत 12 एकड़ से बड़े हैं। दक्षिणी भाग में जहां चावल की फसल होती है खेत बहुत छोटे $\frac{1}{10}$ एकड़ से $\frac{1}{4}$ एकड़ तक हैं पर उत्तर की ओर बढ़ने पर आकार बड़ा होता जाता है।

अब जापान की कृषि में यन्त्रीकरण तेजी पर है, उर्वरकों का प्रयोग बढ़ रहा है। अच्छे उन्नत बीजों की खपत बढ़ी है। अब अक 80 प्रतिशत किसान भूमि के स्वामी बन चुके हैं। सरकार द्वारा भूमि-कर घटाया गया है। 55 प्रतिशत भूमि के लिए सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हैं। नई कृषि भूमि की प्राप्ति के लिए दलदलों को सुखा कर तथा जल-निकास व्यवस्था को ठीक करने के प्रयत्न जारी हैं।

33 लाख हेक्टर (अर्थात् 55% क्षेत्र) भूमि पर चावल की खेती की जाती है। 3·15 लाख हेक्टर में औद्योगिक फसलों तथा बाकी क्षेत्र में गेहूं, जौ, जई, ज्वार, बाजरा आदि बोये जाते हैं। 1965 में चावल का उत्पादन 124 लाख टन था जब कि जौ और गेहूं का उत्पादन क्रमशः 9 लाख तथा 3 लाल टन था। सोयाबीन और मीठे आलू का उत्पादन क्रमशः 2·3 लाख टन तथा 49 लाख टन रहा। इस प्रकार आलू की फसल प्रगति पर है।

जापान की कृषि की सफलता गहन कृषि पर आधारित है और उसके व्यावसायिक दृष्टिकोण प्रबल हैं। जापान में प्रति एकड़ चावल का उत्पादन 2352 पौण्ड

है जबकि अमेरिका और भारत में क्रमशः 1390 और 772 पौण्ड ही है। इसी प्रकार अन्य फसलों में भी प्रति एकड़ उपज कहीं अधिक है। 1960 से 1965 के बीच ही कृषि उत्पादनों की उत्पत्ति में वैज्ञानिक तरीकों से 37·5 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

कृषि में देश की जनसंख्या का 33 प्रतिशत भाग लगा है और कृषि का उत्पादन राष्ट्रीय आय का लगभग 8 प्रतिशत भाग है। कृषक परिवारों का 21 प्रतिशत पूर्णतः कृषि पर आश्रित है। 37 प्रतिशत आंशिक रूप में उद्योगों तथा सेवा में नियोजित हैं जब कि 42 प्रतिशत मुख्यतः गैर-कृषि क्षेत्र में लगे हुए हैं। विभिन्न प्रकार के फलों—नारंगी, सेब का विकास द्रुतगति से हो रहा है। दुग्धशालाओं के निर्माण में भी प्रगति हो रही है।

अध्याय 3

जापान में औद्योगिक विकास

(Industrial Development in Japan)

जापान में आधुनिक उद्योगों के विकास की प्रक्रिया का शुभ आरम्भ वास्तव में मेजी पुनर्संस्थापन काल में हुआ जब स्वयं सरकार ने उद्यमकर्त्ता के रूप में अनेक नये उद्योगों की स्थापना की तथा अनेक पुराने उद्योगों को अपने हाथ में लेकर उन्हें आधुनिक मशीनों और यन्त्रों से सुसज्जित किया। वैसे मेजी पुनर्संस्थापन काल से पूर्व भी धनी सामन्तों और निजी उद्योगपतियों ने उद्योगों की स्थापना की पहल करदी थी। सरकार ने अपने अथक् प्रयत्नों से प्रथम विश्व-युद्ध तक जापान को सुदृढ़ औद्योगिक आधार प्रदान कर दिया था। प्रथम विश्व-युद्ध में उद्योगों के विकास की गति तेज रही फिर सरकार द्वारा नियंत्रण और नियमन की नीति अपनाई गई। विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी के समय उद्योगों में सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान, त्रिकेन्द्रीकरण आदि से स्थायित्व लाया गया। तत्पश्चात द्वितीय विश्व-युद्ध की तैयारी से सरकार ने बहुत से आधार भूत एवं सामरिक महत्व के उद्योगों को अपने हाथ में ले लिया। द्वितीय महायुद्ध की भयंकर विभीषिका में जापान की औद्योगिक व्यवस्था क्षत-विक्षत और अस्त-व्यस्त हो गई पर सरकार द्वारा फिर पुनर्निर्माण के लिए काफी विनियोग किया गया। निजी उद्योगपतियों को पूंजी लगाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए राजकोषीय तथा वित्तीय नीतियों में ढील दी गई। आज जापान का स्थान औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से गैर साम्यवादी राष्ट्रों में तीसरा है। युद्धोत्तर काल में सभी प्रमुख उद्योगों में तीव्र गति से प्रगति हुई है। उद्योगों के क्रमिक विकास का कुछ विश्लेषण निम्न प्रकार है :—

तोकुगावा शासन काल में उद्योगों का विकास

तोकुगावा शासन काल में जापान में उद्योग धन्धों में लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रधानता थी और अर्थ-व्यवस्था स्थायित्व एवं निर्धनता के निर्मम जाल में फंसी होने के कारण पूंजी के अभाव में बड़े २ आधुनिक उद्योगों के विकास में बहुत पीछे थी। यदा कदा धनी सामन्तों तथा निजी उद्योगपतियों के प्रयत्नों से बड़े २ नगरों—

क्यूटो, येडो तथा ओसाका में सूती, रेशमी तथा युद्ध सामग्री के कारखाने स्थापित किये गये थे पर उनमें भी पुराने ढंग की मशीनें लगी थीं। चूंकि तोकुगावा शासक पाश्चात्य विदेशियों के प्रति बहुत सशंकित थे। अतः पाश्चात्य देशों से पृथकत्व की नीति के कारण विदेशी व्यापार कम था और संकुचित बाजार, कृषि प्रधान अर्थ-व्यवस्था, तकनीकी ज्ञान के अभाव और पूंजी के अभाव के साथ २ सरकार की नीति में उद्योगों का विकास निम्न स्तर पर ही हो पाया था, 1831–42 के बाद कुछ प्रयत्न किये गये क्योंकि तोकुगावा शासक यह महसूस करने लगे थे कि पश्चिमी सामग्री से सुसज्जित होकर ही जापान, आक्रमणों के शिकार से बच सकता है और आक्रान्ताओं की श्रेणी में आ सकता है। अतः 1853 के बाद देश के औद्योगिक विकास के लिए फ्रांस तथा अमेरिका से ऋण लिया गया। 1853 में सामुद्रिक जहाजों के निर्माण पर से प्रतिबन्ध हटा दिया गया। नये २ आधुनिक तरीके के कारखानों की स्थापना की जाने लगी जिनमें सुरक्षात्मक उद्योगों को प्राथमिकता दी गई। संक्षेप में यह कहना ही उपयुक्त होगा कि जापान में उद्योगों का विकास तोकुगावा शासन के अन्तिम वर्षों में ही प्रारम्भ हुआ।

मेजी पुनर्संस्थापन काल में औद्योगिक विकास
(1868 से 1912)

मेजी पुनर्संस्थापन से जापान के औद्योगिक विकास के द्वार खुले और इस शासन के लगभग 44 वर्षों में औद्योगिक विकास का सुदृढ़ आधार तैयार हो गया। 1868 के बाद जापान में औद्योगिक विकास इतनी द्रुतगति से हुआ कि वह विश्व के आर्थिक विकास में अद्वितीय कहा जा सकता है। इस तीव्र औद्योगिक विकास के पीछे सरकार के प्रयत्न तथा सहयोग अधिक महत्वपूर्ण थे। पूंजी और साहसियों के अभाव में सरकार स्वयं उद्यमकर्त्ता के रूप में कार्य करने लगी। इस अवधि में सरकार ने आइची तथा हिरोशिमा में सूती मिलें, मायेबासी तथा तामिओकों में फ्रांसीसी तथा इतालवी नमूनों की रेशम मिलें, सप्परों में चीनी मिलें तथा आठवें दशक में पश्चिमी तकनीक पर नये कारखाने स्थापित किये गये जिनमें शिराकावा ह्वाईट टाईल वर्क्स, दी फुकुगावा सीमेन्ट वर्क्स, सेनजी वूलन वेव फैक्टरी, सोडियम तथा ब्लीचिंग पाउडर के कारखाने आदि प्रमुख उद्योगों की स्थापना की।

गोला-बारूद उद्योग की स्थापना तथा पुराने उद्योगों को आधुनिक यंत्रों से सुसज्जित करने के लिए सरकार ने सत्सुमा के सामन्त के अधिकार से कागोशिमा का पोत निर्माण यार्ड तथा दैमियो का नागासाकी लोह ढलाई का तोप कारखाना सरकार ने ले लिया। इसी प्रकार सेना की वर्दी के लिए ऊनी मिलें तथा अन्य क्षेत्र में इन्जीनियरिंग कारखानें स्थापित किये गये। इस प्रकार मेजी सरकार ने लोगुन

तथा दैमियो (Dymiyo) के कई उद्योगों को अपने अधिकार में लेकर उनका पुनर्गठन किया।

सरकार के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उद्यमकर्त्ता के रूप में काम करने का प्रभाव औद्योगिक विकास को द्रुत गति प्रदान करने में समर्थ हुआ। निजी उद्योगपतियों और जायबत्सू जैसी संस्थाओं को उद्योगों के क्षेत्र में प्रोत्साहित करने के लिए उन्हें आर्थिक अनुदान, सहयोग तथा सरकार द्वारा निर्मित उद्योगों को उचित मूल्यों पर बेचने की नीति का अनुसरण किया गया।

औद्योगिक विकास के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों के अभाव को दूर करने के लिए पश्चिमी देशों से विशेषज्ञों को बुलाया गया। देश से बाहर विदेशों में देश के विशेषज्ञों को आवश्यक अध्ययन के लिए भेजा गया। शासकीय आंकड़ों के अनुसार 1875 में सरकार के आधीन सेवा करने वाले विदेशियों की संख्या सर्वाधिक थी। उस समय 527 विदेशियों में 205 तकनीकी सलाहकार, 144 शिक्षक, 69 प्रबन्धक और प्रशासक तथा 36 कुशल कारीगर थे, बाद में 1880 में इनकी संख्या गिरकर 237 ही रह गई। सरकार ने अपने देश में ही प्रशिक्षण तथा तकनीकी इंजीनियरिंग शिक्षा के लिए उचित व्यवस्था की।

सरकार ने औद्योगिक विकास के लिए संचार एवं यातायात के साधनों का भी विकास किया। प्रारम्भिक वर्षों में क्रमबद्ध तरीके से स्फीतिजनक नीति का अनुसरण किया, इससे आय में वृद्धि और पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन मिला। सरकार द्वारा सामन्तों को दिये जाने वाला मुआवजा ऋण-पत्रों के रूप में दिया गया। जिससे नये २ उद्योग धन्धों, बैंकों तथा शेयर खरीदने में लगाया गया। मजदूरी पर नियन्त्रण रखने के लिए आवश्यक व्यवस्था की गई। कृषि क्षेत्र में अधिक भूमि कर वसूली से उद्योगों के विकास के लिए साधन जुटाये गये।

1894–95 में जापान-चीन युद्ध से उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन मिला। 1909 में खास २ उद्योगों को संरक्षण दिया गया बाद में 1911 में संरक्षण के क्षेत्र का और भी विस्तार कर दिया गया।

सरकार ने औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए करों में छूट या रियायतें प्रदान कीं। उद्योगों को जापान के औद्योगिक बैंक (Industrial Bank of Japan) से भी वित्तीय ऋण उपलब्ध कराये गये।

इस प्रकार सरकार के अथक् प्रयत्नों से जापान में लोहा इस्पात उद्योग, कोयला उद्योग, रासायनिक उद्योग, जहाज निर्माण उद्योग तथा इंजीनियरिंग उद्योगों का काफी विकास हुआ। 1896 में जापान में उसकी मांग का 40% लोहा उत्पादन किया जाने लगा। 1913 तक लोहा अयस्क का चीन और कोरिया से आयात कर जापान अपनी मांग का 48% लोहा-इस्पात उत्पादन करने लगा था। 1868 के

बाद कोयले की मांग की पूर्ति के लिए खुदाई के आधुनिक तरीके अपनाये गये। 1913 में कोयले की 100 खानें थीं और उनमें 2 लाख मजदूर लगे थे। कुहारा, मिशुबीसी, फुजिता तथा फुरूकावा परिवारों ने पेट्रोल के उत्पादन के लिए कई संगठन कायम किये। जलपोत निर्माण का कार्य नागासाकी, कोबे, जरागा और इशीकावा के कारखानों में सरकारी नियन्त्रण में हो रहा था। 1881 में ओसाका यार्ड तथा 1883 में ओनो यार्ड का निर्माण किया गया। 1896 में जहाज निर्माण प्रोत्साहन अधिनियम से आर्थिक अनुदान दिया जाने से 1913 तक जापान में 1000 टन से अधिक क्षमता के जहाज निर्माण कारखानों की संख्या 6 थी। इन्जीनियरिंग उद्योगों में 1887 में शिबाऊरा इंजीनियरिंग कारखाना खोला गया था। इसके बाद तोकियो विद्युत कम्पनी वल्वों का, ओकी विद्युत कम्पनी टेलीफोन तथा तार सामग्री, फूजीकुरा वायर कम्पनी तार का उत्पादन करती थी। 1892 में रेल इंजन बनाये जाने लगे। 1908 में कावासाकी डाक यार्ड ने रेल का कारखाना स्थापित किया। इसके अलावा शीशा, सीमेन्ट, कागज, चीनी, खाद और रासायनिक उद्योगों की प्रगति भी तेजी से हुई। मेजी पुनर्संस्थापन काल में औद्योगिक विकास की झलक निम्न तालिका से मिलती है :—

मेजी पुनर्संस्थापन काल में जापान में औद्योगिक विकास

(1868 से 1912)

वर्ष	कोयला (लाख टन)	कच्चा रेशम (लाख कि.ग्रा.)	सूती धागा (हजार पौंड)	पिग आयरन (हजार टन)
1884	1·47	26·97	13	18
1894	10·93	52·18	292	55
1904	37·05	74·88	695	133
1914	83·59	140 84	1666	474

1913 में जापान में उद्योगों में लगभग 20 लाख व्यक्ति काम कर रहे थे। सूती मिलों में तकुओं की संख्या 24 लाख थी। एशिया के सब भागों में जापानी कपड़े की धूम थी।

इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि जापान का औद्योगिक विकास मेजी पुनर्संस्थापन काल में बहुत ही तीव्र गति से हुआ। औद्योगिक दृष्टि से बिल्कुल पिछड़ा देश औद्योगिक राष्ट्र माना जाने लगा। इस सुदृढ़ आधार से जापान को बाद में अत्यधिक लाभ प्राप्त हुआ।

प्रथम विश्व-युद्ध तथा युद्धोत्तर काल में जापान का औद्योगिक विकास (1914–29)

प्रथम विश्व-युद्ध जापान के औद्योगिक विकास के लिए वरदान सिद्ध हुआ। मित्र राष्ट्रों के युद्ध में उलझ जाने से जापान के उनके बाजारों पर कब्जा जमाने का सुअवसर मिल गया। निर्यात में अप्रत्याशित वृद्धि से उद्योगों को विकास का पूर्ण प्रोत्साहन मिला। बैंक साख, सरकारी सहयोग तथा विस्तृत बाजार के कारण उद्योगों में विनियोग तीव्र गति से बढ़े। रेशम और सूती वस्त्र उद्योग को तो विशेष रूप से प्रोत्साहन मिला ही, साथ ही लोह–इस्पात तथा रासायनिक उद्योगों की भी आश्चर्य-जनक प्रगति हुई। प्रथम विश्व-युद्ध के पाँच वर्षों मे (1914–19) में फैक्टरी उत्पादन चार गुना हो गया तथा औद्योगिक संस्थानों की चूकता पूंजी तथा सुरक्षित कोष 94·4 करोड़ येन से बढ़कर 326·4 करोड़ येन हो गई। मजदूरों की संख्या दुगुनी तथा फैक्टरियों में तीन-तीन पारियों (Shifts) में काम होने लगा। सूती वस्त्र उद्योग में शक्ति संचालित करघों की संख्या 55 हजार से बढ़कर 110 हजार हो गई। कोयले के उत्पादन में 35% की वृद्धि हुई तथा इस्पात का उत्पादन 5 लाख टन सीमा को पार कर गया। यह सच है कि अगर प्रथम विश्व युद्ध न होता तो सम्भवतः जापान दिवालिया हो जाता क्योंकि पिछले 10–15 वर्षों में सैनिक तैयारी और औद्योगिक विकास के कारण जापान पर बहुत सारा विदेशी कर्जा चढ़ चुका था।

युद्ध काल की तेजी 1920 तक चली पर 1920 के बाद विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से सीमान्त इकाइयां बन्द होने लगीं, कीमतें कम होने से लाभांश घटने लगे। सरकार ने आर्थिक सहयोग व वित्तीय सहयोग से विनियोग को प्रोत्साहन दिया। 1923 में भूकम्प ने स्थिति को और बिगाड़ दिया। पर फिर पुनर्निर्माण की तेजी में औद्योगिक विकास को बल मिला। पर 1927 में "बैंक क्राइसिस" आर्थिक संकट के रूप में सामने आया। इन सब विषम परिस्थितियों में कुछ उद्योग निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर थे। कोयला उत्पादन 3 करोड़ टन हो गया था। लोह-इस्पात का उत्पादन 20 लाख टन तक पहुंच गया था। विद्युत शक्ति के विकास से नये २ कारखाने खुले जिनमें जलयान, कागज, चीनी व रासायनिक उद्योग थे। प्रथम विश्व-युद्ध तथा 1930 की विश्व-व्यापी मंदी के पूर्व जापान के औद्योगिक विकास का अन्दाजा निम्न तालिका से लगता है :—

जापान में प्रथम विश्व-युद्ध व युद्धोत्तर काल में औद्योगिक उत्पादन (1914–1929)

वर्ष	कच्चा रेशम (लाख टन)	कोयला (लाख टन)	तैयार इस्पात (लाख टन)	सीमेन्ट (लाख टन)	सूत (लाख पौंड)	विद्युत शक्ति (लाख कि वा.)
1913	37·41	213	255	6·45	6072	5·04
1920	58·34	292	533	13·53	7268	12·14
1925	82·84	315	1043	25·08	9747	27·68
1929	112·92	343	2034	43·49	11170	41·94

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि तैयार इस्पात के उत्पादन में लगभग 9 गुना, सीमेंट उत्पादन में सात गुना, विद्युत उत्पादन आठ गुना तथा सूत उत्पादन दुगुना हो गया। जहाँ 1909 में फैक्टरियों की संख्या 32·5 हजार थी वह 1919 में 44 हजार तथा 1929 में 59 हजार हो गई। उनमें संलग्न मजदूरों की संख्या क्रमशः 10 लाख, 20 लाख तथा 20·7 तक बढ़ गई। औद्योगिक उत्पादन का मूल्य 1909 में 77·2 करोड़ येन से बढ़कर 1919 में ही 651·8 करोड़ येन हो गया जबकि 1929 तक औद्योगिक उत्पादन का मूल्य 771·8 करोड़ येन हो गया था। इस प्रकार केवल 20 वर्षों में औद्योगिक उत्पादन मूल्य में लगभग दुगुनी वृद्धि द्रुत गति से विकास का परिचायक है।

विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी तथा द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व जापान का औद्योगिक विकास

(Industrial Development during and after Great Economic Depression)

1930 की विश्व-व्यापी मन्दी ने जापानी अर्थव्यवस्था को भी झकझोर दिया। मन्दी के कारण विदेशों में जापान के माल की मांग कम हो गई और आन्तरिक तथा विदेशी प्रतिस्पर्द्धा बढ़ जाने से उद्योगों के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ा। संयुक्त राज्य अमेरिका ने रेशम का आयात कम कर दिया और जापान का आर्थिक सन्तुलन बिगड़ जाने से 1931 में येन का अवमूल्यन किया गया। इससे निर्यात में वृद्धि हुई। उद्योगों को मन्दी के संकट से बचाने के लिए सरकार ने Industrial Rationalisation Bureau, Industrial Cartels, तथा 1931 में Stable Industries Control Act पारित किया। दूसरे देशों में स्वर्णमान के त्याग से जापान ने भी उनका अनुसरण किया, इससे स्थिति में कुछ सुधार हुआ।

विश्व-व्यापी मन्दी की समाप्ति के बाद फिर औद्योगिक विकास द्रुत गति से

होना प्रारम्भ हुआ। यहां तक कि 1939 तक उत्पादन बढ़ता ही गया। इसके मुख्य कारण तीन थे। पहला चीन तथा मन्चूरिया में जापानियों द्वारा उद्योगों की स्थापना के लिए सारे उपकरण, मशीन आदि सामान जापान से ही भेजे गये। दूसरा सरकार का यौद्धिक तैयारियों पर भारी व्यय और तीसरा जापान सरकार द्वारा मंचूरियन विकास पर अधिकाधिक व्यय। राष्ट्रीय उत्पादन का 17% भाग यौद्धिक तैयारियों में खर्च हो रहा था। 1930 से 1936 के 6 वर्षों में औद्योगिक उत्पादन 60% बढ़ गया जबकि उत्पादन में 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र में लघु उद्योगों के स्थान पर बड़े एवं भारी उद्योगों का विकास तेजी से हुआ। 1929 के आधार वर्ष पर औद्योगिक उत्पादन का सूचनांक 1933 में 92 ही रह गया था, वह 1936 में 151 तथा 1937 में 171 हो गया। पूंजीगत उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि और भी तीव्र रही जैसा कि निम्न तालिका से विदित होता है :—

औद्योगिक उत्पादन (प्रमुख उद्योग) 1930–37

वर्ष	तैयार इस्पात (लाख टन)	कोयला (लाख टन)	बिजली उत्पादन (क्षमता लाख K.W.)	सूती कपड़ा (करोड़ गज)	पोत निर्माण क्षमता (हजार ग्रास टन)
1929	20·34	343	41·94	179	165
1931	16·63	280	43·00	141.4	54
1936	45·39	418	67·77	271	—
1937	58·00	452	72·76	264.4	446

रेशम उद्योग के उत्पादन में कमी हुई। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि मन्दी के समय सब उद्योगों का उत्पादन कम हो गया था पर बाद में उत्पादन बढ़ गया। औद्योगिक संरचना में लघु उद्योगों के स्थान पर बड़े उद्योगों के विकास में तेजी रही। यही कारण है कि जहां 1930 में औद्योगिक उत्पादन में 62 प्रतिशत माल लघु तथा मध्यम उद्योगों से उत्पादित होता था वह घटकर 1937 में केवल 42 प्रतिशत और 1942 तक तो केवल 27 प्रतिशत ही रह गया। इसके विपरीत भारी एवं वृहद् उद्योगों का कुल औद्योगिक उत्पादन में भाग 1930 में 38% से बढ़कर 1937 में 58% तथा 1942 में तो 73 प्रतिशत तक पहुँच गया। कुल औद्योगिक उत्पादन 1940 तक बढ़ता ही गया। 1934–36 के आधार वर्ष पर औद्योगिक उत्पादन का सूचनांक 1937 में 130 तथा 1940 में 149 तक पहुँच गया था।

द्वितीय विश्व-युद्ध एवं युद्धोत्तर काल में जापानी उद्योगों का विकास

(Japanese Industries during & after Second World War)

जहां प्रथम विश्व-युद्ध जापान के उद्योगों के लिए वरदान सिद्ध हुआ वहां भाग्य के पलटा खाने से द्वितीय विश्व-युद्ध जापानी उद्योगों के विनाश का कारण बना। युद्ध की विभीषिका में जापान की सारी अर्थ-व्यवस्था तहस-नहस हो गई। जब तक जापान ने 1945 में आत्म समर्पण किया तब तक तो जापान की औद्योगिक क्षमता का 75% जहाजरानी क्षमता का 80% रासायनिक उद्योगों का 70% भाग नष्ट प्रायः हो चुका था। निर्यात व्यापार की समाप्ति, औद्योगिक एवं वाणिज्य संस्थानों का समापन, बड़े २ नगरों का वीरान हो जाना तथा रहा सहा नागासाकी तथा हिरोशिमा की बर्बरतापूर्ण बमबारी में नष्ट हो जाना युद्ध की विभीषिका की करुण कहानी बन गया था। सभी उद्योगों का उत्पादन बुरी तरह घट गया था। 1934–36 की तुलना में 1946 में औद्योगिक उत्पादन 27·6 प्रतिशत कम हो गया था। अगर युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों की ओर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि सामरिक महत्व के उद्योगों के आकार, क्षमता तथा उत्पादन में आपतकालीन नियन्त्रण से जहां 1942 में इन उद्योगों का उत्पादन राष्ट्रीय उत्पादन का 31 प्रतिशत था वह दो साल में बढकर 1944 में 52% हो गया। इन उद्योगों में 95 लाख व्यक्ति काम कर रहे थे जो असैनिक मजदूरों का लगभग 30% भाग था। जापान युद्ध में पूरी तैयारी के साथ उतरा। 1941 में जापान ने 5000 वायुयान, 48 हजार मोटरें, 5 लाख ग्रास टन क्षमता के जलपोत, 556 लाख टन कोयला, तथा 68 लाख टन लोह-इस्पात पिण्ड उत्पादन किये थे। विद्युत क्षमता 1931 के मुकाबले दुगुनी थी। 1944 में हवाई जहाजों की उत्पादन संख्या 26364 थी, इस्पात क्षमता 140 लाख टन पहुँच गई थी। पर फिर 1945 में बर्बरतापूर्ण बमबारी से 66 औद्योगिक नगरों का 40% भाग बरबाद हो गया। बस्तियां हाथ से निकल गई और समूची औद्योगिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई।

युद्धोत्तर काल में उद्योगों का पुर्निर्माण

जापान की जनता तथा सरकार ने युद्धोत्तर काल में युद्ध जर्जरित अर्थ-व्यवस्था के पुर्निर्माण, सुदृढ़ीकरण तथा पुनर्संगठन का कार्य जितनी तत्परता, दक्षता तथा अथक् परिश्रम से पूरा किया वह विश्व के इतिहास में अद्वितीय है। 1945 से 1952 तक पुर्निर्माण का कार्य पूरा किया तो 1953 से 1959 तक की अवधि में आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया। तृतीय स्तर पर 1959 से अब तक परिमाणात्मक विस्तार, औद्योगिक पुनर्संगठन और गुणात्मक विकास की प्रक्रिया प्रगति पर है। जापान को 1945 से 1948 तक के वर्षों में यद्यपि अमेरिका, विश्व बैंक, पुर्निर्माण वित्त बैंक आदि से काफी आर्थिक सहायता मिली पर नेतृत्व के अभाव और मित्र

राष्ट्रों के बन्धन एवं नीतियों के कारण पुनरुत्थान का कार्य तेजी से न हो सका। 1949 में प्रतिबन्धों में कमी से विकास की गति तेज हुई। कोरिया युद्ध जापान के पुनर्निर्माण के लिए वरदान सिद्ध हुआ और जापान के उद्योगों के विकास की ज्योति जली। 1952 के नये संविधान से जापान को मित्र राष्ट्रों के नियन्त्रण स मुक्ति मिली। सैनिक व्यय कम होने से सरकार तथा जनता का सारा ध्यान उद्योगों तथा व्यापार के विकास पर केन्द्रित हुआ। परिणामस्वरूप 1953 से 1959 की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में औसत 10·9 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि हुई। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विज्ञप्ति के अनुसार 1958–67 के दस वर्षों में जापान के औद्योगिक उत्पादन में सर्वाधिक वृद्धि 245 प्रतिशत हुई है जबकि इस अवधि में रूस में 121 प्रतिशत, संयुक्त राज्य अमेरिका में 71% तथा ब्रिटेन में केवल 38 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई है। जापान में युद्धोत्तर काल में औद्योगिक उत्पादन की प्रगति निम्न सूचनांकों से स्पष्ट होती है :—

जापान में औद्योगिक उत्पादन का सूचनांक 1937 से 1960 तक

(1934–36 आधार वर्ष=100)

वर्ष	सूचनांक
1937	130
1940	319
1946	31
1951	114
1955	181
1960	410

युद्धोत्तर काल में पुनर्निर्माण के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन में ही वृद्धि नहीं हुई बल्कि औद्योगिक संरचना में भी परिवर्तन हो गया। जापान के औद्योगिक उत्पादन में जो प्रगति हुई उनमें सूती वस्त्र उद्योग के स्थान पर रासायनिक मशीनरी उद्योगों में प्रगति अपेक्षाकृत बहुत तेज रही है। यह निम्न सूचनांक से प्रतीत होता है :—

औद्योगिक उत्पादन सूचनांक

1934–36=100)

उद्योग	1937	1960
टेक्सटाईल्स	144	139
मेटल्स्	131	484
केमीकल्स	144	623
मशीनरी	148	1110

उपर्युक्त तालिका से जापान की औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था में पूर्ण रूप से परिवर्तन की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। जहां पहले छोटे पैमाने तथा उपभोग उद्योगों की औद्योगिक संरचना में प्रमुखता थी किन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद धात्विक, रासायनिक तथा आधार भूत इंजीनियरिंग उद्योगों का विशेष महत्व बढ़ गया है। सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन तो युद्ध पूर्व स्तर पर भी 1960 तक नहीं पहुँच पाया था पर 1960 में इस्पात का उत्पादन 1937 की तुलना में चार गुना बढ़ गया। इस समय जापान जहाज निर्माण में विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक है। लोह-इस्पात उत्पादन में तीसरा, मोटर गाड़ियों के उत्पादन में छटा है। इसी प्रकार कुछ रासायनिक उद्योगों में भी जापान का उच्च स्थान है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि जापान ने औद्योगिक क्षेत्र में तीव्र प्रगति की है। अब उसके उद्योगों में उपभोग उद्योगों के स्थान पर पूंजीगत तथा उत्पादक उद्योगों का महत्व बढ़ गया है। उसकी औद्योगिक प्रगति अब जिस दर से बढ़ रही है वह समाजवादी देशों के समान है। 1958–1967 की अवधि में जापान में विश्व के सब देशों से अधिक औद्योगिक प्रगति रही है। इसके पीछे जनता का कठोर परिश्रम, उच्च नैतिक-स्तर, देश के प्रति राष्ट्रीयता और भौतिक विकास के प्रति प्रेम है। यहां की सरकार मेजी पुनर्संस्थापन काल से औद्योगिक विकास के प्रति सजग रही और विभिन्न नीतियों से उद्योगों को जिस स्तर पर पहुँचा दिया है वह उनकी दूरदर्शिता, परिश्रम और लक्ष्य के प्रति सुदृढ़ता है। जापान सरकार की औद्योगिक नीति का विवरण आप "आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका" के अध्याय में "औद्योगिक विकास और सरकार" के शीर्षक के अन्तर्गत देखिये। जापान में द्रुत गति से औद्योगीकरण राज्य द्वारा सहयोग एवं प्रोत्साहन का ही परिणाम है। संरचना में परिवर्तन जापान के औद्योगिक विकास की प्रमुख विशेषता रही है।

अध्याय **4**

जापान के प्रमुख उद्योगों का क्रमिक विकास

(Growth of Principal Industries)

जापान आज विश्व का विकसित औद्योगिक राष्ट्र है। अब इसके उद्योगों में जो विविधता और संरचनात्मक परिवर्तन हुआ है वह जापान के औद्योगिक विकास की मूल सफलता है। जापान के प्रमुख उद्योगों में हम सूती वस्त्र उद्योग, रेशम उद्योग, लोह एवं इस्पात उद्योग, जहाज निर्माण उद्योग, कोयला उद्योग, रासायनिक उद्योग, मोटर उद्योग तथा ऊनी वस्त्र उद्योग, सीमेंट उद्योग, कांच उद्योग आदि को ले सकते हैं। इसके अलावा भी अनेक उद्योग हैं जो वहाँ की अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं।

(1) सूती वस्त्र उद्योग
(Cotton Textile Industry)

सूती वस्त्र उद्योग, जो जापान में पहले कृषि के सहायक धन्धे के रूप में विकसित हुआ, अन्ततः जापान की अर्थ-व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण उद्योग सिद्ध हुआ। जापान के औद्योगीकरण में सूती वस्त्र उद्योग ने ही कारखाना प्रणाली की नींव डाली और इस उद्योग की अभूतपूर्व सफलता से आधुनिक उद्योगों का मार्ग प्रशस्त हुआ।

वैसे तो जापान में सूती वस्त्र उद्योग छोटे-छोटे परम्परागत उद्योगों के रूप में मेजी पुनर्संस्थापन काल के बहुत पहले ही पनप चुका था पर आधुनिक ढंग का पहला सूती वस्त्र कारखाना 1867 मे सत्सुमा के एक सामन्त ने स्थापित किया था।

1868 में मेजी पुनर्संस्थापन के साथ २ पाश्चात्य ढंग पर औद्योगिक विकास की प्रवृत्ति प्रबल हुई। सरकार ने आवश्यक वातावरण तैयार किया। 1870 तथा 1872 में क्रमशः दूसरा और तीसरा कारखाना स्थापित हुआ। सरकार ने स्वयं भी आईची और हिरोशिमा में सूती मिलें खोलीं तथा निजी व्यक्तियों को भी मशीनें, यंत्र आदि आयात कर आसान किश्तों पर उपलब्ध कराये गये। 1882 में शिव सूवा द्वारा

ओसाका स्पिनिंग मिल की स्थापना की गई जिसमें 10 हजार तकुए थे और विद्युत शक्ति द्वारा संचालित की गई थी। इस प्रकार के उपक्रमों की सफलता के बावजूद जापान में 1886 तक तकुओं की कुल संख्या 90 हजार से भी कम थी।

1886 से सूती वस्त्र उद्योग में तेजी का रुख रहने से तथा चीन-जापान युद्ध के कारण सूती वस्त्र उद्योग का तेजी से विकास हुआ। अधिक लाभ से आकर्षित हो नई मिलों की स्थापना की गई। जापान को कोरिया तथा चीन का बाजार मिल जाने से तथा सस्ता बालिका श्रम मिल जाने से उद्योग में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। 1896 में भारत से सस्ती दर पर कपास उपलब्ध होने लगी। इसके कुछ समय बाद जापान में भी कपास आयात की जाने लगी। धीरे २ उत्पादन का कार्य शक्ति संचालित करघों पर होने लगा। 1900 में 7 लाख हाथ करघे तथा 32 हजार शक्ति संचालित करघे थे। बुनकर गृहों की स्थापना करने की प्रवृत्ति से उत्पादन बढ़ा और निर्यात वृद्धि ने इसके अधिक उत्पादन को प्रोत्साहित किया। 1912 में 147 सूती मिलें थीं और उनमें 25 लाख तकुए थे।

प्रथम विश्व-युद्ध से पूर्व जापान में सूती वस्त्र उद्योग तेजी से विकसित हो रहा था। इसका कुछ अन्दाजा निम्न आंकड़ों से लगता है :—

वर्ष	मिलों की संख्या (सूत कातने वाली)	तकुओं की संख्या (लाख)	सूत का उत्पादन (लाख पौंड)
1893	40	3·82	880
1903	51	13·81	3170
1907	42	15·40	3930
1913	44	24·15	6070

प्रथम विश्व-युद्ध से द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ तक
(1914 से 1939 तक)

प्रथम-विश्व युद्ध से पाश्चात्य राष्ट्र युद्ध में उलझ गये और जापान को उनके विस्तृत बाजार पर कब्जा करने का अच्छा मौका मिला। प्रतिस्पर्द्धा के अभाव में जापानियों ने काफी लाभ कमाया। मूल्य स्तर भी ऊंचा था इससे अप्रत्याशित लाभ हुआ। 1920 के बाद में युद्धोतर काल की मन्दी आई और 1923 में भूकम्प से क्षति भी हुई। उद्योग की प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति को बढ़ाने तथा अभिनवीकरण की प्रवृत्तियों को कार्यान्वित करने के लिए एकीकरण की नीति अपनाई गयी। परिणाम-स्वरूप उद्योग के 56 प्रतिशत तकुए 17 बड़ी २ मिलों के नियन्त्रण में आ गये। उद्योग में कताई और बुनाई दोनों साथ २ किये जाने लगे। उद्योग संकट से उबर ही रहा था कि 1930 में विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी ने जापान के इस विकासशील

उद्योग को अपनी चपेट में ले लिया। बाजार का अभाव, गिरते हुए मूल्यों, निर्यात में अत्यधिक कमी से उद्योग का सकट वढ़ गया पर फिर 1931 में येन के अवमूल्यन तथा बाद में जापान द्वारा भी स्वर्ण मुद्रा-मान का परित्याग करने से उद्योग को विकास का अच्छा मौका मिला। 1936 तक तो यह विश्व का प्रमुख निर्यातक देश हो गया था। जापान में मन्दी के बाद इस उद्योग में प्रगति के कारणों में मुद्रा का अवमूल्यन, वित्तीय स्थिति में सुधार तथा व्यापारियों का सहयोग महत्वपूर्ण था। इसके अलावा इस उद्योग में शक्ति संचालित करघों का तेजी से विकास हो रहा था। कम लागत पर निर्यात की क्षमता से पाश्चात्य देश जापान पर राशि पातन (Dumping) का आरोप लगाने लगे थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उद्योग का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। सूती वस्त्र उद्योग की प्रगति का क्रम निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

जापान में सूती वस्त्र उद्योग का विकास
(1914 से 1939)

वर्ष	तकुओं की संख्या (लाख सं.)	सूत का उत्पादन (लाख पौंड)	सूती माल का निर्यात (करोड़ वर्ग गज)	सूत का निर्यात (करोड़ पौंड)
1913	24·15	6070	23·5	18·7
1920	38 14	7960 (औसत 1919-23)	68·9	11·7
1925	51·86	10260 (औसत 1925-29)	129·8	12·4
1929	66·50	—	179·1	2·7
1931	—	11580 (औसत 1930-34)	141·4	1·3
1934	94·20	—	257·7	2·6
1937	122 97	14580 (औसत 1935-37)	264·4	5·2

इससे यह स्पष्ट होता है कि विदेशों में सूत के निर्यात की बहुत कमी हो गई जबकि सूती निर्मित माल में वृद्धि हो गई। इसका मुख्य कारण यह था कि जापान में करघों की संख्या में तेजी से वृद्धि। हाथ करघों के स्थान पर शक्ति संचालित करघों या विस्तृत शक्ति करघों में तेजी से वृद्धि हुई। यह निम्न तालिका से प्रतीत होता है :—

सूती उद्योग में करघों की संख्या

(हजार संख्या)

करघों की किस्म	वर्ष 1922	1926	1926	1936
हाथ करघे	165	105	86	51
सीमित शक्ति करघे	122	116	106	76
विस्तृत शक्ति करघे	96	146	171	266

1935 में सूती वस्त्र उद्योग चरम सीमा पर था। उस समय 300 मिलों में 130 लाख तकुए तथा 33 लाख करघे कार्य कर रहे थे। कपड़े का उत्पादन 333 करोड़ वर्ग मीटर तथा सूत का उत्पादन 64 करोड़ किलोग्राम था। 1937 में मिलों की संख्या 285 थी और उनमें 125 लाख तकुए तथा 116 हजार करघे थे।

द्वितीय विश्व-युद्ध तथा युद्धोत्तर काल में जापानी सूती वस्त्र उद्योग

द्वितीय विश्व-युद्ध से जापान के सूती वस्त्र उद्योग का पतन प्रारम्भ हुआ। युद्ध काल में बहुत सी सूती मिलों को युद्ध की सामग्री बनाने वाले कारखानों में परिवर्तित कर दिया गया और निर्यात भी बहुत कम हो गया। कपास के आयात में कमी से भी उद्योग को धक्का पहुँचा। युद्ध में क्षति से 1945 में सूती मिलों की संख्या 38 ही रह गई। करघों तथा तकुओं की संख्या भी क्रमशः 23 हजार तथा 20 लाख ही रह गई। युद्ध की विभीषिका ने उद्योग को जर्जर बना दिया। युद्ध के बाद मांग के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ। अतः अच्छी किस्म के कपडे की मांग बढ़ने लगी।

इसके अलावा सैनिक शासन ने इस उद्योग के तकुओं की संख्या-सीमा 40 लाख ही निर्धारित की। इससे यह उद्योग बढ़ती हुई मांग की पूर्ति करने में असमर्थ रहा। 1953 में वस्त्र उद्योग में तकुओं की संख्या 75 लाख पर स्थिर रही फिर बाद में विकास होता रहा। 1955 में सूत का उत्पादन 82·7 करोड़ पौंड था और तकुओं की संख्या 81·68 लाख थी पर 1960 में सूत का उत्पादन 119·9 करोड पौंड रहा जबकि तकुओं की संख्या 77·81 लाख ही रह गई।

जापान में सूती वस्त्र उद्योग के पनपने तथा बहुत सफल रहने के पीछे वहां की आर्द्र जलवायु, जापान की भौगोलिक स्थिति, एशियाई देशों का विस्तृत बाजार, सस्ती विद्युत शक्ति, सरकारी प्रोत्साहन, कुशल एवं सस्ते मजदूर, श्रेष्ठ जहाजी बेड़ा तथा उत्तम उत्पादन एवं बिक्री व्यवस्था बहुत सहयोगी कारण सिद्ध हुए हैं। युद्धोत्तर काल में मशीनों में स्वचालिता से उद्योग की उत्पादन लागत बहुत घटी है।

वर्तमान स्थिति

जापान का सूती वस्त्र उद्योग युद्ध से धराशायी होकर फिर अपने पैरों पर खड़ा हो गया है। यद्यपि उत्पादन अब भी युद्ध पूर्व स्तर के आसपास ही है। इस उद्योग की 109 बड़ी मिलें 10 बड़ी 2 कम्पनियों के हाथ में हैं। 8200 स्वतन्त्र उत्पादक हैं। इन सब में मिलाकर 2·50 लाख मजदूरों को रोजगार प्राप्त है। इनमें लगभग 90 प्रतिशत महिला मजदूर हैं। ये राष्ट्र के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत भाग उत्पादन करते हैं। विश्व-युद्ध के पूर्व जापान के निर्यात में 50 प्रतिशत भाग सूती वस्त्र उद्योग का था, वह अब घट कर 23 प्रतिशत रह गया है। अब कृत्रिम वस्त्र का उत्पादन बढ़ रहा है। 1966 में जापानी मिलों ने 5 लाख टन सूत तथा 292 करोड़ वर्गमीटर कपड़े का उत्पादन किया है।

(2) रेशम उद्योग
(Silk Industry)

जापान का दूसरा प्राचीन उद्योग रेशम उद्योग रहा है। तोकुगावा शासन में भी इस उद्योग के विकास की प्रक्रिया प्रबल हो गई थी। 1855 में रेशम की मांग एकाएक बढ़ जाने से इसके उत्पादन को भी प्रोत्साहन मिला।

मेजी पुनर्संस्थापन के साथ २ इस उद्योग में पाश्चात्य ढंग की मिलों का विकास करने के लिए प्रयास प्रारम्भ हुए। 1868 से 1883 तक की अवधि में रेशम का उत्पादन दुगुना तथा निर्यात ढ़ाई गुना हो गया 1893 के बाद इस उद्योग के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। ग्रामीण परिवारों के स्थान पर विशेष सस्थाएं कार्य करने लगीं। वैसे सरकार ने 1870 में मायेबासी और तामिओंका में फ्रांसीसी और इतालवी नमूनों के दो कारखाने खोले थे। 1877 में रद्दी रेशम से सूत बनाने का एक कारखाना भी खोला गया जो 1887 में मिशुई घराने के आधिपत्य में चला गया।

इस उद्योग की प्रगति तेजी से होती गई 1914 तक यह उद्योग छोटी २ इकाईयों के रूप में चलता था। विद्युत संचालित करघे कम थे। मिल उद्योग के केन्द्र फुकुई, क्यूटो तथा ईशीकावा थे। प्रथम विश्व-युद्ध से 1929 तक उद्योग में चमत्कारी प्रगति हुई। ऊंचे मूल्यों से परिवारों की आय बढ़ी तथा विदेशी बाजार में खूब बिक्री हुई। 1930 की विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी में यह उद्योग भी अवनति के गर्त में चला गया। जापान में रेयन का उपयोग होने से रेशम की माँग कम हो गई। दूसरे बाजारों में भी इस नये प्रतिस्थापन का प्रभाव पड़ा। पर 1933 से 1937 तक उद्योग में तेजी से वृद्धि हुई।

द्वितीय विश्व-युद्ध में निर्यात बिल्कुल घट गया। युद्ध के दौरान शहतूत के बगीचों को खाद्यान्न के अभाव में खेतों के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा। अब नकली

रेशम तथा कृत्रिम रेशे की उत्पत्ति बढ़ने से रेशम उद्योग विकास नहीं कर पा रहा है ।

1965 में जापान ने 175·57 मिलियन वर्ग मीटर रेशम कपड़ा तैयार किया। देश के लगभग 40% किसान किसी न किसी प्रकार रेशम व्यवसाय से सम्बद्ध हैं। यह उद्योग अब भी जापान सागर तट पर फुकुई एवं ईशीकावा तथा क्यूटो और नगोया आदि केन्द्रों में चल रहा है ।

क्रमिक विकास के लिए निम्न तालिका उपयोगी सिद्ध होगी:—

कच्चे रेशम का उत्पादन और निर्यात
(1868—1960)

वर्ष या वार्षिक औसत	उत्पादन लाख क्वान)	निर्यात मूल्य (लाख येन)
1868	2·8	60
1889–93	11·1	270
1899–1903	19·2	690
1909–13	33·8	1440
1919–23	63·2	5310
1929	112·9	7810
1935–36	114·6	3900
1945–49	19·10	—
1950–54	35·8	—
1960	48·1	—

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि रेशम में 1929 तक अबाध गति से प्रगति हुई। यद्यपि यह उद्योग कृषि पर आधारित होने से कभी-कभी कच्चे माल के अभाव में बाधा का शिकार रहा है । विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी से पूर्व उत्पादन और निर्यात चरम सीमा पर पहुँच गये थे बाद में 1932 से उत्पादन बढ़ा पर विश्व-युद्ध से इस उद्योग को भारी क्षति पहुँची। अब तो रेशम उद्योग 1919–23 के वार्षिक स्तर पर ही पहुँचा है जो 1930–34 के वार्षिक उत्पादन का आधे से भी कम उत्पादन है। निर्यात का भी महत्व कम रहा है ।

(3) लोहा एवं इस्पात उद्योग
(Iron & Steel Industry)

लोहा एवं इस्पात उद्योग आजकल किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति का मापदण्ड माना जाता है। आज जापान का विश्व के लोह-इस्पात उत्पादन में तीसरा स्थान है। इस उद्योग का विकास मुख्य रूप से मेजी शासन काल में प्रारम्भ हुआ। 1887 में पहली वायु भट्टी तथा 1891 में पहली खुली भट्टी लगाई गई। पर आधुनिक ढ़ंग का पहला कारखाना सन् 1901 में स्थापित किया गया। सरकारी सहायता से निजी उद्योगपतियों ने भी कई छोटे-छोटे कारखाने स्थापित किये। इस उद्योग को 1909 में संरक्षण प्रदान किया गया।

1914 में प्रथम विश्व-युद्ध के कारण, हथियारों का उत्पादन तेजी से होने के कारण इस्पात की मांग बढ़ गई और कीमतें ऊँची चली गईं। जापानियों ने इसका लाभ उठाया। कई नये कारखाने स्थापित किये गये तथा उत्पादन में भी तेजी से वृद्धि हुई। युद्धोपरान्त भी प्रगति अबाध गति से होती रही क्योंकि युद्ध के बाद पुर्नानिर्माण तथा यातायात के क्षेत्र में विकास होने से लोहा-इस्पात की मांग निरन्तर बढ़ रही थी। 1901 में क्युशु-द्वीप के यावता नामक स्थान पर स्थापित सरकारी कारखाना 'इम्पीरियल स्टील वर्क्स" बहुत प्रगति कर चुका था और कुल उत्पादन का बहुत बड़ा भाग इसके अन्तर्गत नियंत्रित था। 1896 से 1929 तक इस उद्योग में आश्चर्यजनक प्रगति हुई।

1930 की विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी का इस उद्योग पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। उत्पादन गिर गया। पर फिर उद्योग को सुदृढ़ करने के प्रयत्न किये जाने लगे। 1934 में इम्पीरियल स्टील वर्क्स तथा 6 निजी कारखानों को मिला कर एक "जापान लोहा-इस्पात कम्पनी" की स्थापना की गई। इस प्रकार यह उद्योग 1937 तक तीव्र गति से बढ़ता गया क्योंकि आर्थिक मंदी के बाद जापान सरकार युद्ध-सामग्री तैयार करने में संलग्न थी और इस उद्योग का अपना सामरिक महत्व था। इस उद्योग की प्रगति मेजी पुनर्संस्थापन से द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ तक तेजी से हुई। यद्यपि 1930 में इसको बहुत बड़ा धक्का पहुँचा था।

1930 से 1936 के बीच कच्चे लोहे का उत्पादन दुगुना तथा तैयार इस्पात का उत्पादन दुगुने से कुछ अधिक था। 1936 तक इस्पात का निर्यात भी प्रारम्भ हो गया था। अब जापान अपनी आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति में तो समर्थ था ही पर विदेशों को भी निर्यात करने लग गया था। इससे लोह अयस्क आयात की मात्रा बढ़ गई थी। इस उद्योग के क्रमिक विकास का संक्षिप्त परिचय निम्न तालिका से मिलता है—

मेजी शासन से द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व लोह-इस्पात उद्योग का उत्पादन (1896 से 1937 तक)

(हजार मैट्रिक टनों में)

वर्ष	कच्चा लोहा	तैयार इस्पात
1896	26	1
1906	145	69
1913	243	255
1920	521	533
1925	685	1043
1929	1087	2034
1931	917	1663
1936	2008	4539
1937	—	5800

स्रोत—Deptt. of Commerce & Industry.

द्वितीय विश्व-युद्ध एवं युद्धोत्तर काल में लोह-इस्पात उद्योग

युद्ध के साथ-साथ उद्योग में प्रगति जोर पकड़ती गई क्योंकि इस्पात की आवश्यकता युद्ध के कारण से बढ़ गई थी। 1938 में जहां 55 लाख टन कच्चा लोहा तथा तैयार इस्पात का उत्पादन 68 लाख टन था वहां तैयार इस्पात का उत्पादन 1943 में 75 लाख टन हो गया। 1944 में उत्पादन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था पर फिर बाद में अणुबमों की मार और जापान की युद्ध में पराजय ने अन्य उद्योगों की तरह इस उद्योग को भी धराशायी कर दिया। 1946 में लोहा एवं इस्पात का उत्पादन क्रमश: 2 लाख टन तथा 5 लाख टन था। जो राष्ट्र 1941 में विश्व के लोह-इस्पात उत्पादन में पांचवां स्थान प्राप्त कर चुका था फिर से पिछड़ गया। उत्पादन की कमी के कारण युद्ध से क्षति, कच्चे माल के आयात में कमी तथा कोयले का अभाव था।

1947 में सैनिक शासन द्वारा इस उद्योग को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न शुरू हुए। 1949 में पिग आयरन तथा इस्पात का उत्पादन क्रमश: 15 लाख टन तथा 31 लाख टन हो गया। 1950 में "जापान लोह-इस्पात कम्पनी" जिसका कि इस उद्योग पर 1934 से एकाधिकार रहा, भंग करदी गई और लोह-इस्पात उद्योग के सभी कारखानों को दो कम्पनियों से समूहबद्ध कर दिया गया —

(1) यावता लोह्-इस्पात कम्पनी
(Yawata Iron & Steel Company)

(2) फूजी लोह्-इस्पात कम्पनी
(Fuji Iron & Steel Company)

1950 में लोहा एवं इस्पात का उत्पादन क्रमशः 22 लाख तथा 48 लाख टन था।

1950 से 1952 के तीन वर्षों में कोरिया-युद्ध के कारण तथा जापान को मित्र राष्ट्रों से संवैधानिक मुक्ति मिलने से पुनः इस उद्योग को नवीन चेतना मिली और उत्पादन बढ़ता ही चला गया जो 1966 में 477·7 लाख टन पहुँच गया है। अब जापान का विश्व में तीसरा स्थान है। 1950 के बाद लोह्-इस्पात के चार बड़े कारखाने और स्थापित किये गये। ये सब मिल कर बड़े 6 (Big Six) के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनका इस उद्योग पर पूर्ण एकाधिकार है। इस उद्योग में लगभग 335 अरब येन पूंजी लगी हुई है। 1950 के बाद उद्योग की प्रगति का अवलोकन निम्न तालिका में दिया जा रहा है—

1950 से जापान में लोह्-इस्पात उत्पादन

(लाख टनों में)

वर्ष	कच्चा लोहा	तैयार इस्पात
1950	22·3	48·4
1955	52·2	94 0
1960	119·0	221·4
1965	275	411 6
1966	295	477·7

जापान के लोह्-इस्पात उद्योग को अपनी आवश्यकता के लोह्-अयस्क, स्क्रेप-स्टील तथा कोकिंग कोयले के लिये आयात पर निर्भर करना पड़ता है। कोकिंग कोयला अमेरिका से तथा लोह्-अयस्क भारत, मलाया आदि देशों से मंगाया जाता है। लोह्-इस्पात का निर्यात सं. रा. अमेरिका, रूस तथा भारत आदि देशों को किया जाता है।

इस उद्योग का जापान की अर्थव्यवस्था में महत्व इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि कुल उत्पादन मूल्य में लोह्-इस्पात का उत्पादन मूल्य 8·8 प्रतिशत भाग है तथा कुल निर्यात में इसका 16·5 प्रतिशत भाग है। जापान में ज्यादातर पिग आयरन वायु भट्टियों (Blast Furnances) तथा क्रुड इस्पात खुली भट्टियों (Open

Hearth Furnances) में तैयार किया जाता है। इस दशाब्दी से विद्युत भट्टियों का प्रयोग बढ़ रहा है। इस उद्योग में लगभग 8 लाख श्रमिक रोजगार में लगे हुए हैं।

इस उद्योग के मुख्य क्षेत्र–यावता-मौजी क्षेत्र, तोक्यो-याकोहामा क्षेत्र, ओसाका-ह्यूगो क्षेत्र, कामेशी क्षेत्र, मोरांरा क्षेत्र हैं। इनमें कुल लोह-इस्पात का 90% उत्पादन होता है और विदेशों को निर्यात से जापान प्रति वर्ष 60 से 80 करोड़ डालर कमाता है।

(4) कोयला उद्योग
(Coal Industry)

कोयला उद्योगों की शक्ति का प्राचीन स्रोत है अतः जापान में मेजी शासन से पूर्व धनिक परिवारों (जायबत्सु) की फर्मों के अन्तर्गत छोटी-छोटी खानों पर काम होता था और उत्पादन बहुत कम था।

मेजी शासन के पुनर्संस्थापन से जब औद्योगिक विकास में तेजी आई तो कोयला उद्योग भी प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हुआ। 1875 में 6 लाख टन कोयला निकाला जाता था। इसके बाद उद्योगों की स्थापना से कोयले की मांग बढ़ी और कोयले का उत्पादन भी बढ़ाया गया। 1875 के बाद उत्पादन बहुत तेजी से बढ़ने लगा। 10 वर्षों में उत्पादन दुगुना हो गया। 1995 में उत्पादन 50 लाख टन हो गया। जापान-चीन के युद्ध के बाद 1905 में कोयले का उत्पादन 130 लाख टन हो गया। 1913 में कोयले का उत्पादन 213 लाख टन था। इस प्रकार मेजी शासन के लगभग 40 वर्षों में ही कोयले के उत्पादन में 40 गुनी वृद्धि हो गई।

1914 से 1941 तक कोयला उद्योग

प्रथम विश्व-युद्ध जापान के सब उद्योगों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। स्वाभाविक रूप में कोयले की बढ़ती हुई खपत के कारण उत्पादन भी बढ़ाया गया। युद्ध-कालीन तेजी में ऊंचा लाभ प्रगति में सहायक रहा, यहां तक कि 1919 में कोयले का उत्पादन 313 लाख टन हो गया। उसके बाद युद्धोत्तर-कालीन मंदी का प्रभाव इस पर भी पड़ा। 1921 में उत्पादन घट कर 262 लाख टन रह गया। फिर 1923 के भूकम्प के बाद निर्माण कार्यों में वृद्धि हुई। 1929 तक कोयले का उत्पादन 343 लाख टन तक पहुँच गया था।

1930 की आर्थिक मन्दी का इस उद्योग पर भी बुरा प्रभाव पड़ा, उत्पादन गिरा। 1931 में उत्पादन 1925 के स्तर के लगभग पहुँच गया था। 1931 में उत्पादन 280 लाख टन था।

मन्दी से छुटकारा पाने के बाद सरकार द्वारा युद्ध सामग्री की पर्याप्त तैयारी

में जुट जाने से दूसरे उद्योगों में उत्पादन बढ़ाने के लिये कोयले का उत्पादन भी बढ़ाना पड़ा। 1937 में कोयले का उत्पादन 452 लाख टन था जो कि 1913 के उत्पादन के दुगुने से भी अधिक था। 1941 में कोयले का उत्पादन 556 लाख टन हो गया था। जापान में कोकिंग कोल का अभाव होने से इसका आयात अमेरिका से होता रहा।

द्वितीय विश्व-युद्ध तथा युद्धोत्तर काल

द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में कोयले के उत्पादन में वृद्धि जारी रही किन्तु बाद में युद्ध की विभीषिकाओं से कमी आती गई। जापान के आत्मसमर्पण के समय उत्पादन घट कर 230 लाख टन रह गया था जबकि 1941 में कोयले का उत्पादन 556 लाख टन तक पहुँच गया था।

1946 से सैनिक शासन में अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। कोयले की मांग में वृद्धि के कारण पूर्ति में वृद्धि के लिए उत्पादन बढ़ाना शुरू हुआ। 1950 में उत्पादन 385 लाख तक बढ़ाया गया। कोरिया युद्ध के कारण मांग बढ़ी पर कुछ कठिनाइयां सामने आ रही थीं। फिर भी उत्पादन 1955 में 424 लाख टन हुआ। 5 वर्ष बाद 1960 में उत्पादन 511 लाख टन के स्तर को छू गया।

जापान में 1965 में उत्पादन 510 लाख टन रहा। इस प्रकार जापान अपनी आवश्यकता का लगभग 25% कोयला देश की उन 46 खानों से प्राप्त कर लेता है जो होकेडो, हाँशू तथा क्यूशू में फैली हुई हैं। क्यूशू में चिकूहो क्षेत्र महत्वपूर्ण है। यहां देश का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग कोयला खोदा जाता है।

अच्छे कोयले की कमी के कारण अब विद्युत शक्ति विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। यहां कोकिंग कोयले का अभाव है इसकी पूर्ति आयात से करनी पड़ती है।

(5) सीमेन्ट उद्योग

(Cement Industry)

सीमेन्ट उद्योग एक आधारभूत उद्योग है और इसके उत्पादन के लिए चूने का पत्थर, कोयला और खड़िया मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है। जापान में मेजी पुनर्संस्थापन से औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ और सीमेन्ट की मांग बढ़ी। सरकार द्वारा 1872 में पहला कारखाना फुकुगावा में खोला गया और औद्योगीकरण के कारण इसकी मांग बढ़ती ही गई। 1896 में सीमेन्ट का उत्पादन 87 हजार टन था जो बढ़ा कर 1913 में 6·45 लाख टन कर दिया गया। उस समय 21 कारखाने कार्यरत थे। 1930 के मन्दी काल में थोड़ी कठिनाई के अलावा उद्योग तेजी से

बढ़ता ही गया । 1936 में 46 कारखाने थे और उनसे 50 लाख टन सीमेन्ट का उत्पादन किया जाता था ।

जापान सरकार द्वारा यौद्धिक तैयारियों से इसका उत्पादन बढ़ाया गया। 1939 में सीमेन्ट का उत्पादन 62 लाख टन पहुँच गया था ।

द्वितीय विश्व-युद्ध की विभीषिका में इस उद्योग की स्थिति भी दयनीय हो गई ।

1945 में युद्ध समाप्ति के बाद पुनर्निर्माण कार्य-क्रमों के लिए सीमेन्ट की अत्यधिक माँग बढ़ी । मूल्यों में वृद्धि से उद्योग के विस्तार और विकास को बल मिला । परिणामस्वरूप जहाँ 1944 में उत्पादन गिर कर 29 लाख टन रह गया था वह 1956 में बढाकर 130 लाख टन कर दिया गया । इसके बाद उद्योग का विकास होता ही गया ।

1960 से 1970 के दशक में नये 10 कारखाने खोले गये हैं । सीमेन्ट उद्योग के सब कारखाने 16 समूहों में संगठित हैं । अधिकतर कारखाने दक्षिणी होकेडो में स्थित हैं जो कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत भाग उत्पादन करते हैं । अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र याकोहामा, ओसाका तथा क्यूशू में हैं । अधिकतर कारखाने "याकोहामा समूह" में हैं ।

1960 में सीमेन्ट का उत्पादन 225 लाख टन था वह बढ़ कर 1965 में 250 लाख टन हो गया है । यह उद्योग तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है और यहां से एशियाई देशों को सीमेन्ट निर्यात किया जाता है ।

(6) काँच उद्योग
(Glass Industry)

जापान का यह उद्योग भी एक पुराना उद्योग है जो प्रारम्भ में लघु एवं कुटीर उद्योग स्तर पर किया जाता था । जापान में इसके लिये पर्याप्त कच्चा माल क्वार्ट जाइट, बालू, चूना और सिलीका उपलब्ध थे । वर्तमान में बढ़ते हुए रासायनिक उद्योगों ने इस उद्योग को काफी प्रोत्साहन दिया है ।

मेजी युग के अन्तिम वर्षों में आधुनिक एवं बड़े पैमाने का कांच निर्माण उद्योग पनपा । 19वीं शताब्दी के दसवें दशक में बोतलें व लालटेन की चिमनियां बनाने वाले कई कारखाने खुल गये थे तथा कांच की चद्दरें तथा पट्टिकाओं का निर्माण भी शुरू हो गया था । 1907 में मित्सुबिशी की पूंजी से "असाई ग्लास कम्पनी" का पुनर्गठन हुआ और बड़ी मात्रा में कांच की चद्दरों तथा पट्टिकाओं का निर्माण होने लगा । फिर भी 1913 तक जापान अपनी अधिकांश आवश्यकताओं के लिए निर्यात पर ही निर्भर करता था । प्रथम विश्व-युद्ध के समय इस उद्योग को विकास का सुअ-

वसर प्राप्त हुआ और 1930 की आर्थिक मन्दी के अलावा द्वितीय विश्व-युद्ध के पूर्व तक यह उद्योग प्रगति करता रहा। 1940 में जापान के कांच उद्योग में 42·8 लाख पेटियां (चद्दर इत्यादि) बनाये गये।

द्वितीय विश्व-युद्ध में इस उद्योग को भी भारी क्षति हुई। 1944 में उत्पादन घट कर 16·3 लाख पेटियां ही रह गया जब कि 1940 में उत्पादन 42·8 लाख पेटियां था।

युद्ध के बाद पुनर्निर्माण में इस उद्योग के विकास की ओर भी ध्यान दिया गया। देश की आन्तरिक मांग के बढ़ने के साथ-साथ दूसरे देशों में भी ओटोमोबाइल्स के उपयोग के लिए विशेष प्रकार की कांच की शीटों की मांग बढ़ी। देश में उत्पादन बढ़ाया गया। 1956 में ही उत्पादन बढ़ कर 77 2 लाख पेटियां हो गयीं। जापान के कांच की मांग भारत, पाकिस्तान, हिन्देशिया, फ़िलीपाइन्स तथा मलाया में बहुत बढ़ी है। 1965 में उत्पादन बढ़कर लगभग 250 लाख पेटियाँ होने का अनुमान है। इस प्रकार युद्धोत्तर काल में इस उद्योग की प्रगति भी उल्लेखनीय रही है।

(7) रासायनिक उद्योग

(Chemical Industry)

पिछले 30—40 वर्षों में दुनियां के औद्योगिक क्षेत्रों में जितना विस्तार और विकास रसायन उद्योग का हुआ है उतना किसी और उद्योग में दृष्टिगोचर नहीं होता। आज रसायन उद्योग को उसकी विविधता और अनिवार्यता के कारण अत्यधिक बहुस्वरूपीय तथा अनिवार्य उद्योग (Most Polygamous & Essential Industry) कहा जाता है। जो उद्योग जापान में पहले बहुत ही छोटे स्तर पर चला, आज वह जापान का महत्वपूर्ण उद्योग बन गया है। आज जापान आधारभूत रासायनिक पदार्थों—सल्फरिक एसिड, कॉस्टिक सोडा तथा कार्बाइड के उत्पादन में विश्व के चार प्रधान राष्ट्रों में गिना जाता है।

जापान में रसायन उद्योग का विकास आधुनिक रूप में नया ही है जिसका शुभारम्भ प्रथम विश्व-युद्ध में हुआ। द्वितीय विश्व-युद्ध तक यह काफी प्रगति कर गया था। यौद्धिक आवश्यकताओं ने युद्ध के दौरान इसके उत्पादन की वृद्धि में सहयोग दिया।

पिछले दो दशकों में जापान में रासायनिक उद्योग की कई नई शाखाओं का विकास हुआ है जिनमें विद्युत रसायन Electro Chemical), प्लास्टिक तथा ग्लास व ग्लास का सामान आदि हैं। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि यहां इस उद्योग का विकास पेट्रोलियम तथा पोटाशियम साल्ट जैसे पदार्थों के अभावों में हुआ। 15-20 वर्षों में कई नवीन रासायनिक उद्योगों का विकास हुआ है। 1955 में पेट्रो-रसायन

उद्योग के विकास के लिये जापान सरकार ने 8200 करोड़ येन की एक पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की तथा 1960 में दूसरी योजना आरम्भ की गई जिसके पूरा होने पर 1970 के उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि की आशा है।

जापान में इस उद्योग की तीव्र प्रगति में निम्न कारण सहयोगी रहे हैं:—

(1) जापान में औद्योगीकरण तथा गहन कृषि के लिये उर्वरकों, पौध संरक्षण औषधियों आदि के लिए आन्तरिक मांग में वृद्धि। (2) सस्ती एवं पर्याप्त शक्ति की पर्याप्तता। (3) सरकार की सौहार्द्रपूर्ण नीति और वैज्ञानिक शोध तथा अनुसन्धान को प्रोत्साहन। (4) कच्चे माल की पूर्ति–समुद्र से नमक, वनों से कोलतार, ज्वालामुखी क्षेत्रों से गन्धक, कोयला तथा मीठा पानी।

जापान में 1965 में एमोनियम सल्फेट का उत्पादन 25 लाख टन, कैलशियम का उत्पादन 15·5 लाख टन, सल्फरिक एसिड का उत्पादन 56·6 लाख टन तथा कास्टिक सोडा का उत्पादन 13·4 लाख टन था।

निःसन्देह इस युग में रसायन उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है। जापान के उद्योगों में वस्त्र तथा लोह-इस्पात के बाद रसायन उद्योग का ही महत्वपूर्ण स्थान है। ये उद्योग समस्त औद्योगिक पेटी के समानान्तर फैले हुए हैं पर केन्द्रीकरण की दृष्टि से तोक्यो, कोबे और ओसाका आदि अग्रणी हैं। जापान लगभग 50 करोड़ येन मूल्य के रसायन पदार्थों का निर्यात करता है जो कि उसके कुल निर्यात का लगभग 6% भाग है।

(8) जलपोत निर्माण उद्योग
(Ship—Building Industry)

अति प्राचीन काल से ही जापान निवासी अपनी अनुकूल प्राकृतिक स्थिति के कारण छोटे प्रकार के सामुद्रिक जहाजों का निर्माण करते थे पर उन पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध थे। 1853 में तोकुगावा शासन ने पहली बार प्रतिबन्धों में छूट दी तथा नये प्रकार के आधुनिक जहाज बनाने को प्रोत्साहन दिया जाने लगा।

मेजी शासन की पुनर्संस्थापना में पाश्चात्य ढंग के औद्योगीकरण तथा राष्ट्र की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए जल-पोत निर्माण उद्योग को काफी महत्व दिया गया। फलस्वरूप आधुनिक प्रकार का पहला लोहे का जल-पोत 1871 में तैयार हुआ। नई सरकार ने कागोशिमा के पोत-निर्माण यार्ड को, जो मूलतः सत्सुमा के सामन्त के अधिकार में था, अपने कब्जे में ले लिया। 1880 तक सरकार ने 3 पोत निर्माण कारखानों की स्थापना करली थी। 1875 में सरकार ने नौ-वहन व नौ-इंजीनियरिंग की शालाएं खोलीं उनमें अंग्रेजी प्रशिक्षकों को रखा गया। अन्य उद्योगों के समान ही वित्तीय सहायता के माध्यम से सरकार ने निजी उद्योगपतियों

को प्रोत्साहित किया। 1895 में पहले-पहल 1000 टन का सामुद्रिक जहाज निर्माण किया गया।

1896 में सरकार ने इस उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिये Ship–Building Encouragement Act पारित किया जिसके अन्तर्गत सरकार अनुदान प्रदान करती थी तथा क्षति की पूर्ति करती थी। इसके कारण इस उद्योग में नये युग का सूत्र-पात हुआ। कई नये पोत निर्माण केन्द्रों की स्थापना हुई। 1909 में आर्थिक सहायता की दर में वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप 1913 में 1000 टन से अधिक क्षमता वाले पोत निर्माण करने वाली 5 बड़ी कम्पनियाँ थीं। इस प्रकार प्रथम विश्व-युद्ध से पूर्व जापान में पोतों का निर्माण कार्य प्रगति पर था। उस समय जहाजों की क्षमता निम्न तालिका से मिलती है—

मेजी शासन काल में जल-पोत निर्माण उद्योग

अवधि (वार्षिक औसत)	बनाये गये वाष्प-पोत और मोटर-पोत (हजार ग्रॉस टनों में)
1899–1903	23
1904–08	41
1909–13	52

इस प्रकार मेजी शासन काल में इस उद्योग की सफल शुरूआत हो गई थी और 14 वर्षों में जहाजरानी क्षमता दुगुनी से भी अधिक बढ़ गई थी।

प्रथम विश्व-युद्ध से द्वितीय विश्व-युद्ध तक (1914 से 1945)

दूसरे उद्योगों के समान ही प्रथम विश्व-युद्ध इस उद्योग के लिये भी वरदान स्वरूप सिद्ध हुआ दूसरे देशों को माल भेजने तथा लाने, यौद्धिक मांग की पूर्ति करने आदि के लिये इस उद्योग का काफी विस्तार और विकास हुआ। युद्ध के प्रथम पाँच वर्षों में ही जहाज-निर्माण क्षमता में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। 1919 में 6·5 लाख टन (ग्रॉस) क्षमता के जहाज बनाये गये और जापान का विश्व में तीसरा स्थान हो गया।

इस उद्योग को 1920 के बाद युद्धोत्तरकालीन मंदी का सामना करना पड़ा तथा साथ ही विदेशियों से प्रतिस्पर्द्धा बढ़ गई थी। अतः 1922 तक तो जहाज निर्माण क्षमता 71 हजार टन ही रह गई। 1929 तक इसमें कुछ वृद्धि हुई और यह क्षमता 1·65 लाख टन ही थी जो कि 1919 के मुकाबले एक चौथाई ही कही जा सकती है।

विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी ने डूबते को भंवर में फंसा दिया और उद्योग की क्षमता फिर घट गई । 1932 में जलपोत निर्माण क्षमता 54 हजार टन की ही थी अर्थात् वापिस 1909—13 के स्तर पर पहुँच गयी ।

विश्व-व्यापी मंदी की समाप्ति के साथ ही सरकार द्वारा प्रोत्साहन तथा द्वितीय विश्व-युद्ध की तैयारियों में इस उद्योग को पुनः फलने-फूलने को सुअवसर प्रदान किया । परिणामस्वरूप 1937 में जल-पोत निर्माण क्षमता 4·5 लाख टन (GRT) हो गई । उतार-चढ़ाव की यह प्रवृत्ति 1937 के बाद युद्ध के कारण विकास की ओर अग्रसर हुई ।

1941 में जल-पोत निर्माण क्षमता 5 लाख टन (GRT हो गई थी । इसके बाद युद्ध की विभीषिका बढ़ती गई । फिर भी 1944 में क्षमता 2 लाख टन थी, पर 1941 में निर्मम एवं बर्बरतापूर्ण बमबारी से जहाज निर्माण क्षमता का 80 प्रतिशत भाग नष्ट-भ्रष्ट हो गया और जहाज निर्माण क्षमता 1946 में केवल 1 लाख टन होने का अनुमान है । उतार-चढ़ाव का यह दौर निम्न तालिक से स्पष्ट है—

जापान में जल-पोत निर्माण (1914 से 1945)

अवधि (वार्षिक औसत)	बनाये गये वाष्प व मोटर-पोत (हजार ग्रॉस टन)
1909–1913	52
1914–1918	267
1919	646
1919–1923	294
1922	71
1924–1928	66
1929	165
1929–1933	106
1932	54
1937	446
1941	500
1944	200
1946	100

इस उतार-चढ़ाव के बाद युद्धोत्तरकाल में प्रगति आश्चर्यजनक है ।

युद्धोत्तर काल में जल-पोत निर्माण उद्योग
(1945 से आगे)

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद प्रारम्भ में इस उद्योग को, विकास में बाधाओं का मुकाबला करना पड़ा। सैनिक शासन में मित्र राष्ट्रों की घातक नीति, विदेशी विनिमय का अभाव, जायवत्सु संस्थाओं के विघटन तथा विदेशी बाजार के अभाव में उद्योग पनपने को उठ भी न सका। सौभाग्य से कोरिया युद्ध का आरम्भ, जापान में नये संविधान का लागू होना इसके लिए वरदान सिद्ध हुए। 1952 में युद्ध जर्जरित एवं क्षतिग्रस्त यार्डों का पुनर्संगठन किया गया। परिणामस्वरूप 1952 में पोत-निर्माण क्षमता 6 लाख टन पहुँच गई। 1950–54 की अवधि में औसत वार्षिक उत्पादन क्षमता 4·7 लाख टन थी। 1955–59 में यह क्षमता 17·6 लाख टन हो गई। 1957 में जापान की जहाज निर्माण क्षमता 24·3 लाख टन थी। 1956 में ही जापान जहाज निर्माण क्षमता में सं. रा. अमेरिका को भी मात दे गया और विश्व का सबसे बड़ा पोत-निर्माता बन बैठा।

वर्तमान स्थिति

इस प्रकार 1945 में बुरी तरह क्षति-ग्रस्त जापान पिछले 14 वर्षों से जल-पोत निर्माण में विश्व में अग्रणी हो गया है। 1965 में जापान की जल-पोत निर्माण क्षमता 53·6 लाख टन थी जो कि विश्व के कुल उत्पादन का प्राय: 43·9 प्रतिशत भाग था। जापान के शिप-यार्ड में विश्व का सबसे बड़ा और श्रेष्ठ जलयान तैयार किया है। तोक्यो-मारू (Tokyo-Maru) विश्व का सबसे बड़ा तेल वाहक जल-यान है। जापान दुनियां का पहला राष्ट्र है जिसने जलयान में अपने औद्योगिक माल की प्रदर्शनी विशेष प्रकार के जलयान (शाकुरा-मारू) में आयोजित कर विश्व के प्रमुख बन्दरगाहों पर दिखाई। 1964 में भारत ने भी जापान की हितैची जलयान कम्पनी से "लाजपत राय" जहाज खरीदा।

जापान में जहाज निर्माण उद्योग के विकास के निम्न कारण प्रमुख हैं—

(1) जापान की अर्थव्यवस्था विदेशी व्यापार तथा औद्योगिक विकास पर आधारित अर्थ व्यवस्था है। अत: उसे अपनी मांग की पूर्ति के लिये ऐसा करना आवश्यक था। जापानी व्यापारिक जहाजी बेड़ा विश्व का पांचवां सबसे बड़ा बेड़ा है।

(2) वन सम्पत्ति की प्रचुरता में अच्छी टिम्बर की लकड़ी की पूर्ति तथा प्राकृतिक पोताश्रय शिप-यार्डों के लिये उपयुक्त है।

(3) जापान में खाद्य समस्या ने सदा से मत्स्याखेट के लिये छोटे-छोटे हजारों जलयानों की आवश्यकता प्रस्तुत की है।

(4) जलयानों के लिये टिन, चद्दरों, इस्पात शीटों तथा आवश्यक मशीनों की पूर्ति स्वयं जापान करता है अर्थात् कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

(5) विश्व के देशों में तेल-वाहक, यौद्धिक तथा यात्री-वाहक जल-पोतों की निरन्तर बढ़ती मांग ने जापान के इस उद्योग को प्रोत्साहित किया है। "बाह्य मांग" जापान जैसे व्यापारी देश के लिये आकर्षक निमंत्रण है।

जापान में छोटे-बड़े सब मिलाकर लगभग 300 शिपयार्ड हैं जहां जलयानों की मरम्मत, उनके हिस्सों का निर्माण तथा नये पोतों का निर्माण होता है। इनमें 30–35 यार्ड—जैसे नागासाकी, मौजी, तोक्यो, याकोहामा, कोबे, ओसाका, शिमोनेसेकी, तामशिया आदि अत्यन्त विशाल आकार के हैं। अब नये स्थानों पर भी शिपयार्ड विकसित किये जा रहे हैं।

(9) मोटर उद्योग
(Automobile Industry)

औद्योगिक क्षेत्र में अग्रसर जापान मोटर उद्योग में भी विकसित राष्ट्रों का डटकर मुकाबला कर रहा है। जहां 1907 में पहला कारखाना खोला गया था वह 1913 तक तो धीमी गति से प्रगति करता रहा, पर प्रथम विश्व-युद्ध ने उसे गति प्रदान की। 1937 तक तो जापान में मोटरों का उत्पादन केवल 136 था। विश्व-व्यापी मंदी से इस उद्योग के विकास को क्षति पहुँची पर अमेरिका की फोर्ड कम्पनी तथा जनरल मोटर्स की निरन्तर सहायता से उद्योग मंदी के बाद पनपने लगा। 1936 में सरकार ने संरक्षण प्रदान कर उद्योग को काफी बढ़ाने का प्रयास किया क्योंकि इस अवधि में जापान सरकार द्वितीय विश्व-युद्ध की यौद्धिक तैयारी करने में संलग्न थी। उत्पादन क्षमता 500 तक बढ़ादी गई। इस उद्योग में प्रमुख कम्पनियां "निस्सान मोटर कम्पनी तथा तोयादो मोटर कम्पनी" थी। सरकार के उत्तरोत्तर प्रोत्साहन से 1941 में मोटरों की वार्षिक निर्माण क्षमता 48 हजार तक बढ़ गई।

द्वितीय विश्व-युद्ध में सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण सवारी गाड़ियों का उत्पादन कम कर दिया गया, यहां तक कि 1944 तक सवारी गाड़ियों का निर्माण बिल्कुल बन्द कर दिया गया।

1945 में जापान द्वारा आत्मसमर्पण के बाद में सैनिक शासन की उदासीन नीति से उद्योग डगमगाता रहा। 1950 में कोरिया युद्ध ने उद्योग को प्रोत्साहन दिया। इन मोटरों के छोटी होने, 10 अश्व-शक्ति के इंजनों का प्रयोग होने से अधिक लोकप्रियता बढ़ी। 1951 के बाद उत्पादन में निरन्तर वृद्धि का रुख है। 1967 में जापान ने 34 लाख मोटरों का निर्माण किया 1960 से 1965 की 5 वर्ष की अवधि में ही निर्यात 15 गुना बढ़ गया। इस प्रकार इस उद्योग के लिये विस्तृत बाजार, पर्याप्त कच्चा माल, मशीनरी, तकनीकी ज्ञान और जहाजी बेड़ा सब सुविधाएं प्राप्त हैं। इस उद्योग का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।

अध्याय 5

जापान में लघु उद्योगों की भूमिका

(Role of Small Scale Industries in Japan)

जापान की अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का बहुत पहले से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। 19 वीं शताब्दी के मध्य तक तो जापान में आधुनिक ढंग के भारी एवं बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास प्रारम्भ भी न हुआ था। जापान की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का एक समन्वित ढांचा सहायक व्यवसाय के रूप में बहुत प्रचलित था। मेजी शासन के पुनर्संस्थापन से जापान में आधुनिक ढंग के बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास प्रारम्भ हुआ। यद्यपि 1930 तक जापान में औद्योगिक विकास के पाश्चात्य ढंग के प्रयत्नों को आधी शताब्दी बीत चुकी थी पर लघु तथा मध्यम आकार के उद्योगों का बोलबाला था। निम्न तालिका से 1930 में जापान के निजी निर्माण उद्योगों के क्षेत्र में लघु उद्योगों की स्थिति का कुछ स्पष्ट अन्दाजा लगता है:—

1930 में जापान में औद्योगिक इकाइयों का आकार

उपक्रम का आकार	नियोजितों की संख्या ('000)	कुल नियोजितों का प्रतिशत
स्वतन्त्र व्यक्ति	665·5	14·00
1–4 तक कार्य करने वाले	2106·6	44·30
5–99 तक कार्य करने वाले	988·4	20·80
100–499 तक कार्य करने वाले	504·5	10·60
500 तथा अधिक	494·7	10·30
	4759·7	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 1930 में कुल औद्योगिक श्रमिकों का 58·3 प्रतिशत भाग ऐसे उद्योगों में नियोजित था जिनका आकार 4 श्रमिक तक था।

100 से कम काम करने वाली औद्योगिक संस्थानों में सारी औद्योगिक श्रम-शक्ति का लगभग 80% भाग कार्य करता था।

जहां तक औद्योगिक उत्पादन में लघु उद्योगों के भाग का प्रश्न है वह भी इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि 1930 में औद्योगिक उत्पादन का 62 प्रतिशत भाग लघु एवं मध्यम आकार की औद्योगिक इकाइयों द्वारा उत्पन्न किया जाता था जबकि बड़े उद्योग कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग 38 प्रतिशत भाग उत्पन्न करते थे।

श्री धीर एवं प्रधान ने भी इस मत की पुष्टि की है कि जापान में लघु उद्योगों की प्रधानता थी। उनके अनुसार 1938 में जापान के कुल कारखानों में से 96·2 प्रतिशत संस्थानों में 5 से 100 के बीच व्यक्ति लगे हुए थे।

लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व रोजगार और कुल उत्पादन की दृष्टि से ही नहीं था वल्कि जापान के निर्यातों में भी लघु एवं मध्यम आकार के कारखानों की उत्पत्ति का महत्वपूर्ण स्थान था। श्री धीर और प्रधान के अनुसार 1933 में जापान से निर्यात का मात्रा के अनुसार 60·6 प्रतिशत और मूल्य के अनुसार 57·1 प्रतिशत लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों से प्राप्त होता था।[1]

लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास जापान की अर्थव्यवस्था के लिए इस कारण भी महत्वपूर्ण है कि जापान के इन उद्योगों में निर्मित वस्तुएं गुण, परिमाण और मूल्य की दृष्टि से भी उपयुक्त होती है। इससे जापान का उत्पादन स्तर ऊंचा उठा है और माल की लोकप्रियता बढ़ने से विदेशों में कट्टर प्रतिस्पर्द्धा करने में समर्थ हैं। जब जापानियों के द्वारा निर्मित वस्तुएं विदेशों में सस्ती कीमत पर विकने लगी तो पश्चिमी देशों द्वारा जापान पर राशिपातन का आरोप लगाया था और 1934–35 में आरोप की जांच के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का एक प्रतिनिधि भेजा गया जिसने इस आरोप को विल्कुल मिथ्या बताया। वास्तविकता तो उच्च कुशलता से कम लागत में निहित थी।

श्री चमनलाल, जिन्हें भारत सरकार ने जापान के लघु उद्योगों के अध्ययन के लिए जापान भेजा था, स्पष्ट कहा है कि जापान को औद्योगिक साम्राज्य स्थापित करने तथा उसे शक्ति प्रदान करने में लघु उद्योगों का अद्वितीय सहयोग रहा है। उनके अनुसार "विश्वास करें या न करें, जापान के औद्योगिक साम्राज्य को उसके लघु

---

1. In 1933 60·6% of the volume and 57·1 percent of the value of the Japanese exports was accounted for by small and medium scale industries.

—Dhir & Pradhan–Modern Eco. Development p. 350.

उद्योगों से बल मिलता है जिसमें 54 प्रतिशत एकाकी उत्पादक तथा 40 प्रतिशत लघु संयन्त्र हैं जिनमें पांच से भी कम श्रमिक नियोजित हैं।"[1]

प्रो० लोकवुड (W. W. Lockwood) ने यह मत व्यक्त किया है कि चाहे उपर्युक्त आंकड़ों में जापान की औद्योगिक व्यवस्था में लघु उद्योगों के महत्व को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर दिखलाया गया हो फिर भी यह निर्विवाद सत्य है कि जापान की औद्योगिक व्यवस्था में लघु उद्योगों का उल्लेखनीय स्थान रहा है।

जापान की अर्थव्यवस्था में औद्योगिक व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता यह कही जाती है कि वहां की औद्योगिक क्रान्ति की दोहरी प्रकृति रही है। जहां विश्व के अन्य देशों में आधुनिक औद्योगिक विकास की प्रवृत्ति लघु एवं कुटीर उद्योगों के पतन का कारण बनी, वहां जापान में लघु एवं कुटीर उद्योगों में विकास के साथ-साथ आधुनिक औद्योगिक विकास की नींव भी सुदृढ़ हुई है।

आधुनिक औद्योगिक क्रान्ति ने लघु उद्योगों में भी क्रान्ति ला दी। यह प्रवृत्ति जापान की औद्योगिक व्यवस्था की एक अभूतपूर्व घटना थी। वास्तव में जापान में बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिये प्रतिस्पर्द्धात्मक न होकर उनके पूरक के रूप में हुआ है।

जापान के लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास की यह प्रवृत्ति महत्वपूर्ण है कि उनमें समय और परिस्थितियों के अनुसार ढालने में सतर्कता रही। अगर हम भारतीय परिस्थितियों को देखते हैं तो पाते हैं कि भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों के पतन में ब्रिटिश सरकार का तो सक्रिय हाथ रहा ही परन्तु उत्पादकों में जड़ता बनी रहने से समय के अनुसार आवश्यकतानुसार परिवर्तन न किया जा सका और वे पतन की ओर उन्मुख हुए। पर जापान के उत्पादकों में यह खूबी रही कि वे अपने उत्पादन के तरीकों, विक्रय की पद्धतियों तथा उत्पादित वस्तुओं के गुण, किस्म तथा डिजाइनों में बाजार की माँग के अनुसार परिवर्तन करने में सदा तत्पर रहे। उन्होंने अपने उत्पादन क्षेत्रों का आधुनिकीकरण किया। बड़े पैमाने पर कच्चे माल का क्रय, कार्यशील पूंजी तथा बाजार-संगठन की मितव्ययता का लाभ उठाया। इसके साथ-साथ लघु एवं कुटीर उद्योग, बड़े उद्योगों की प्रतियोगिता से हट कर उन क्षेत्रों में प्रवेश कर गये जिससे उन्हें बड़े पैमाने की विक्रय-व्यवस्था, यातायात और वित्त का लाभ मिलने लगा।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि जापान में लघु एवं कुटीर उद्योग जापान की औद्योगिक व्यवस्था में बड़े पैमाने के उद्योगों के परस्पर विरोधी नहीं बल्कि सहायक

---

1. Chaman Lal—"Cottage Industries & Agriculture in Japan."

एवं पूरक हैं। वे एक दूसरे के विकास में बाधक न बन कर, साधक बने हैं। 1900 ई. के बाद जापान के बड़े पैमाने के उद्योगों का द्रुत गति से विकास होने पर भी लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थिति का परिचय जो उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है यही सिद्ध करता है कि बड़े पैमाने के उद्योग लघु एवं कुटीर उद्योगों के पतन के कारण नहीं बने, बल्कि सहयोगी बन कर एक दूसरे के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इस सम्बन्ध में यामनाका और ताकीजावा के लेख से इस उद्धरण को देना अनुपयुक्त न होगा—"जापान में 1900 के बाद बडे उद्योगों के विकास ने छोटे उद्योगों को किसी भी तरह विस्थापित नहीं किया। यहां तक कि लघु उद्योग बडे उद्योगों के साथ-साथ चलने लगे। वे एक दूसरे के प्रतियोगी न होकर एक दूसरे के पूरक थे और परस्पर सहयोग कर रहे थे।"

जापान में लघु उद्योगों के प्रति सरकारी नीति
(State Policy towards Small Industries)

लघु उद्योगों के महत्व की ओर ध्यान देने पर स्पष्ट होता है कि जापान में औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भिक श्रेय लघु उद्योगों को था। उनमें देश की श्रम-शक्ति का एक बहुत बड़ा भाग नियोजित था। उनमें औद्योगिक उत्पादन का बहुत बड़ा भाग उत्पादित किया जाता था और उनके उत्पादन का बहुत बड़ा भाग निर्यात किया जाता था। इस प्रकार देश की अर्थव्यवस्था में उनके महत्व को ध्यान में रखते हुए जापान की सरकार ने भी लघु उद्योगों के विकास को पूर्णतः प्रोत्साहित किया है।

तोकुगावा शासन काल में सामन्तवादी व्यवस्था से लघु एवं कुटीर उद्योगों का तेजी से विकास हुआ क्योंकि समृद्ध वर्गों का संरक्षण उन्हें मिल गया था।

मेजी शासन काल में बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास की नीति से उन उद्योगों के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ा जो सामन्तवादी शासन काल में पनपे थे। पर फिर सरकार द्वारा लघु उद्योगों को परोक्ष रूप से कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। मेजी सरकार ने इन उद्योगों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण की नीति को हतोत्साहित किया। मेजी सरकार द्वारा लघु उद्योगों की कार्य-क्षमता बढ़ाने तथा उनमें पूंजी, संगठन, विक्रय-व्यवस्था आदि में बड़े पैमाने के लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित करने का कारण यह था कि उस समय इन उद्योगों का निर्यात कुल निर्यात मूल्य का लगभग 70 प्रतिशत भाग था।

मेजी सरकार ने छोटे-छोटे उद्योगपतियों तथा व्यवसायियों में सहकारिता को प्रोत्साहन देने के लिए 1884 में तथा इसके बाद अनेक अधिनियम पारित किये। उत्पादित वस्तुओं के गुण, डिजाइनो तथा अन्य परिवर्तनों को प्रोत्साहित किया गया।

1914 में प्रथम विश्व-युद्ध में लघु उद्योगों का विकास तेजी से हुआ। 1921–22 में वस्तुओं के मूल्य स्तर में कमी आने का तथा निर्यात कम होने का लघु उद्योगों पर भी प्रभाव पड़ा। 1930 की विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी के समय लघु उद्योगों को भी अन्य उद्योगों के समान ही कठिनाई का मुकाबला करना पड़ा। सरकार ने रेशम उद्योग को आर्थिक सहायता प्रदान की क्योंकि उनकी निर्यात मांग घट गयी थी। इसके अलावा अन्य लघु उद्योगों को मन्दी काल में निम्न व्याज दर पर छोटे-छोटे अनुदान दिये गये। लघु उद्योगों के उत्पादन पर नियन्त्रण रखने के लिए निर्माता गिल्ड वनाये गये और इसी प्रकार लघु उद्योगों के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिये निर्यात गिल्ड बनाये गये।

लघु उद्योगों के उत्पादकों को मन्दी की वित्तीय कठिनाइयों से राहत पहुँचाने, उनको अपनी वस्तुओं के कच्चे माल के क्रय तथा उत्पादित माल के विक्रय मे मित-व्ययता का लाभ प्राप्त करने के लिए, सहकारिता को बढ़ावा दिया।

1933 में जापानी येन के अवमूल्यन के बाद सरकार ने लघु उद्योगों को कुछ संरक्षण दिया। उनको निर्यात में मूल्य नियन्त्रित करने का अधिकार दिया और निर्यात की मात्रा निर्धारित की गई।

1930 के बाद लघु उद्योगों का कुछ औद्योगिक उत्पादन में हिस्सा कम होने लगा। इसका कारण लघु उद्योगों का पतन नहीं, बल्कि बड़े पैमाने के उद्योगों में द्रुत गति से विकास था। स्थिति में इतनी तीव्र गति से परिवर्तन हुआ कि जहां 1930 में औद्योगिक उत्पादन में लघु उद्योगों के उत्पादन का भाग 62 प्रतिशत था, वह 1942 में घट कर केवल 27 प्रतिशत ही रह गया।

1948 में लघु उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करने तथा बड़े उद्योगों और लघु उद्योगों के बीच समन्वय बनाये रखने के लिए, एक लघु उद्योग मण्डल (Board of Small Industries) बनाया है। इसी प्रकार ग्रामीण, लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए सरकार ने ग्रामीण पुनर्निर्माण योजना प्रारम्भ की है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद जापान की औद्योगिक अर्थव्यवस्था में आधारभूत परिवर्तनों, जायवत्सु जैसी आर्थिक संस्थाओं के विघटन और विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन से लघु एवं कुटीर उद्योगों के मार्ग में कठिनाइयों का तांता लग गया है। फिर भी जापान की सरकार लघु उद्योगों की रोजगार क्षमता को ध्यान में रखते हुए उनके विकास, आधुनिकीकरण के लिये सतत् प्रयत्नशील है।

जापान में लघु उद्योगों की समृद्धि के कारण

सरकार के प्रोत्साहन, अर्थव्यवस्था की प्रारम्भिक संरचना, कृषि-प्रधान अर्थ-

व्यवस्था में सहायक व्यवसाय के रूप में लघु उद्योग, मेजी पुनर्स्थापन के पहले तो अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भ थे ही, बाद में भी 1942 तक उनकी समृद्धि बनी रही। लघु उद्योगों की समृद्धि के मुख्य कारण निम्न थे:—

(1) **जापान में आधुनिक उद्योगों का विकास देर से प्रारम्भ**—19वीं शताब्दी के मध्य तक जापान में तोकुगावा शासन की पृथकत्व की नीति के अनुसरण से पाश्चात्य ढंग के औद्योगीकरण का प्रारम्भ न हो सका। ऐसे समय में लघु उद्योगों का बोलबाला स्वाभाविक ही था। इसके बाद मेजी पुनर्संस्थापन काल का शुभारम्भ 1868 में हुआ। पर 1930 तक तो उनकी प्रधानता बनी ही रही।

(2) **प्राकृतिक साधनों तथा पूंजी का अभाव**—जापान की कुल भूमि में से केवल 16 प्रतिशत भूमि ही कृषि योग्य है। इसी प्रकार खनिज-सम्पदा, पशु-सम्पदा आदि की भी कमी है। ऐसी परिस्थिति में लोगों को अपनी जीविका-यापन का और मार्ग ही क्या रह जाता है। अतः लघु उद्योगों तथा कुटीर उद्योगों का विकास हुआ। बड़े पैमाने के उद्योगों में अधिक पूंजी चाहिये, वह जापानियों के पास न थी। अतः पर्याप्त पूंजी के अभाव में लघु एवं कुटीर उद्योगों का तेजी से विकास हुआ।

(3) **बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए रोजगार**—प्राकृतिक साधनों की कमी तथा पूंजी के अभाव में अगर जनसंख्या में वृद्धि हो तो लघु एवं कुटीर उद्योग एक उपयुक्त हल है। इनमें पूंजी की कम आवश्यकता होती है पर अधिक लोगों को रोजगार उपलब्ध हो जाता है। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या को उत्पादक कार्यों में लगाने तथा उन्हें रोजगार प्रदान करने के लिये लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास हुआ।

(4) **रुचि तथा उपभोक्ताओं की मांग के अनुकूल उत्पादन**—लघु एवं कुटीर उद्योगों में वस्तुओं का उत्पादन उपभोक्ताओं की रुचि और मांग को ध्यान में रख कर किया जाता है तथा उनकी किस्म, डिजाइन, परिमाण में आवश्यकतानुसार परिवर्तन सम्भव होता है। अतः इन सब बातों का लाभ जापान के लघु उद्योगों के विकास को मिला।

(5) **सरकार की प्रोत्साहन पूर्ण नीति**—जापान की सरकार ने लघु-उद्योगों को हर सम्भव प्रोत्साहन दिया। समय-समय पर उनके लिए अधिनियम पारित किये। मुद्रा के अवमूल्यन के समय संरक्षण, मन्दी काल में आर्थिक अनुदान, निम्न ब्याज पर ऋण, तकनीकी प्रशिक्षण आदि समृद्धि के महत्वपूर्ण कारण थे।

(6) **यातायात और संचार व्यवस्था के विकास**—इससे लघु उद्योगों को कच्चे माल की पूर्ति तथा निर्मित माल की बिक्री की यातायात लागत घट गई और अधिक वस्तुओं के निर्माण का मौका मिला।

(7) बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा का अभाव एवं परस्पर सहयोग—जापान के लघु उद्योगों की समृद्धि का सबसे बड़ा कारण उनकी बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा का अभाव है। अन्य राष्ट्रों में आधुनिक बड़े उद्योगों का विकास लघु एवं कुटीर उद्योगों के पतन का कारण बना परन्तु जापान में स्थिति भिन्न थी। बड़े उद्योगों तथा लघु उद्योगों में कोई प्रतिस्पर्द्धा न होकर सहयोग था, वे एक दूसरे के परस्पर सहयोगी तथा पूरक थे।

(8) उत्पादन विधियों में आधुनिकीकरण—जापान के लघु उद्योगों की समृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि उनमें समय तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उत्पादन विधियों को आधुनिक बनाये रखने, विक्रय तथा क्रय के संगठनों से मितव्ययता लाने तथा उपभोक्ताओं की रुचि के अनुकूल आवश्यक परिवर्तन करने में सतर्कता बरती है। दूसरे राष्ट्रों में लघु उद्योगों के पतन का कारण उनकी उत्पादन-शैली में स्थिरता भी थी।

(9) कुशल श्रमिक तथा विद्युत शक्ति—जापान में मेजी पुनर्संस्थापन से ही शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय प्रगति हुई है यहां तक कि अब तो अनेक किसान स्नातक स्तर तक शिक्षित हैं। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार भी मेजी पुनर्संस्थापन काल की मुख्य उपलब्धि रही है। इस कारण कुशल श्रमिकों की पर्याप्तता थी, और है इसके अलावा जापान में विद्युत-शक्ति का विकास लघु उद्योगों के लिये वरदान स्वरूप सिद्ध हुआ है और लघु उद्योगों की प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(10) लघु उद्योगों की समृद्धि में विदेशी व्यापार—1933 में कुल निर्यात मूल्य का 57·5 प्रतिशत भाग लघु उद्योगों के उत्पत्ति के निर्यात से प्राप्त होना स्पष्ट करता है कि जापान जैसे विदेशी व्यापार पर आधारित देश की अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों का क्या स्थान होना चाहिये ? चूंकि जापान का पाश्चात्य ढंग पर औद्योगीकरण तभी संभव था जबकि निर्यात आयातों (जिसमें मशीनें, भारी उद्योगों का सामान व कच्चा माल) का भुगतान कर सकें। अतः सरकार ने भी लघु उद्योगों के विकास को अधिक महत्व दिया जिससे बड़े उद्योगों का विकास संभव हो। इस प्रकार लघु उद्योगों की समृद्धि स्वाभाविक रूप से होनी थी।

जापान में द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद लघु उद्योग

द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ में ही लघु उद्योगों का महत्व कम हो गया था। यह निम्न तालिका से स्पष्ट होता है:—

जापान में औद्योगिक उत्पादन का स्वरूप
(कुल उत्पादन का प्रतिशत)

विवरण	1930	1937	1942
वृहत् उद्योग	38	58	73
लघु एवं कुटीर उद्योग	62	42	27
कुल	100	100	100

इस तरह 1930 से ही लघु उद्योगों का कुल उत्पादन में भाग कम होता जा रहा था। विश्व-युद्ध में बड़े उद्योगों को क्षति पहुँची। अतः युद्धोत्तर काल में पुनर्निर्माण के समय जापान की औद्योगिक संरचना में मूलभूत परिवर्तन हुए। सरकार ने आधारभूत एवं वृहत् उद्योगों के विकास में निवेशों पर अधिक बल दिया जिससे कम से कम समय में युद्ध जर्जरित नष्ट प्राय: अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवन प्रदान किया जा सके। सरकार के द्वारा एकाधिकार विरोधी अधिनियमों तथा जायबत्सु के विघटन के प्रयत्नों से लघु उद्योगों का विकास मन्द पड़ गया। विदेशों में रेशम के स्थान पर प्रतिस्थापन वस्तुओं के उपयोग से रेशम का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी घटा। विकासशील राष्ट्रों द्वारा स्वयं के उपभोग उद्योगों के विकास की प्रवृत्ति तथा विदेशी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्धों से जापान के लघु उद्योगों को भारी धक्का पहुँचा है। उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

इन सब परिस्थितियों के बावजूद जापान की औद्योगिक व्यवस्था में आज दो वर्ग बन गये हैं। पहले वर्ग में इन्जीनियरिंग तथा आधारभूत उद्योगों के बडे-बड़े संस्थान हैं और दूसरे वर्ग में उपभोग, खिलौने, तथा अन्य सामान बनाने के लिये लघु एवं मध्यम दर्जे के संस्थान हैं। इनके उत्पादन क्षेत्रों में अन्तर हो जाने से उनमें प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग बनाये रखा गया है जिससे कि रोजगार बना रह सके।

जापान के लघु उद्योग एवं विकासशील राष्ट्र

जापान की अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व तथा बड़े उद्योगों से उनके परस्पर सहयोगपूर्ण सम्बन्ध को देख यह इच्छा होना स्वाभाविक है कि क्या भारत या अन्य विकासशील राष्ट्र भी जापान के अनुभवों से लाभ उठा सकते हैं ? जापान के अनुभवों मे निम्न बातें विकासशील राष्ट्र भी अनुसरण कर सकते हैं।

(1) पूंजी के अभाव की पूर्ति तथा श्रम की बहुतायत का सदुपयोग लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास में निहित है अतः इनका विकास महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

(2) लघु उद्योगों के विकास में एक लाभ और यह है कि उत्पादन में शीघ्रता रहती है। बड़े उद्योगों के विनियोग और उत्पादन में काफी समय का अन्तर (Long gestation period) होता है।

(3) लघु एवं बड़े उद्योगों में प्रतियोगिता के तत्व को समाप्त कर उनमें परस्पर सहयोग को बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके लिए उत्पादन के उन क्षेत्रों को जिनके उत्पादन में कम पूंजी, कम तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता हो तथा उत्पादन मितव्ययता पूर्ण हो सके।

(4) लघु उद्योगों में बड़े उद्योगों के अनुरूप मितव्ययता प्राप्त करने के लिए सहकारिता के आधार पर कच्चे माल के क्रय-संगठन, विक्रय-संगठन, प्रशिक्षण-संगठन आदि को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है।

(5) लघु एवं कुटीर उद्योगों की उत्पादन शैली तथा यन्त्रों को अधिकाधिक आधुनिक बनाने की चेष्टा करनी चाहिये। इसके लिये यथासंभव नये-नये आविष्कार तथा अनुसन्धान को प्रोत्साहन देना जरूरी है।

(6) लघु उद्योगों की कच्चे माल की कठिनाई, वित्तीय साधनों का अभाव, विक्रय-व्यवस्था में कुशलता लाकर उन्हें कम लागत में अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये। इस सम्बन्ध में सरकार को आवश्यक सगठन बनाते रहना चाहिये।

(7) एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण, नये साहसियों को छोटे उद्योगों की स्थापना में रियायतें, प्रतिबन्धों से मुक्ति आदि भी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

(8) कार्यकुशलता में वृद्धि करना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके लिए सरकार को प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। अगर प्रारम्भिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा प्रारम्भ कर दी जाय तो इसमें कार्यकुशलता की वृद्धि होगी।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जापान के आर्थिक विकास के प्रारम्भिक काल में लघु एवं कुटीर उद्योगों ने बड़े उद्योगों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया है। उसमें बड़े पैमाने के रोजगार अवसर प्राप्त हुए तथा कम पूंजी विनियोग से अधिक उत्पादन और विदेशी व्यापार के लिये औद्योगिक निर्मित माल प्राप्त हो सका था। 1942 तक लघु उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है पर युद्धोत्तर काल में अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण में वृहत् आकार तथा आधारभूत उद्योगों की स्थापना की नीति से लघु उद्योगों के विकास पर कम ध्यान दिया जाने लगा है। इससे लघु उद्योगों के सामने कुछ कठिनाइयों का प्रादुर्भाव हुआ है। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि जापान के औद्योगीकरण के प्रारम्भिक काल

में पूंजी तथा तकनीकी अभाव में लघु उद्योगों का विकास अर्थव्यवस्था के लिये युग प्रवर्तक कहा जा सकता है। प्रो० लॉकवुड का कथन इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है— "लघु उद्योगों ने जापान को बड़ी मात्रा में पूंजी विनियोग, साहसिक कुशलता जिसकी प्रारम्भिक स्तर पर बहुत कठिनाई थी, मितव्ययता की समर्थता प्रदान की है।"[1]

अब औद्योगिक संरचना में आधारभूत परिवर्तन से श्रम प्रधान उद्योगों के स्थान पर पूंजी प्रधान उद्योगों का महत्व बढ़ने तथा उपभोक्ता उद्योगों में भी बृहत् आकार की इकाइयों की प्रवृत्ति बढ़ने के बावजूद अब भी रोजगार और सहायक रोजगार की दृष्टि से लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। वहां पर सरकार की बृहत् तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों के क्षेत्रों में प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर परस्पर सहयोग एवं समन्वय की नीति, दूसरे राष्ट्रों के लिये भी अनुकरणीय है।

---

1. W. W. Lockwooc
page 23

अध्याय 6

जापान के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएं

(Salient Features of Japanese Foreign Trade)

जापान जैसे देश के लिए जिसमें प्राकृतिक साधनों की स्वल्पता है, क्षेत्र की सीमितता है वहाँ अपने आर्थिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए विदेशी व्यापार पर वहुत अधिक आश्रित रहना पड़ता है। जापान दुनियां के अन्य भागों से कच्चे माल का आयात कर उन्हें तैयार माल की आकृति दे, पुनः अन्य देशों को लौटा देता है, इस कारण उसकी अर्थ-व्यवस्था का मूल आधार विदेशी व्यापार ही रह जाता है। जो देश मेजी पुनर्संस्थापन से पूर्व विदेशियों के नाम से भय खाता था और उनसे पृथकत्व की नीति अपनाई गई थी, वही देश आज विदेशी व्यापार पर आधारित अर्थ-व्यवस्था से विश्व के समृद्ध एवं सम्पन्न देशों मे गिना जाने लगा है। उसकी प्रवृति विदेशी वाजारों पर छा जाने की है। आज विश्व के हर कोने २ में जापान का निर्मित माल, उसकी लोकप्रियता का परिचायक है। जहां 1888 में जापान के कुल विदेशी व्यापार का मूल्य 14·40 करोड़ येन था वह 1938 में बढ़कर 533·1 करोड़ येन हो गया। इतने अल्प समय में विदेशी व्यापार में जो अकाल्पनिक वृद्धि हुई है उसका उदाहरण विश्व में अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। प्रो. लॉकवुड ने तो यहां तक कहा है कि 1868 के बाद जापान के विदेशी व्यापार में जो क्रान्तिकारी वृद्धि हुई है उससे अधिक नाटकीय परिवर्तन और किसी क्षेत्र में नही हुआ। 1960 में जापान के आयात और निर्यात का मूल्य क्रमशः 44·91 लाख और 40·54 लाख डालर था वह बढ़कर 1965 में क्रमशः 81·69 लाख तथा 84·52 लाख डालर हो गया है। अर्थात् पांच वर्षों में ही विदेशी व्यापार लगभग दुगुना ही नहीं हुआ वल्कि सन्तुलन विपक्ष से पक्ष में परिवर्तिन हो गया है। पहले जो देश कच्चे माल का निर्यातक तथा पक्के माल का आयातक था, वह आज कच्चे माल का आयातक और पक्के निर्मित माल का निर्यातक देश वन गया है। भारत से भी जापान लोह-अयस्क,

मैंगनीज, चमड़ा, कपास, तम्बाकू तथा खालें आयात करता है और बदले में रेशम, मशीनें, रसायन, खादें तथा आटोमोबाईल्स् निर्यात करता है 1965 में जापान से भारत को 20·3 करोड़ डालर मूल्य का माल आया जबकि केवल 13·9 करोड़ डालर का माल गया। आज जापान का विदेशी-विनिमय कोष बढ़ रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि जापान की अर्थ-व्यवस्था विदेशी व्यापार की अर्थ-व्यवस्था है।

तोकुगावा शासन में विदेशी व्यापार

जैसा कि मेजी पुनर्स्थापन की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि में देखने से प्रतीत होता है कि जापान के शासक विदेशियों खासतौर से पश्चिमी राष्ट्रों से भय खाते थे और उन्होंने पृथक्कीकरण की नीति (Policy of seclusion) का अनुसरण किया था। 19वीं शताब्दी के मध्य तक जापान का विदेशियों से व्यापारिक सम्बन्ध बहुत कम था। जहाजी बेड़ा तो नाम मात्र का था। पड़ौसी देशों के साथ भी व्यापार नगण्य था। सर्व प्रथम जब 1854 में पैरी (Perry) ने सागा की खाड़ी में प्रवेश कर तोकुगावा शासकों को व्यापारिक सन्धि पर बाध्य किया तो उसके बाद उनकी पृथकत्व की नीति धराशायी हो गई और विदेशी व्यापार के युग का सूत्रपात हुआ। इस समय भी विदेशी व्यापार का जापान की अर्थ-व्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था।

मेजी पुनर्संस्थापन काल तथा उसके बाद में विदेशी व्यापार
(Japan's Foreign Trade in Meiji Restoration and afterwards)

मेजी पुनर्संस्थापन से जापान की अर्थ-व्यवस्था में पाश्चात्य पद्धति पर आधारित आधुनिक जापान के नये युग का शुभारम्भ हुआ। 'समृद्ध राष्ट्र, सदृढ़ सेना' (Rich Nation; Strong Army) के नारे से प्रेरित जापानी जनता ने वर्षों के आर्थिक पृथक्करण के बाद अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में प्रवेश किया। 50 से 75 वर्षों के अपेक्षाकृत अल्प समय में ही जापान के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जो आश्चर्य-जनक वृद्धि हुई उससे वह विश्व का प्रमुख व्यापारिक राष्ट्र बनने में सफल हो गया। इसीलिए तो प्रो. लॉकवुड ने इस सम्बन्ध में कहा था कि 1868 के बाद जापान के विदेशी व्यापार में जो नाटकीय एवं क्रान्तिकारी वृद्धि हुई है वह सबसे महत्वपूर्ण है।"[1] जापान के आयात और निर्यात में लगातार तेज गति से वृद्धि हुई इससे 1880 से 1913 के बीच की अवधि में ही विदेशी व्यापार में 8 गुना वृद्धि हो गई। विदेशी व्यापार का मूल्य 19वीं शताब्दी के अन्त तक राष्ट्रीय आय का लगभग 10 प्रतिशत

---

1. W. W Lockwood:—"The Economic Development of Japan." Page 305.

भाग था वह दो विश्व-युद्धों के बीच राष्ट्रीय आय के लगभग 15 से 20 प्रतिशत तक पहुंच गया।

मेजी शासन के प्रारम्भ में जापान मुख्यत. कृषि प्रधान देश था। अतः वह कच्चे माल का निर्यात और निर्मित पक्के माल का आयात करता था, परन्तु बाद के दशकों में उसकी आर्थिक संरचना में तेजी से पाश्चात्य प्रवृत्तियों का विस्तार होने लगा। 1870 में जो विदेशी व्यापार 75 लाख डालर था वह 1890 में बढ़कर 375 लाख डालर हो गया। उसके बाद में वृद्धि और भी द्रुत गति से हुई क्योंकि जापान सरकार ने निर्यात सम्वर्द्धन नीति तथा संरक्षणात्मक करों की व्यवस्था अपनाई। 1910 में जापान का कुल निर्यात 2230 लाख डालर था, वह 1920 में 9450 लाख डालर तक पहुंच गया।

1900 से 1913 के बीच जापान में रेशम तथा सूती वस्त्र उद्योग के तेजी से विकास से निर्यातों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। 1868 से 1913 तक की विदेशी व्यापार प्रगति निम्न आंकड़ों से स्पष्ट हो जाती है :—

जापान के मुख्य भाग का विदेशी व्यापार
(1868 से 1913)

(करोड़ येन)

अवधि (वार्षिक औसत)	आयात	निर्यात	कुल (विदेशी व्यापार)
1868–72	2·3	1·6	3 9
1888–93	7·3	7·7	15·0
1894–98	22·3	13·9	36·2
1904–08	44·2	37·7	81·9
1909–13	54·4	49·6	104·0

Source :—"The foreign Trade of Japan"—A Statistical Survey"

उपर्युक्त तालिका में मेजी पुनर्संस्थापन काल में प्रथम विश्व-युद्ध के पहले की विदेशी व्यापार की स्थिति यह बताती है कि विदेशी व्यापार में लगभग 40 वर्षों में ही 30 गुना वृद्धि हुई। इस तीव्र गति से वृद्धि के निम्न कारण हैं :—

(1) मेजी पुनर्संस्थापन के साथ २ देश में पृथक्कीकरण की नीति का परित्याग और विदेशों से व्यापारिक सम्बन्धों में वृद्धि।

(2) जापान में पाश्चात्य उत्पादन पद्धतियों का प्रसार तथा उन्नत व्यावसायिक संगठनों के निर्माण ने बहुत प्रोत्साहन दिया। प्रो लॉकवुड के अनुसार "प्रारम्भिक प्रेरणा और नई उत्पादन पद्धतियों का प्रादुर्भाव विदेशों की ही देन थी।"

(3) बढ़ते हुए विदेशी व्यापार से जापान की अर्थ-व्यवस्था पर लाभदायक प्रभावों से सरकार ने विदेशी व्यापार को अधिकाधिक बढ़ाने की नीति का अनुसरण किया।

(4) यातायात के साधनों के विकास से विदेशी व्यापार में वृद्धि को बल मिला।

(5) जापान का जन-जीवन पाश्चात्य जीवन-स्तर से प्रभावित हुआ और वे प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effect) के कारण जीवन-यापन के उन्नत तरीकों और विदेशी व्यापार की वृद्धि की ओर अग्रसर हुए।

प्रथम विश्व-युद्ध से द्वितीय विश्व-युद्ध तक जापान का विदेशी व्यापार
(Japan's Foreign Trade between Two World Wars)

प्रथम विश्व-युद्ध जापान की अर्थ-व्यवस्था के लिए वरदान सिद्ध हुआ। जब अनेक पश्चिमी देश युद्ध में जूझ रहे थे, जापान को अपने निर्यात बढ़ाने का सुअवसर मिला। उस समय उसे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का भय नहीं था और युद्धरत राष्ट्र स्वयं जापान से वस्तुओं को आयात कर रहे थे। प्रथम विश्व-युद्ध की अल्प अवधि में जापान का विदेशी व्यापार अपनी चरम सीमा 450 करोड़ येन तक पहुंच गया। जहां 1880 से 1913 की अवधि में आयात और निर्यात दोनों हर एक दशक में दुगुने हो जाते थे पर 1913 से 1937 की अवधि में निर्यात में लगभग चौगुनी तथा आयात में तिगुनी से कुछ कम वृद्धि हुई। जहां 1885 में विदेशी व्यापार राष्ट्रीय आय का लगभग 5 प्रतिशत था वह 1915–19 की अवधि में बढ़कर राष्ट्रीय आय का 20% हो गया। उसके बाद दूसरे दो दशकों में भी यह अंक इसी के आसपास चढ़ता उतरता रहा। प्रथम विश्व युद्ध के कुछ समय बाद 1921–22 में विदेशी व्यापार में कमी हुई, पर फिर 1924–29 के बीच वृद्धि का रुख रहा। 1930 से 1933 के बीच विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी ने जापान के विदेशी व्यापार को भी बहुत बुरा प्रभावित किया, पर फिर 1931 से 1937 के बीच जापान की अर्थ-व्यवस्था को युद्धस्तर पर विकसित किया जाने लगा। सरकार द्वारा युद्ध सामग्री के लिए व्यय में पर्याप्त वृद्धि से औद्योगिक क्रियाशीलता में वृद्धि हुई और जापान के विदेशी व्यापार में तेजी से वृद्धि हुई। जापान में वस्त्र उद्योग, रासायनिक उद्योग, रेशम उद्योग तथा अन्य उत्पादक उद्योगों में उत्पादन बढ़ रहा था। पो. जी. सी. ऐलन के शब्दों में—"देश ने समृद्ध सूती-वस्त्र उद्योग का निर्माण कर लिया है। वह अपने उद्योग के लिए उसके यन्त्रों का निर्माण कर रहा है जिससे निर्मित माल के व्यापार में सुदृढ़ता रहे।" कपड़े का निर्यात कुल निर्यात का 55% तथा कच्चा रेशम 30% था। पर इसके बाद व्यापार की बनावट और दिशा में भी परिवर्तन हुआ।

1931 से 1939 के बीच जापान के विदेशी व्यापार ने संरचनात्मक परिवर्तनों से निर्मित माल के निर्यात में वृद्धि हुई जबकि कच्चे तथा अर्द्ध निर्मित माल के निर्यात

में कमी हुई। इसी प्रकार कच्चे माल के आयात में वृद्धि हुई तथा निर्मित माल का आयात घटा। जापान की अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्व बहुत बढ़ गया था और इसीलिए जापान की अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार की विकासोन्मुख (Foreign Trade Development Oriented) लोच थी। जापान हमेशा उदार व्यापारिक व्यवस्था का समर्थक रहा है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के समय विदेशी व्यापार क्षेत्र में दूसरे देशों द्वारा तरह तरह के नियन्त्रण और प्रतिबन्धों के दौर से जापान की अर्थ-व्यवस्था के सामने कठिनाइयां और संकट उत्पन्न होने लगे। जापान अपनी व्यावसायिक अभिलाषा की रक्षा के लिए द्वितीय विश्व युद्ध में कूदा। यदि वह फिलिपाईन्स, मलाया तथा इन्डोनेशिया पर अपना आधिपत्य जमा लेता तो वह विदेशी व्यापार में आत्म-निर्भर हो जाता। पर भाग्य में कुछ और ही बदा थी। 1943 में जापान सरकार ने एक विदेशी व्यापार निगम (Foreign Trade Corporation) की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य विदेशी व्यापार की कठिनाइयों का अध्ययन कर सरकार को सुझाव तथा व्यापार वृद्धि के प्रयत्न करना था। युद्ध काल में जापान सरकार को उसकी सम्पूर्ण अर्थ-नीति का एकाधिकार था। अतः जीते गये उपनिवेशों में भी विदेशी व्यापार निगम स्थापित किये।

द्वितीय विश्व-युद्ध में जापान के विदेशी व्यापार की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई क्योंकि सामरिक महत्व के उत्पादन को प्राथमिकता दी गई थी और विदेशी व्यापार पर विश्व में प्रतिबन्धों का बोलबाला था। जापान के विदेशी व्यापार की प्रगति तथा पतन का भान निम्न तालिका से होता है :—

दो विश्व-युद्धों की अवधि के बीच जापान का विदेशी व्यापार
(1914—1945)
(Foreign Trade of Japan during 1914 to 1945)

(करोड़ येन)

वर्ष (औसत)	आयात	निर्यात	कुल
1909–1913	54·4	49·6	104·0
1914–1920	130	143·4	273·4
1920	233·6	194·8	428·4
1921	161·4	125·3	286·7
1925	257·3	230·6	487·9
1929	221·6	214·9	436·5
1930–1933	150·0	140·0	290·0
1934	228·3	217 2	445·5
1935–1939	386·80	377·20	764·0

इस तालिका से विदित होता है कि प्रथम विश्व युद्ध में तो जापान के विदेशी व्यापार में बहुत वृद्धि हुई पर 1921 में युद्धोत्तर काल की मन्दी का प्रभाव पड़ा। फिर भी 1925 से 1929 में औसत वार्षिक आयात और निर्यात क्रमशः 284·9 करोड़ येन और 249·4 करोड़ येन था। विश्व-व्यापी मन्दी में गिर कर यह लगभग आधा रह गया। 1935–39 की अवधि में फिर २ गुना वृद्धि हुई। द्वितीय विश्व-युद्ध में निर्यात अस्त-व्यस्त हो गया तथा आयात में भी कमी हो गई।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद में जापान का विदेशी व्यापार
(Foreign Trade of Japan in Post-War period)

1945 में जापान के आत्म समर्पण के समय सारी अर्थ-व्यवस्था युद्ध की विभीषिका में नष्ट प्रायः हो चुकी थी। औद्योगिक उत्पादन युद्ध पूर्व स्तर का एक तिहाई रह गया था। राष्ट्रीय आय 1938-39 में 16-17 विलियन येन से घटकर 1946 तक केवल 8-9 विलियन येन ही रह गयी थी। जापान की जहाजरानी क्षमता का 80 प्रतिक्षत भाग नष्ट हो गया था। इस प्रकार नष्ट प्रायः अस्त-व्यस्त अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार का न्यूनतम स्तर पर पहुँच जाना अस्वाभाविक नहीं था। 1946 में सैनिक शासन ने विदेशी व्यापार निगम को समाप्त कर विदेशी व्यापार मण्डल (Borad of Foreign Trade) की स्थापना की। पहले दो वर्षों में व्यापार पर केवल सरकार का नियन्त्रण रहा पर धीरे धीरे 1947 में निजी व्यक्तियों को छूट दी गई। विदेशी निर्यात समाप्त प्रायः होजाने से भुगतान असन्तुलन को दूर करने तथा विदेशी विनिमय संकट से मुक्ति के लिए अमेरिका की सहायता ली गई।

1950 में कोरिया युद्ध छिड़ जाने से निर्यात की मात्रा और मूल्यों में तेजी से अच्छे मूल्य मिले। 1951 में निर्यात मूल्य 1949 के मुकाबले 165% अधिक था। देश में युद्ध जर्जरित तथा क्षत विक्षत अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए आयात निर्यात से अभी भी अधिक थे। अतः सरकार ने 1953 में निर्यात सम्वर्द्धन के प्रभावी कदम उठाये। यहां तक कि अवमूल्यन की नीति का अनुसरण किया गया। निर्यात सम्वर्द्धन के प्रयत्नों के अन्तर्गत निर्यात वस्तुओं के लिए आवश्यक आयातों की स्वीकृति दी गई। 1954 के बाद जापान के निर्यात में निश्चित रूप में वृद्धि तथा आयात में कमी की प्रवृत्ति आई। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि जापान का निर्यात 1930 तथा युद्ध पूर्व के स्तर पर नहीं पहुँच सका जबकि 1955 में जापान का औद्योगिक उत्पादन 1930 की तुलना में दुगुने से भी अधिक था।

जापान में युद्धोत्तर काल के पहले दशक में विदेशी व्यापार में मन्द गति के कुछ ऐसे कारण थे कि जापान अपने निर्यात बढ़ाने में असमर्थ था। इनमें सबसे पहला

कारण युद्धोत्तर काल के प्रारम्भिक वर्षों में पुनर्निर्माण के लिए आन्तरिक साधनों का उपयोग था जिससे निर्यात के लिए उपलब्ध माल की स्वल्पता थी। दूसरा सरकार द्वारा जायबत्सू (Zaibatsu) तथा एकाधिकार विरोधी नीति के अनुसरण से औद्योगिक क्षमता में कमी। युद्धोत्तर काल में अमेरिका द्वारा अत्यधिक पुनर्वास व्यय से मूल्य-स्तर में वृद्धि होने से जापान की वस्तुओं का मूल्य ऊंचा हो गया था, जबकि दूसरे राष्ट्रों के मूल्य-स्तर में कमी आने से जापान की विदेशी बाजारों में प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति का ह्रास हो गया था और यह उसके निर्यात वृद्धि में तीसरा महत्वपूर्ण बाधक तत्व था। चौथा कारण युद्धोत्तर काल में जापान के निर्यात क्षेत्र में भी कमी आगई थी। इन सब कारणों का सामूहिक प्रभाव जापान के निर्यात में बाधा उत्पन्न कर रहा था। इसके अलावा एशियाई राष्ट्रों में भी सूती वस्त्र उद्योग के विकास से तथा विकसित राष्ट्रों में जापान के रेशम के स्थान पर अमेरिका के नाइलोन उत्पादन ने कठिनाई उपस्थित कर दी थी।

जापान ने युद्धोत्तर काल के द्वितीय दशक में इन सब चुनौतियों को स्वीकार किया। इस समय तक पुनर्निर्माण का कार्य बहुत कुछ समाप्त हो चुका था। जापान ने इन परिस्थितियों का मुकाबला नये क्षेत्र तथा व्यापारिक संरचना के परिवर्तन से किया। अमेरिका द्वारा जापान के निर्यातों को प्राथमिकता दी गई। 1960 के बाद जापान के विदेशी व्यापार में केवल पांच वर्षों में ही दुगुनी वृद्धि हो गई है। आज जापान का निर्मित माल विश्व के विभिन्न देशों में अपनी धाक जमाये हुए है।

व्यापार की बनावट को देखने से प्रतीत होता है कि जहां युद्ध पूर्व काल में जापान के निर्यात व्यापार में 50% भाग वस्त्रों तथा 16% भाग धात्विक साधनों, यन्त्रों और रसायन वस्तुओं का था 1963 में परिवर्तित होकर क्रमशः 22·9 प्रतिशत और 50·1% रह गया है। इसी प्रकार आयात में कच्चे माल का आयात 32% से घटकर केवल 13% ही रह गया है। व्यापार की दिशा के अनुसार भी परिवर्तन हुआ है। यह सब विशेषताओं के अन्तर्गत दिया गया है। आयातों पर से नियन्त्रण धीरे२ हटाये जा रहे हैं और निर्यातों की प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति में वृद्धि के लिए जापान की सरकार तथा जापानी उद्योगपति और व्यापारी वर्ग अपने उद्योगों के आधुनिकीकरण और स्वचालितता को प्रोत्साहित कर रहे हैं। विश्व में स्टील उत्पादन की लागत जापान में सबसे कम है। जापान के विदेशी व्यापार की युद्धोत्तर काल में प्रगति का दिग्दर्शन निम्न तालिका से मिलता है :—

युद्धोत्तर काल में जापान का विदेशी व्यापार

(मूल्य करोड़ डालर)

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल व्यापार	व्यापार शेष
सितम्बर 1945 } दिसम्बर 1946 }	30·6	10·3	40·9	— 20·3
1947	52·6	17·4	70·0	— 35·2
1951	199·5	135·5	335·0	— 64 0
1956	323·0	250·0	573 0	— 73·0
1960	449·1	405·5	854 6	— 43·6
1965	816·9	845·2	1662·1	+ 28·3

इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि जापान का विदेशी व्यापार 1946 में घटकर बहुत कम हो गया था और 1947 के मुकाबले 1951 में कोरिया युद्ध के कारण कुल विदेशी व्यापार में लगभग चौगुनी वृद्धि हुई, तब से वृद्धि का दौर बढ़ता गया परन्तु आयात का मूल्य निर्यात की अपेक्षा कर बढ़ने से व्यापार शेष का घाटा भी 1957 तक बहुत बढ़ता गया। यहां तक कि 1957 में व्यापार का घाटा 143 करोड़ डालर से भी अधिक था पर फिर घटता गया। 1960 में घाटा 43 करोड़ डालर के लगभग रहा। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि 1965 में जापान का व्यापार शेष 28·3 करोड़ डालर पक्ष में रहा।

अनेक उतार-चढ़ावों के बाद जापान पुनः विदेशी व्यापार में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने में कृत संकल्प है। आज उसी के विदेशी विनिमय कोषों की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

जापान के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताएं
(Salient Features of Japanese Foreign Trade)

प्रत्येक देश की अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्व होता है पर जापान की अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्व अधिक है। उसके विदेशी व्यापार में अनेक विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। ये विशेषताएं मुख्य रूप से निम्न हैं :—

(1) **विदेशी व्यापार प्रधान अर्थ-व्यवस्था**—एक समय था जब जापान के लोग विदेशियों से भय खाते थे और विदेशी व्यापार नाम मात्र का था। 1870 में जापान का विदेशी व्यापार 70 लाख डालर था पर 100 वर्षों की अवधि से पूर्व ही हम यह देखते हैं कि जापान की अर्थ-व्यवस्था में विदेशी व्यापार का मूल्य 1662 करोड़ डालर से भी अधिक हो गया है। यह जापान की राष्ट्रीय आय के लगभग 18–20 प्रतिशत के बराबर है। इस प्रकार विदेशी व्यापार जापानी अर्थ-व्यवस्था

की ग्राधार शिला है और जापानी अर्थ-व्यवस्था विदेशी व्यापार का अनुसरण करती है ।

(2) **विदेशी व्यापार में निरन्तर वृद्धि**—जापान के विदेशी व्यापार में पिछले दो दशकों में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। पहले 1868 से 1937 तक के वर्षों में तो वृद्धि तीव्र गति से रही। पर यह तीव्रता युद्धोत्तर काल में और भी अधिक हो गई है। जहां 1947 में विदेशी व्यापार का मूल्य 70 करोड़ डालर था, वह 1951 में 335 करोड़, 1960 में 854 करोड़ डालर हो गया। पर इससे भी अधिक तीव्र प्रगति 1960 से 1965 की अवधि में हुई जिसमें विदेशी व्यापार दुगुना हो गया। 1965 में विदेशी व्यापार का कुल मूल्य 1662 करोड़ डालर था।

(3) **आयात और निर्यात की सापेक्षिक वृद्धि**—युद्धोत्तर काल में जापान के विदेशी व्यापार में एक विशेषता यह पाई जाती है कि आयात और निर्यात दोनों में वृद्धि हुई है पर आयात-निर्यात की अपेक्षा अधिक रहा है। जहां 1947 में आयात और निर्यात क्रमशः 52·6 तथा 17·4 करोड़ डालर के हुए जबकि 1960 में क्रमशः 449·1 करोड़ तथा 405·5 करोड़ डालर रहे। केवल 1965 में जाकर प्रथम बार निर्यात का मूल्य आयात की अपेक्षा अधिक रहा। 1965 में निर्यात का मूल्य 845·2 करोड़ डालर था जबकि आयात का मूल्य 816·9 करोड़ डालर ही। द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व भी जापान का विदेशी व्यापार बढ़ा था पर इतनी सीमा तक नहीं।

(4) **विदेशी व्यापार में घाटा**—युद्धोतर काल के बाद पर 1965 से पहले प्रत्येक वर्ष में जापान का व्यापार शेष विपक्ष में रहा। प्रारम्भ में यह घाटा 1945-46 में केवल 20 करोड़ डालर का था, वह 1951 में 64 करोड़ तथा 1957 में 143 करोड़ डालर तक पहुँच गया। उसके बाद घाटे में कमी का रुख आया यहां तक कि 1965 में व्यापार शेष का घाटा लाभ में परिवर्तित हो गया। 1965 में व्यापार शेष 28·3 करोड़ डालर जापान के पक्ष में था। तब से यह बढ़ता गया है। आज जापान विदेशी विनिमय कोषों को बढ़ाता ही जा रहा है।

(5) **विदेशी व्यापार की बनावट में परिवर्तन**—एक समय था जब जापान कच्चे माल का निर्यातक तथा निर्मित पक्के माल का आयातक था पर अब स्थिति बिल्कुल परिवर्तित हो गई है। अब वह पक्के माल में विभिन्न प्रकार की उत्पादक एवं उपभोग वस्तुओं का निर्यात करता है तथा कच्चे माल तथा अर्ध-निर्मित माल का आयात करता है। जापान की अर्थ-व्यवस्था में निर्यात का महत्व अधिक है और इस कारण जापानी अपनी अर्थ-व्यवस्था में निर्यात सम्वर्द्धन के अनुरूप परिवर्तन तथा लोच रखते हैं। जापान के आयात-निर्यात का तुलनात्मक स्वरूप निम्न तालिकाओं से स्पष्ट है :—

निर्यात व्यापार का स्वरूप (1934–59)

(कुल मूल्य के प्रतिशत अनुपात में)

वस्तु	1934-36	1955	1959
(1) वस्त्र तथा तत्सम्बन्धी उपज	52	37·3	29·8
(2) कच्चा रेशम	11	2·5	1·3
(3) सूती कपड़ा	16·5	11·4	8·4
(4) धातु और धातु का सामान	8·2	19 2	11·6
(5) मशीनें, गाड़ियाँ	7·6	15·3	26·0
(6) जहाज	—	3 9	10·6
अन्य सहित कुल योग	100	100	100

आयात व्यापार का स्वरूप (1934–59)

(कुल मूल्य के प्रतिशत अनुपात)

वस्तु	1934-36	1955	1959
(1) खाद्यान्न	23·3	25·3	13·8
(2) वस्त्रादि सामान	31·8	24·4	18·2
(3) पेट्रोलियम और कोयला	4·9	11·7	15·5
(4) लोहा धातु और इस्पात स्क्रेप	3·2	5·9	13·8
(5) मशीनें	4·7	5·4	9·8
(6) अन्य	32·9	27·3	28·9
कुल योग	100	100	100

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि जापान के विदेशी व्यापार की बनावट में नाटकीय ढंग से परिवर्तन हुआ है। जापान में अब मुख्य निर्यात की वस्तुएं लोह-इस्पात, जलयान, सूती वस्त्र, रेशम वस्त्र, मोटर, रेडियो, टेलीविजन और उर्वरक हैं। जबकि आयात की मुख्य वस्तुओं में गेहूँ, चीनी, कपास खनिज तेल, ऊन, लोहा-अयस्क, सोयाबीन, कोयला और मक्का आदि का समावेश होता है। जापान की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह कच्चा माल मंगा कर उन्हें उत्पादन मूल्य प्रदान कर ऊंचा लाभ कमाता है। भारत का लोहा-अयस्क लेकर भारत को लोह-इस्पात का निर्यात करता है।

(6) **विदेशी व्यापार की दिशा में परिवर्तन**—आजकल आयात और निर्यात दोनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान अमेरिका का है। 1965 में जापान के कुल

निर्यात का 29·5 प्रतिशत अमेरिका को गया था जबकि 1934-36 तथा 1955 में यह प्रतिशत क्रमशः 17 और 22 ही था। इसी प्रकार आयात में भी जापान को 28 प्रतिशत माल अमेरिका से प्राप्त होता है। चीन (मुख्य भू-भाग) तथा कोरिया फार्मोसा का भाग आयात और निर्यात दोनों में बहुत घट गया है। विकासशील राष्ट्रों से आयात-निर्यात दोनों के प्रतिशत में वृद्धि हुई है।

(7) **लोचपूर्ण अर्थ-व्यवस्था से विदेशी व्यापार में समयानुकूल परिवर्तन करने में समर्थता**—जापानी अपनी अर्थ-व्यवस्था में समयानुकूल परिवर्तन से विदेशी व्यापार में संकट टालने की क्षमता रखते हैं। इसीलिए तो प्रो ऐलन ने ठीक ही कहा है—"उसकी अर्थ-व्यवस्था की लोचता ने उसे नये बाजार ढूंढने तथा नयी प्रति-स्थापन वस्तुओं से उन बाजारों तथा वस्तुओं के होने वाले नुकसान से बचाया है जो बाजार तथा वस्तुओं के व्यापार में होने वाले परिवर्तनों से हुआ।"[1] युद्धोत्तर काल में विदेशी व्यापार के स्वरूप तथा दिशा में होने वाले परिवर्तन इस लोचता के परि-चायक हैं।

(8) **निर्यात वृद्धि के प्रति उत्पादकों की जागरुकता**—जापान के व्यवसायी बड़े कुशल और निर्यात सम्वर्द्धन के प्रति जागरुक हैं। वे उत्पादन लागत को कम करने में आधुनिकीकरण तथा स्वचालितता की पद्धतियाँ तो अपना ही रहे हैं इसके अलावा विश्व के व्यापारियों व उपभोक्ताओं को अपने उत्पादनों से परिचित कराने के लिए प्रदर्शनियां, शिष्ट-मण्डल व नमूनों की भेंट की पद्धतियां अपनाते हैं। 1965-66 में जापानी व्यवसायियों न अपने सारे उत्पादनों को बड़े जलयान "साकुरा मारू" पर प्रदर्शनी जमा कर दुनियां के प्रसिद्ध २ बन्दरगाह-नगरों में प्रदर्शनी हेतु भेजा। यह जहाज भारत में भी दिसम्बर 1965 में आया था।

(9) **जापान सरकार की विदेशी व्यापार नीति, निर्यात सम्वर्द्धन की रही है**—जापान सरकार ने हमेशा से विदेशी व्यापार में निर्यात सम्वर्द्धन की प्रगतिशील नीतियों का अनुसरण किया है और अपने आयातों को हमेशा उत्पादन तथा निर्याती-न्मुख (Production-cum-Export Oriented) बनाने की नीति अपनाई है। निर्यात वृद्धि के लिए विभिन्न संस्थानों की नियुक्ति की गई है। अनेक व्यापारिक समझौते किये जाते हैं। सस्ती एवं सुलभ साख व्यवस्था उपलब्ध कराई जाती है। निर्यात उद्योगों को अनेक रियायतें दी जाती हैं।

(10) **विदेशी व्यापार में जापान को अमेरिका का प्रोत्साहन**—जापान के विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का पर्याप्त सहयोग रहा है। अमेरिका जापान के निर्यातों का सबसे बड़ा ग्राहक तथा जापान के आयातों का

1. G. C. Allen :—A Short Economic History of Modern Japan page 159.

सबसे बड़ा विक्रेता रहा है। युद्ध के बाद आश्रय के रूप में अन्य आर्थिक सहायताओं के अतिरिक्त अमेरिका ने जापान के विदेशी व्यापार को बढ़ाने में भी मदद की है।

(11) **जापानी विदेशी व्यापार में बड़े चालक हैं**—वस्तुतः जापानी लोग बड़े "बनियां" होते हैं। अपने आर्थिक लाभ के लिए अपनी विदेशी नीति में थोड़ा बहुत हेर-फेर कर लेते हैं। जापान सं रा. अमेरिका का मित्र राष्ट्र है फिर भी वह साम्यवादी चीन के साथ व्यापार के अवसर नहीं खोता। यही नहीं दोनों चीन साम्य-वादी चीन और कुमिन टांग) से एक साथ व्यापार करता है।

(12) **अन्य**—जापान का विदेशी व्यापार अब पहले की अपेक्षा अधिक विविधता पूर्ण है। अधिकांश व्यापार सामुद्रिक मार्ग से होता है और रूस का जहाजी बेड़ा सुदृढ़ होने से उसकी जहाजरानी अधिक लाभदायक रहती है। विदेशी व्यापार में वृद्धि होने के बावजूद जापान का कुल विश्व व्यापार में भाग कम हुआ है। 1938 में समस्त विश्व व्यापार में जापान का भाग 3·5 प्रतिशत था, वर्तमान में वह घटकर 2·5 प्रतिशत ही रह गया है।

अध्याय 7

जापान के आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका

(Role of State in Economic Development of Japan)

वे दिन हवा हुए जब सरकार आर्थिक गतिविधियों के प्रति उदासीन होकर अपना कार्य क्षेत्र शिक्षा, रक्षा तथा सामान्य प्रशासन तक ही सीमित रखती थी। आज सरकार व्यक्ति के जीवन के सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक आदि सभी पहलुओं का नियंत्रण, नियमन तथा विकास की प्रक्रिया की ओर अधिक ध्यान देती है। आज देश की अर्थव्यवस्था में सरकार एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जापान के आर्थिक विकास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि जापान की सरकार ने वहां की अर्थ-व्यवस्था में कृषि, उद्योगों, यातायात एवं संचार, बैंकों तथा विदेशी व्यापार आदि के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

तोकुगावा शासन में सरकार की भूमिका

16वीं शताब्दी के अन्त में जापान में भंयकर गृह-युद्ध के बाद तोकुगावा शासन की स्थापना हुई। इस शासन काल में अर्थव्यवस्था में पुरातन उत्पादन-पद्धतियों, कृषि की प्रधानता, लघु एवं कुटीर उद्योगों की अर्थव्यवस्था और निम्न स्तर की दयनीय स्थिति थी। तोकुगावा शासन में एक सामन्तवादी प्रथा का जन्म हुआ जो विकास के प्रति उदासीन सिद्ध हुई। विदेशियों से एक अज्ञात भय था। अत: विदेशी व्यापार भी न्यूनतम था। यह कहा जा सकता है कि जब तोकुगावा शासन के प्रति असन्तोष फैला तब जाते-जाते उन्होंने अर्थव्यवस्था में कुछ परिवर्तन लाने का प्रयास किया। उन्होंने बन्दरगाहों के विकास का कार्य हाथ में लिया। देश के औद्योगिक विकास के लिये फ्रान्स तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से ऋण लिया। 1853 में सामुद्रिक जहाजों के निर्माण से प्रतिबन्ध हटा लिया गया। सुरक्षा उद्योगों की स्थापना की जाने लगी और आधुनिक तरीके के उद्योगों की स्थापना की प्रवृत्ति बढ़ रही थी।

मेजी पुनर्संस्थापन काल से अब तक

आधुनिक जापान का आर्थिक विकास मुख्य रूप से मेजी पुनर्संस्थापन से शुरू हुआ। इस समय से सरकार में पृथकत्व की नीति का परित्याग कर देश के औद्योगीकरण तथा आर्थिक विकास के लिये पाश्चात्य ढंग को अपनाया जाने लगा। उस समय जापानियों में "Rich Nation, Strong Army." "समृद्ध-राष्ट्र, सुदृढ़ सेना" की धुन सवार थी। इस प्रकार सदियों की स्थिर अर्थ-व्यवस्था में मेजी पुनर्संस्थापन ने नया जीवन फूंका। इस समय सरकार ने प्रशासन को को सुदृढ़ किया और आर्थिक विकास का क्रम जारी हुआ। प्रथम विश्व-युद्ध में औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिला। 1930 की विश्व-व्यापी मंदी से अर्थव्यवस्था में स्तब्धता आ गई। ज्योंही सरकार के प्रयत्नों से 1930 के बाद अर्थव्यवस्था को गतिशील किया था कि द्वितीय विश्व-युद्ध की विभीषिका ने जापान की अर्थव्यवस्था को नष्ट प्राय: कर अस्त-व्यस्त और क्षत-विक्षत कर दिया। सरकार ने युद्धोत्तर काल में पुर्ननिर्माण एवं विकास कार्यों को गति प्रदान की। अब हम यह देखते हैं कि जापान की अर्थ-व्यवस्था एक विकसित अर्थव्यवस्था है। सरकार ने आर्थिक विकास के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जो भूमिका अदा की उसका संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(1) कृषि विकास एवं सरकार

मेजी शासन काल में राज्य द्वारा कृषि विकास के लिये सर्वप्रथम कृषि में सामन्तशाही व्यवस्था को समाप्त किया। सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र में वृद्धि के लिये भुपुनर्प्राप्ति (Reclamation) कार्य शुरू किया। नई-नई फसलों की खेती तथा खेती के तरीकों में सुधार किया। किसानों को कृषि सम्बन्धी शिक्षा के लिये कृषि विद्यालय खोले, पश्चिमी फसलों को जापान में उगाने के लिये प्रायोगिक कृषि-केन्द्र स्थापित किये गये। किसानों के प्रशिक्षण के लिये घूम-घूम कर प्रशिक्षण देने के लिये शिक्षकों की नियुक्ति की गई। इसके अलावा विदेशों में कृषि के अध्ययन के लिये विशेषज्ञ भेजे गये। गहन कृषि को बढ़ावा दिया जाने लगा।

किसानों को ऋण की व्यवस्था तथा ऋण-ग्रस्तता से छुटकारे के लिये भी समय-समय पर प्रयास किये गये। 1867 में हुई पोथेक बैंक (Hypothec Bank of Japan) की स्थापना की गई जो किसानों को अचल सम्पत्ति पर दीर्घकाल के लिये सस्ती दर पर ऋण प्रदान करता था। इस बैंक के कार्य की सफलता इस बात से स्पष्ट होती है कि 1933 तक इस बैंक द्वारा 75 करोड़ येन दीर्घकालीन ऋण दिया जा चुका था। अल्पकालीन ऋण प्रदान करने के लिये सरकार द्वारा सरकारी समितियों की स्थापना का प्रयास किया गया। फलस्वरूप 1937 तक जापान में कुल मिला कर 16 हजार सहकारी संस्थाएं कृषि-क्षेत्र को लाभान्वित कर रही थीं।

कृषि उत्पादन में मूल्य स्थायित्व एक आधारभूत आवश्यकता है। प्रथम महायुद्ध के बाद चावल की कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव के नियंत्रण के लिये 1921 में Rice Act पारित किया गया। मंदी काल में कृषि-क्षेत्र भी बुरी तरह से प्रभावित हुआ। सरकार ने आर्थिक सहायता, अनुदान, ऋण आदि तो दिये ही, इसके अलावा 1929 में The Silk Stabilisation & Indemnification Act, पारित किया जिससे सरकार किसानों के घाटे की पूर्ति करती थी। 1933 में The Comprehensive Rice Law पारित किया। आर्थिक मंदी के दुष्प्रभावों के निवारण के लिये 1932 में "The Special Loans and Loss Compensation Law" तथा The Immovables and Mortgage Loan & Loss Compensation Law आदि भी महत्वपूर्ण थे। इन सबमें महत्वपूर्ण सरकारी प्रयास 1932 में The Agriculture Economic Recovery Bureau की स्थापना थी। पर इनसे विशेष लाभ किसानों को न हो सका।

सन् 1945 में जापान के आत्म समर्पण के बाद सैनिक प्रशासन ने भी 1946 में Owner Farmer Establishment Act पारित किया जिससे बड़े-बड़े जमींदारों तथा भूमिपतियों से निश्चित सीमा से अधिक भूमि सरकार द्वारा 1937 के मूल्यों के आधार पर खरीद कर मुआवजा चुका दिया और भूमि कृषक-स्वामियों को दे दी गई। इससे जापान कृषक-स्वामियों (Peasant Proprietors) का देश हो गया है। अब भी जापान की सरकार वहां की कृषि की समृद्धि के प्रति पूर्णरूप से जागरुक है।

(2) औद्योगिक विकास और सरकार

जापान के औद्योगिक विकास में सरकार का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चीन जापान के युद्ध तक सरकार ने स्वयं उद्यमकर्त्ता के रूप में बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना की। इसके बाद प्रत्यक्ष उद्योग स्थापित न कर अप्रत्यक्ष रूप में निजी उद्योगपतियों को वित्तीय ऋण, सहायता, अनुदान, कर रियायतों आदि से उद्योगों को प्रोत्साहित किया। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद औद्योगिक क्षेत्र में होने वाले उतार-चढ़ाव का नियंत्रण तथा नियमन किया पर द्वितीय विश्व-युद्ध में ध्वस्त एवं जर्जरित उद्योगों के पुनर्निर्माण में सरकार ने एक अभूतपूर्व सहयोग प्रदान किया। यह विभिन्न स्तरों पर सरकार का औद्योगिक क्षेत्र में योगदान निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता है—

(क) सरकार उद्यमकर्त्ता के रूप में (1868–1893)—मेजी शासन के पुनर्संस्थापन काल में जबकि देश में निजी उद्योगपति पूंजी लगाने में हिचकिचाते थे, उद्योगपतियों का अभाव था। सरकार ने स्वयं उद्योगों की स्थापना की। इनमें आइची, तथा हिरोशिमा की सूती मिलें, मायेवासी और तामिआको में रेशम मिलें, शिराकावा

व्हाइट टाईल वर्क्स, दी फुकुगावा सीमेंट वर्क्स, सेनजी वूलन वेव फेक्टरी, सोडियम सल्फेट व ब्लीचिंग पाउडर के कारखाने तथा सप्परो में चीनी के कारखानों का नाम उल्लेखनीय है।

सरकार ने नये कारखाने तो स्थापित किये ही, इसके अलावा सुरक्षा तथा जहाजरानी उद्योगों को अपने हाथ में ले लिया तथा उनमें आधुनिक ढंग के सयन्त्र लगवाये गये जिनमें नागासाकी लोह फाउन्डरी तथा कागोशिमा जहाज निर्माण यार्ड प्रमुख थे।

साथ ही साथ सरकार ने निजी उद्योगपतियों को विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायता प्रदान की। जब कुछ उद्योग ठीक व्यवस्थित रूप से चल निकले तो सरकार ने उचित मूल्यों पर निजी उद्योगपतियों को बेच दिया। फिर भी 1880 में सरकार के स्वामित्व में 5 गोला-बारूद के कारखाने, तीन पोत निर्माण प्रांगण, 51 व्यापारिक जहाज, 10 खानें, 52 अन्य कारखाने आदि सरकार के उद्यमकर्त्ता के रूप में औद्योगिक विकास के प्रयासों का परिचायक है। 1882 के बाद निर्माणकारी उद्योगों में सरकार ने प्रत्यक्ष सहभागिता के आधार पर सरकार का कार्य कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्योगों तक ही सीमित रहा। इस प्रकार 1893 तक जापान की औद्योगिक व्यवस्था इस स्तर पर पहुँच गई थी। अब निजी पूंजी पर्याप्त मात्रा में आने का वातावरण बन चुका था।

(ख) **वित्तीय सहायता कर्त्ता के रूप में सरकार**—1894–95 के बाद में सरकार ने निजी उद्योगपतियों को वित्तीय तथा मौद्रिक नीतियों और राजकोषीय नीतियों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में सहायता देना ही अपने कार्यक्षेत्र में रखा। उद्योगों के लिये पूंजी या तो सरकार स्वयं देती थी या वित्तीय-संस्थानों से उपलब्ध करती थी। जापान में सरकार द्वारा औद्योगिक बैंक (Industrial Bank of Japan) खोला गया। 1909 में खास-खास उद्योगों को संरक्षण दिया गया। 1866 से ही जहाज-रानी उद्योग को अनुदान देने के लिये Ship-building Encouragement Act पास किया। उसके अन्तर्गत 1902 से 1926 तक 20·7 करोड़ येन का अनुदान दिया गया, अनेक उद्योगों को कर-मुक्त किया गया जिसमें लोह-इस्पात प्रमुख था। 1911 में अनेक और उद्योगों को संरक्षण दिया गया।

(ग) **सरकार द्वारा उद्योगों का नियंत्रण तथा नियमन**—प्रथम विश्व-युद्ध में जापान को बिना प्रतिस्पर्द्धा के विस्तृत बाजार मिल गये और ऐसे समय में उद्योगों का तेजी से विकास हुआ। पर युद्ध समाप्ति के बाद युद्धोत्तर काल की मंदी का संकट उत्पन्न हुआ। सरकार ने निर्यात उद्योगों तथा अन्य उद्योगों में नियंत्रण एवं नियमन की प्रक्रिया प्रारम्भ की। 1926 में Export Industries Association

Law से निर्यात सम्बन्धी छोटे-छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। 1929 के बाद मंदी के प्रकोप से छुटकारा पाने के लिये 1930 में Industrial Bureau of Rationalisation, 1931 में Staple Industries Control Act से कारटेल समझौते लागू किये गये। 1934 में एक अधिनियम पारित कर सभी लोहा-इस्पात कम्पनियों को सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया। 1935 में पेट्रोलियम उद्योग नियम तथा 1936 में Shipping Route Control Law के द्वारा पेट्रोलियम तथा जहाजरानी उद्योग को सरकार ने पूर्णतः अपने नियंत्रण में ले लिया।

(घ) **युद्धोत्तर काल में पुनर्निर्माण तथा सरकारी निवेश**—1914 से 1945 तक सरकार का उद्योगों पर अत्यधिक नियंत्रण रहा। यहां तक कि कई सामरिक महत्व के उद्योगों को सरकार ने पूर्णतः अपने अधिकार में ले लिया। द्वितीय युद्ध में जापान की करारी हार होने के साथ भारी क्षति हुई। जहाजरानी क्षमता का 80%, उद्योगों का 65 से 70% और रसायन उद्योग की क्षमता का लगभग 75% नष्ट-प्रायः हो चुका था। सरकार ने युद्ध जर्जरित अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिये 1951-54 के बीच राष्ट्रीय आय का लगभग 7·7% भाग वार्षिक स्थायी निवेश रहे हैं। 1955-58 के बीच स्थायी निवेश राष्ट्रीय आय के 8% तक पहुँच गये हैं। सरकार के निवेशों के अतिरिक्त निजी निवेशों में और भी अधिक वृद्धि हुई है। उद्योगों में सरकारी निवेशों की मात्रा बढ़ाने के लिये तो 10 वर्षीय योजना प्रारम्भ की गई थी। 1966 में योजनाओं को कतिपय कारणों से परित्याग कर दिया गया।

(3) यातायात एवं संचार व्यवस्था के विकास में सरकार की भूमिका

मेजी पुनर्संस्थापन काल में सरकार ने यह अनुभव किया कि बिना यातायात और संचार व्यवस्था के विकास से औद्योगिक तथा कृषि विकास संभव नहीं है। अतः उन्होंने यातायात व संचार-व्यवस्था के विकास के प्रयत्न प्रारम्भ किये। प्रारम्भिक स्तर पर 1880 तक सरकार ने स्वयं 75 मील लम्बी रेलवे लाइनों का निर्माण किया। प्रमुख औद्योगिक नगरों को तार व्यवस्था से जोड़ दिया गया था। 1881 में सरकार ने नाहन रेलवे कम्पनी को ऋण तथा भूमि की सुविधा देकर उसकी व्यवस्था में भाग लेने का अधिकार लिया। 1906 में सरकार ने रेलों का राष्ट्रीयकरण कर 17 प्रमुख रेलवे लाइनों को अपने हाथ में ले लिया। 1908 में सब रेलवे लाइनों का नियंत्रण रेलवे परिषद् के अन्तर्गत रखा। जहां 1873–74 में सरकारी रेलवे लाइनों की लम्बाई केवल 29 किलोमीटर थी वह 1902–3 में 1710 किलोमीटर, 1912–13 में 8400 किलोमीटर, 1935–36 में 17030 किलोमीटर तथा 1963–64 में 21180 किलोमीटर थी। 1948 में राष्ट्रीयकृत

रेलों का नियंत्रण यातायात मंत्रालय को सौंप दिया। आजकल जापान की रेलों का एक बड़ा सार्वजनिक निगम है।

सामुद्रिक यातायात का विकास देश के औद्योगीकरण, निर्यात सम्वर्द्धन तथा सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। मेजी पुनर्संस्थापन काल में 1870 में ही Mercantile Marine Law के अन्तर्गत सरकार द्वारा व्यापारिक जहाज खरीदने एवं उनका उपयोग करने का अधिकार मिला। 1896 में नेवीगेशन आर्थिक सहायता अधिनियम से जहाज निर्माताओं को अनुदान दिया जाता था। 1880 में सरकार के 51 व्यापारिक जहाज थे। प्रथम महायुद्ध में जापान का विश्व में चौथा स्थान हो गया था। उसके बाद मदी काल में कठिनाई आई। सरकार ने 1936 से ही जहाजरानी उद्योग को अपने नियंत्रण में ले लिया था। आज जहाजरानी क्षमता की दृष्टि से जापान विश्व का सबसे बड़ा राष्ट्र हो गया है। वायुयान के विकास का श्रेय भी सरकार को ही दिया जाता है। संचार व्यवस्था की शुरूआत मेजी शासन में हुई थी। आज विश्व के सभी राष्ट्रों से संचार व्यवस्था है।

(4) श्रमिकों के शोषण पर रोक तथा श्रमिक-संघों के विकास में सरकार का योग-दान

जापान में श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिये सरकार ने 1905 में खान अधिनियम तथा 1911 में कारखाना अधिनियम पारित किया, पर वह नियोजकों के विरोधस्वरूप 1916 तक लागू नहीं किया जा सका। 1923 में एक अधिक विस्तृत एवं संशोधित अधिनियम पारित किया गया। इसी प्रकार 1916, 1926, 1928, 1930, 1933 में खान अधिनियम को संशोधित किया। 1936 में बेरोजगारी बीमा अधिनियम बनाया गया।

1948 में श्रमिक-संघ आन्दोलन के विकास के लिये तीन अधिनियम और पारित किये गये—

(1) श्रमिक-संघ अधिनियम (Trade Union Act)

(2) Labour Relations Adjustment Act.

(3) Labour Standards Act.

इसके बाद भी अनेक अधिनियम संशोधित एवं पारित किये गये हैं।

(5) विदेशी-व्यापार एवं बैंकिंग विकास में सरकार की भूमिका

सरकार जापान के विदेशी व्यापार में हमेशा निर्यात में वृद्धि के लिये प्रयत्नशील रही है। मेजी शासनकाल में लघु एवं मध्यम उद्योगों को इसी के लिये

प्रोत्साहन दिया । 1914 के बाद सरकार ने जहाजरानी क्षमता में विस्तार, व्यापारिक जहाजों का स्वामित्व आदि से विदेशी व्यापार को बढ़ाने का सतत् प्रयत्न किया है । मंदी काल में 1925 में सहकारी संस्थाओं या Export Guilds नियमों के अन्तर्गत प्रोत्साहन दिया । 1960–65 के बीच निर्यात में आश्चर्यजनक प्रगति का मूल कारण निर्यात को सरकारी प्रोत्साहन देना है । सरकार ने अनेक राष्ट्रों से व्यापारिक समझौते किये हैं । 1931 के बाद अवमूल्यन और फिर 1952 के बाद अवमूल्यन करना निर्यात व्यापार को बढ़ावा देना है ।

बैंकिंग व्यवस्था का विकास करने में भी सरकार ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । केन्द्रीय बैंक की स्थापना करना और उसके अलावा कृषि, उद्योगों के विकास के लिये विशेष बैंकों की स्थापना में सरकार का योगदान उल्लेखनीय रहा है । जापान में विनियोग की मात्रा में वृद्धि होने में वहां के बैंकों का महत्वपूर्ण हाथ है । सरकार द्वारा Industrial Bank of Japan, Counterpart Fund Account, Japan Development Bank आदि की स्थापना की गई है । इन बैंकों ने जापान के पुनः निर्माण में बहुत योग दिया है । सबसे महत्वपूर्ण स्थान Bank of Japan को मिलता है ।

आन्तरिक व्यापार का नियंत्रण और नियमन इस प्रकार किया जाता है कि जिससे स्थायित्व के साथ विकास (Growth with Stability) संभव है । व्यापार में होने वाले उतार-चढ़ावों को नियमित करने के पूरे प्रयास किये जाते हैं । इस प्रकार आन्तरिक व्यापार, विदेशी व्यापार और बैंकिंग व्यवस्था के विकास में भी सरकार का योगदान रहा है जिनसे कृषि, उद्योग तथा यातायात आदि का विकास संभव हुआ है ।

(6) मानव शक्ति साधनों का विकास एवं सरकार

किसी भी देश की प्रगति का सही अवलोकन उस देश की मानव-शक्ति साधनों के विकास और उनके सदुपयोग से होता है । जापान के तोकुगावा शासन में शिक्षा की दशा खराब थी पर मेजी पुनर्संस्थापन के साथ शिक्षा का तेजी से विकास हुआ । सामान्य, तकनीकी, औद्योगिक, अनुसन्धान, इन्जीनियरिंग आदि सभी प्रकार की शिक्षा का विकास हुआ है । आज जापान की 98 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है । जापान के अधिकांश किसान ग्रेज्यूयेट हैं । व्यापारी एवं उद्योगपतियों का तो कहना ही क्या । सरकार अपने कुल बजट का लगभग 11-12 प्रतिशत सामाजिक कल्याण कार्यों पर व्यय करती है ।

मेजी पुनर्संस्थापन काल में जापान की जनसंख्या में वृद्धि हुई । उसके बाद भी वृद्धि की प्रवृत्ति बनी रही । सरकार ने जनसंख्या पर नियंत्रण के लिये गर्भपात को

कानूनी मान्यता दे दी। शिक्षा के प्रसार, उच्च जीवन स्तर, तथा उत्तम स्वास्थ्य सेवाओं के कारण जापानियों की औसत आयु 70 वर्ष है जबकि भारतीयों की औसत आयु जो 1951 में 32 थी अब 50 वर्ष है।

इस प्रकार जापान के आर्थिक विकास में जापान सरकार का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सर्वाधिक योगदान द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद पुनर्निर्माण काल में रहा है। आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया अपनाने का कार्य स्वयं सरकार की बढ़ती हुई भूमिका का द्योतक है।

अध्याय **8**

युद्धोत्तर काल में जापान के आर्थिक पुनरुत्थान तथा विस्तार के उत्तरदायी तत्व

(Factors Causing Post-War II Expansion of Japan)

जापान के नेताओं और निर्माताओं की दूरदर्शिता, आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति तथा उच्च राष्ट्र-भक्ति से जापान द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व विश्व की एक महान शक्ति से किसी प्रकार कम नहीं था । एक कृषि-प्रधान देश होते हुए भी जापान विकसित औद्योगिक देश के रूप में सामने आया था । द्वितीय विश्व-युद्ध की ज्वालाओं ने जापान की समूची अर्थ-व्यवस्था को ध्वस्त एवं क्षत-विक्षत कर अस्त-व्यस्त कर दिया था । हिरोशिमा और नागासाकी की वर्बरतापूर्ण बमबारी ने रही-सही अर्थव्यवस्था को और उजाड़ने में योगदान दिया ।

अर्थ-व्यवस्था में द्वितीय विश्व-युद्ध से होने वाली क्षति की एक झलक इससे मिलती है कि 1946–47 में जापान की राष्ट्रीय आय अपने न्यूनतम स्तर पर पहुँच गई । 1946–47 में राष्ट्रीय आय 1938–39 की आय का 50% थी । युद्ध-पूर्व वर्षों में (1934–36) के मूल्यों के आधार पर जापान की राष्ट्रीय आय लगभग 16–17 विलियन येन थी, वह युद्धोत्तर काल में घट कर 8–9 विलियन येन ही रह गई । जापान की प्रति व्यक्ति आय 1938 में 238 येन थी, वह घट कर 1946 में लगभग 110 येन ही रह गई ।

द्वितीय विश्व-युद्ध में जापान की जहाजरानी क्षमता 80% नष्ट हो गई और केवल 20% ही वच रही थी । बड़े शहरों में निर्माण कार्य पूर्ण रूपेण ध्वस्त होकर खण्डहरों में परिवर्तित हो गया था । युद्ध से सूती वस्त्र-उद्योग की दो तिहाई, विद्युत

उत्पादन की 70% और अन्य उद्योगों की लगभग 60% से 70% क्षमता प्राय: नष्ट हो गई थी। 1946 में औद्योगिक उत्पादन 1934–35 की तुलना में केवल 27·6 प्रतिशत रह गया था। इस प्रकार, जापान की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था द्वितीय विश्व-युद्ध की भयावह ज्वालाओं से झुलस कर, कराह रही थी और कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि जापान अपनी ध्वस्त एवं जर्जरित अर्थ-व्यवस्था को निकट भविष्य में द्रुत गति से पुनरुत्थान की ओर अग्रसर कर सकेगा।

पर जापान ने युद्धोत्तर काल के केवल एक दशक में ही अपनी अर्थ-व्यवस्था को द्रुत गति से विकसित एवं पुनरुत्थान कर विश्व के सामने आश्चर्यचकित करने वाला अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। युद्धोत्तर काल में द्रुत गति से आर्थिक विकास से 1951 में ही जापान का औद्योगिक उत्पादन युद्ध-पूर्व स्तर पर पहुँच गया। 1955 और 1960 में तो औद्योगिक उत्पादन का सूचनाँक क्रमश: 153·6 तथा 349·6 तक पहुँच गया था।

1946–47 में जापान की राष्ट्रीय आय अपने न्यूनतम बिन्दु 8–9 विलियन येन तक घट गई थी, वह बढ़ कर 1955–56 में 21–22 विलियन येन हो गई और इसी प्रकार प्रति व्यक्ति आय भी 110 से बढ़कर 245 येन हो गई। इस प्रकार युद्ध समाप्ति के पहले दशक में ही जापान की राष्ट्रीय आय में विश्व में सर्वाधिक 10 से 11 प्रतिशत की अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। अगर विकास की यही दर अविकसित राष्ट्रों में हो जाय तो उनकी गरीबी का निराकरण कुछ ही समय में सम्भव हो सकता है।

स्थिर मूल्यों के आधार पर जापान की राष्ट्रीय आय में 1953–60 की अवधि में विकास की औसत वार्षिक दर 9·1%, 1960–64 की अवधि में 10·8 प्रतिशत वार्षिक तथा 1967 में 13·7 प्रतिशत की विकास दर आश्चर्यजनक ही है। जहां 1951–57 की अवधि में वास्तविक राष्ट्रीय उत्पत्ति में औसत वार्षिक वृद्धि की दर जापान में 7·76 प्रतिशत रही, वहां यह दर पश्चिमी जर्मनी में 7·5%, फ्रांस में 4·64%, कनाडा में 4·21%, सयुक्त राज्य अमेरिका में 2·93% तथा ब्रिटेन में 2·45% ही रही है।

इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादन में भी तेजी से वृद्धि हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विज्ञप्ति के अनुसार 1958–1967 की दस वर्षों की अवधि में विश्व में औद्योगिक उत्पादन में सर्वाधिक वृद्धि (245 प्रतिशत) जापान में हुई है। जापान का औद्योगिक उत्पादन सूचनांक (1934–36=100) 1939 में 146 था, वह 1946 में घट कर 40 रह गया था, पर 1956 में बढ़कर 230 पहुँच गया। प्रगति का तुलनात्मक विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट होता है:—

युद्धोत्तर-कालीन पुनरुत्थान एवं विस्तार

देश	1951–57 के बीच राष्ट्रीय आय में औसत वार्षिक विकास की दर (प्रतिशत)	1953–59 के बीच औद्योगिक उत्पादन में औसत वार्षिक वृद्धि की दर (प्रतिशत)	1958–1967 के बीच दस वर्षों में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि (U.N.O.)
जापान	7·76	10·9	245 प्रतिशत
प० जर्मनी	7·50	8·5	N.A. ,,
फ्रांस	4·64	7·9	N.A. ,,
सं० रा० अमेरिका	2·93	6·0	71 ,,
ब्रिटेन	2·45	2·7	38 ,,
रूस	N.A.	11·8	121 ,,

N.A.—Not available.

इसके अलावा जापान में उपभोग उद्योगों के तेजी से विकास से जापानियों के जीवन-स्तर में पर्याप्त सुधार हुआ है। जहां 1958 में केवल 15·9 प्रतिशत शहरी परिवारों तथा केवल 2·6 ग्रामीण परिवारों के पास टेलीविजन सेट था, 1961 में यह बढ़ कर क्रमश: 72% तथा 28·5% हो गया है।

इस प्रकार तीव्र गति से विकास से आज जापान अपनी क्षति ग्रस्त और जर्जरित अर्थ-व्यवस्था को इतना सुदृढ़ बना सका है और गैर साम्यवादी राष्ट्रों में संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिमी जर्मनी के बाद विश्व अर्थ-व्यवस्था में जापान का तृतीय स्थान है। सामुद्रिक जहाज निर्माण में जापान का विश्व में प्रथम स्थान है, लोहा-इस्पात उत्पादन में तृतीय स्थान है। मोटर उत्पादन में विश्व में इसका स्थान संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दूसरा तथा रासायनिक उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी के बाद जापान का स्थान है। इस तरह जापान द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद द्रुत गति से आर्थिक पुनरुत्थान और विकास से विश्व की अर्थ-व्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने में समर्थ हुआ है। जापान की आर्थिक विकास की दर समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के अनुरूप ही रही है जो व्यक्तिगत उपक्रम एव पूंजीवादी सरचना में कोरी कल्पना ही लगती है।

युद्धोत्तर काल में जापान में द्रुत गति से आर्थिक पुनरुत्थान एवं विस्तार के कारण

(Factors Causing Post-War II Expansion)

युद्धोत्तर काल में जापान की सर्वव्यापी आर्थिक सफलताएं विवाद से परे हैं। पुनरुत्थान और विकास के व्यापक स्वरूपों के बारे में सामान्य सहमति है परन्तु द्रुत गति से विस्तार के कारणों के विश्लेषण में मत विभिन्नता हो सकती है। जापान की युद्धोत्तर काल की उल्लेखनीय आर्थिक उपलब्धियों में अनेक तत्वों का सामूहिक सहयोग था। कुछ तत्व जापान की मेहनतकश जनता में मेजी पुनर्संस्थापन के समय से ही प्रबल होते जा रहे थे तथा कुछ तत्व जापान के युद्धोत्तर काल में अनुकूल परिस्थितियों से प्रेरित थे। इस तरह जापान के द्रुत गति से आर्थिक पुनरुत्थान तथा विस्तार के कारणों को मुख्य दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) युद्धोत्तर कालीन अनुकूल परिस्थितियां (Post-War favourable conditions), तथा

(आ) दीर्घकालीन आर्थिक तत्व (Long-term Economic Factors)।

(अ) युद्धोत्तर-कालीन अनुकूल परिस्थितियां

जापान की आश्चर्यजनक गौरवपूर्ण सफलता का गुर जापान का आर्थिक विकास प्रक्रिया से पूर्ण रूपेण परिचित होना था। विकसित राष्ट्र दुर्भाग्य से अल्पकाल में आर्थिक संकट के शिकार हो सकते हैं पर वे शीघ्र ही अपनी सामान्य स्थिति को प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। जितनी क्षति और नुकसान जापान को युद्ध के कारण हुई अगर एशिया के किसी दूसरे राष्ट्र को होती तो वह राष्ट्र उठने की हिम्मत न कर पाता। पर जापानी जनता ने दृढ़ संकल्प, साहस और दत्तचित्त होकर समस्याओं का बहादुरी से मुकाबला किया। वे जानते थे कि जापान की प्रगति अन्ततोगत्वा औद्योगिक प्रगति पर ही निर्भर करती है। युद्ध के कारण कष्टों और बर्बरता की जो चुनौती जापानियों के सम्मुख थी, उसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। युद्धोत्तरकालीन अनुकुल परिस्थितियों ने उन्हें सहयोग प्रदान किया। ये अनुकूल परिस्थितियां मुख्य रूप से इस प्रकार थीं—

(1) **क्षतिग्रस्त अर्थ-व्यवस्था के पुनर्वास व पुनर्निर्माण में अमेरिका का अंशदान**—जापान को अपनी नष्ट प्रायः अर्थ-व्यवस्था के पुनर्वास व पुनर्निर्माण के लिये अमेरिका द्वारा बड़ी मात्रा में अंशदान दिया गया। इस रूप में अमेरिका, नागासाकी तथा हिरोशिमा में बर्बरतापूर्ण बमबारी के पाप का प्रायश्चित करना चाहता था। युद्धोत्तर काल में जापान को अगर अमेरिकियों द्वारा उदारता पूर्वक सहायता न दी जाती, तो जापान विनाश के गर्त में और नीचे चला जाता और पुनरुत्थान की नींव भी न पड़ी होती। इसी प्रकार 1952 के बाद की अवधि में भारी अधिप्राप्ति व्यय

से जापान को प्राप्त हुए जिससे वह ऐसे कठिन समय में अपने उद्योगों को फिर सुसज्जित कर सका जबकि उसका निर्यात बहुत कम था। युद्धोत्तर काल में जापान को अमेरिका द्वारा लगभग 6 बिलियन डालर की सहायता दी गई। इतनी सहायता युद्धोत्तर काल में किसी भी अन्य देश को नहीं दी गई।

(2) **सैनिक खर्च में भारी कमी**—युद्धोत्तर काल में अपनाये गये संविधान में जापान को आत्म-रक्षा से अधिक फौज रखने की अनुमति प्राप्त नहीं थी। परिणामस्वरूप सैनिक खर्च में भारी कमी हुई। जहां 1940 में सेना पर व्यय कुल सरकारी खर्च का 63·8% भाग था, वह 1960 में केवल 5·9 प्रतिशत भाग ही रह गया। इस बचत का उपयोग उद्योगों में विनियोग सम्भव हो सका। अब तो यह प्रतिरक्षा व्यय जापान की राष्ट्रीय आय का केवल 0·8% ही रह गया है।

(3) **जापान की तकनीकी एवं प्रोद्योगिक प्रगति**—जापान की युद्धोत्तर काल में द्रुत गति की प्रगति का सबसे महत्वपूर्ण कारण उसकी तकनीकी की पूर्णता है। इन्जीनियरिंग और तकनीकी की शिक्षा के महाविद्यालयों तथा केन्द्रों की संख्या जापान में विकसित राष्ट्रों से भी काफी अधिक है। प्रौद्योगिक क्षेत्र में प्रत्येक प्रगति के प्रति जापानियों में पूर्ण जागरुकता है। यद्यपि युद्धोत्तर काल के प्रारम्भिक वर्षों में तकनीकी क्षेत्र में प्रगति धीमी थी पर 1955 से 1959 में प्रगति सराहनीय रही। (The period from 1955–59 was an age of unprecedented Technological innovations.) औद्योगिक उत्पादन में नये उन्नत तरीकों से कम लागत पर अधिक उत्पादन हुआ जिससे विदेशों में प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति की वृद्धि से यन्त्र-निर्माण, लोहा-इस्पात, सूती वस्त्र, पैट्रो-रसायन तथा विद्युत-यन्त्रों की उत्पत्ति में आश्चर्यजनक प्रगति रही। इससे न केवल पुर्निर्माण को बल मिला पर विस्तार की गति में भी वृद्धि हुई। जायवत्सु के विघटन तथा एकाधिकार विरोधी नियमों से तकनीकी प्रगति और तेज हुई।

(4) **विकासशील राष्ट्रों में विकास की लालसा**—युद्धोत्तर काल में जापान की अर्थ-व्यवस्था के पुनरुत्थान तथा द्रुत गति से विकास का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि युद्धोत्तर काल में बहुत से नवोदित पिछड़े राष्ट्रों में आर्थिक विकास की उत्कंठा जागृत हुई और उन्होंने आर्थिक विकास के कार्य-क्रमों की प्रक्रिया को बढ़ाया। इससे उन देशों में निर्मित उत्पादक माल के आयात तथा तकनीशियनों व प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग बढ़ी और इसके बदले में वे औद्योगिक कच्चा माल निर्यात करने को तत्पर हुए। जापान में तकनीकी ज्ञान तथा विकासशील राष्ट्रों की मांग का माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध किया जाना सम्भव था। जापान ने इसका लाभ उठाया। जापान ने विकासशील राष्ट्रों को उनकी आवश्यक जहाज सेवाओं, विद्युत-शक्ति,

मशीनों, भारी रसायनों, उर्वरकों तथा इन्जीनियरिंग के सामान का निर्यात किया और बदले में अपने उद्योगों के लिए कच्चा लोहा, कपास, पिग आयरन आदि आयात किये, जिन्हें निर्मित कर ऊंचे मूल्यों पर बेचा जा सकता था। विकासशील राष्ट्रों की बढ़ती हुई आयात आवश्यकताओं से जापान को अपने उद्योगों की उत्पत्ति के विक्रय के लिये, विस्तृत बाजार मिल गये जिसमें अत्यधिक लाभ निहित था। युद्धोत्तर काल में विकासशील राष्ट्रों में विकास की प्रबल लालसाओं ने जापान के पुनरुत्थान और द्रुत गति से औद्योगिक विस्तार का मार्ग प्रशस्त किया।

(5) **कोरिया-युद्ध**—कभी-कभी विश्व की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं कुछ राष्ट्रों के सौभाग्य तथा समृद्धि का कारण बनती हैं। कोरिया युद्ध उनमें एक अनुपम उदाहरण है। कोरिया युद्ध से विश्व-शान्ति को खतरा उत्पन्न हो गया और विश्व-युद्ध के भय से बहुत से राष्ट्रों ने आवश्यक वस्तुओं के संग्रह की नीति अपनाई। जापान के उद्योगों में निर्मित वस्तुओं के निर्यात की अप्रत्याशित सम्भावनाएं बढ़ीं। जापानियों को अपने उद्योगों के पुनरुत्थान तथा विस्तार के लिये विस्तृत और लाभदायक विश्व-बाजार मिल गया। जापानियों ने समय का लाभ उठाया। इस तरह कोरिया-युद्ध जापान के लिये वरदान सिद्ध हुआ जिसमें उन्हें अपनी युद्ध जर्जरित अर्थ-व्यवस्था के पुनरुत्थान व विकास का अच्छा अवसर मिल गया।

(6) **विभिन्न सुधार कार्य-क्रम तथा मुद्रा स्फीति**—युद्धोत्तर काल में सैनिक शासन ने जनतान्त्रिक अर्थ-व्यवस्था के निर्माण के लिए जायबत्सु के विघटन, एकाधिकार विरोधी नियम, भू-स्वामी प्रथा के समापन तथा श्रमिकों की स्थिति में सुधार लाने के लिये कदम उठाये। भूमि सुधार कार्य-क्रम के अन्तर्गत 1949 तक लगभग 50 लाख एकड़ भूमि को अनुपस्थित जमींदारों से बहुत कम मुआवजे पर हस्तगत कर कृषकों में वितरित कर दी जिससे उनके शोषण का क्रम समाप्त हुआ और युद्ध काल के बाद में ऊंचे मूल्य स्तर से उन्हें अपनी उपज का अत्यधिक लाभ मिला। युद्धकालीन श्रम-सन्नियमों को समाप्त कर श्रमिकों के संगठनों को प्रोत्साहित किया गया जिससे औद्योगिक श्रमिकों को एक स्वतन्त्र अस्तित्व और गौरवपूर्ण स्थान मिला। युद्धोत्तर काल में कृषकों तथा श्रमिकों की आय में तीव्र गति से वृद्धि से उनका जीवन-स्तर ऊँचा उठा और औद्योगिक माल की आन्तरिक मांग में तेजी से वृद्धि हुई जो युद्धोत्तर काल की महत्वपूर्ण आवश्यकता थी।

मन्द गति से मुद्रा-स्फीति, परोक्ष रूप से आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करती है क्योंकि मुद्रा-स्फीति से मूल्यों में वृद्धि और मूल्यों में वृद्धि से निश्चित आय में उपभोग की मात्रा घट जाती है। इससे बलात बचतें (Forced Saving पूंजी निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि मुद्रा-स्फीति काल में उद्योगपतियों उत्पादकों तथा विनियोगकर्त्ताओं को अप्रत्याशित लाभ प्राप्त होता है और

उत्पादन तथा विनियोग तेजी से बढ़ते हैं, पर एक निश्चित सीमा के बाद अत्यधिक मुद्रा प्रसार अर्थ-व्यवस्था के लिए घातक भी सिद्ध हो सकता है। इसलिये जापान में स्थायित्व के साथ विकास (Growth with Stability) की नीति अपनाई गई जिससे कि मुद्रा-स्फीति आवश्यक नियन्त्रण विन्दु तक ही रहे। यही कारण था कि 1949–50 में सैनिक शासन द्वारा मुद्रा-स्फीति विरोधी नीति का अनुसरण किया, पर 1951 तक कोरिया युद्ध के कारण मुद्रा-स्फीति बनी रही। इस प्रकार ये सब तत्व पुनरुत्थान में सहयोगी सिद्ध हुए।

(7) **सस्ती एवं कुशल श्रम-शक्ति**—जापान में युद्धोत्तर काल में जनसंख्या में 25% की वृद्धि हुई तथा साथ ही कृषि में यन्त्रीकरण की प्रवृत्तियां प्रबल होने से उद्योगों के लिए कृषि क्षेत्र से पर्याप्त संख्या में मजदूर मिल गये। जापान मे 1868 के वाद से ही तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा में तीव्र प्रगति से कुशल श्रमिकों की पूर्ति भी पर्याप्त थी इससे कम मजदूरी पर आवश्यक श्रमिक उपलब्ध हो गये। इसका दोहरा लाभ मिला। एक ओर कृषि पर भार कम हुआ तथा दूसरी ओर उद्योगों में उत्पादन लागत कम होने से जापान के निर्यातों की प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति बढ़ गई और निर्यात खूब वढ़े। कृपकों की संख्या 1950 में 161 लाख थी, वह घट कर 1960 में 132 लाख रह गई। छठे दशक में अधिकांश देशों की अपेक्षा जापान कीमतो को कम वनाये रखने में अधिक सफल हुआ और उसकी आमदनी के अस्थाई स्रोत विशेष रूप से दीर्घकालीन स्रोतों में वदल गये। वैसे कम उत्पादन लागत में और भी कारण थे पर कुशल श्रम की सस्ती पूर्ति उनमें से एक थी।

(8) **सरकारी सहायता**—युद्धोत्तर काल में जापान के पुनरुत्थान और आर्थिक विस्तार में सरकार का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 1947 में ध्वस्त अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिये वित्तीय साधन उपलब्ध करने के लिए पुनर्निर्माण वित्त बैंक (Reconstruction Finance Bank) स्थापित किया जिसने 1947 और 1948 के केवल दो वर्षों में ही 132 विलियन येन का ऋण दिया। जापान को इसके लिये अमेरिका से भी अनुदान मिले। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं ने भी वित्तीय साधन उपलब्ध कराये। सरकार द्वारा उद्योगों की स्थापना तथा पूंजी विनियोग के लिए करों में छूट दी गई। उद्योगों में विभिन्न प्रकार के सुरक्षित कोषों की स्थापना की व्यवस्था की गई। इससे व्यावसायिक संस्थाओं के पूंजीगत साधनों में बहुत वृद्धि हुई। 1952–59 की अवधि में वृद्धि तिगुनी से अधिक थी। सरकार द्वारा पूंजीगत सौदों पर प्रतिवन्ध और उद्योगों की रक्षा की नीति उपयोगी रही है।

(9) **अमेरिका द्वारा जापान के निर्यातों को संरक्षण**—1952 के वाद अमेरिका ने जापान से आयातों को वरीयता दी है। मूल्य की दृष्टि से जापान–अमेरिका

के बीच होने वाला व्यापार संसार में दूसरे स्थान पर आता है। सन् 1968 में ही जापान ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को लगभग 400 करोड़ डालर कीमत का माल भेजा। विश्व में जापान ही एक ऐसा राष्ट्र है जिसकी विदेशी मुद्रा का सुरक्षित कोष बढ़ रहा है उसमें अमेरिका द्वारा भारी आयात एक महत्वपूर्ण कारण है।

(आ) दीर्घकालीन आर्थिक तत्व

जापान के युद्धोत्तर कालीन पुनरुत्थान और आर्थिक विकास में अनुकूल परिस्थितियों के अलावा दीर्घकालीन आर्थिक तत्व भी महत्वपूर्ण हैं जो वहां की अर्थ-व्यवस्था में अन्तर्निहित हैं। अनुकूल परिस्थितियां उत्थान एवं विस्तार को धक्का देकर आगे बढ़ाती हैं पर उत्थान और विस्तार के लिए प्रारम्भिक साहस का श्रेय तो अन्तर्निहित तत्वों को ही जाता है। युद्धोत्तर काल में जापान के द्रुत गति से आर्थिक पुनरुत्थान तथा विस्तार के दीर्घकालीन कारणों में मुख्य इस प्रकार हैं—

(1) **जापानियों की राष्ट्रीयता, कर्त्तव्यपरायणता एवं निष्ठा**—जापान ने पिछले दो दशकों में आर्थिक, मुख्यतया औद्योगिक क्षेत्र में जो अद्वितीय प्रगति की है उसके मूल कारण जापानी नेताओं की सूझ-बूझ, यहां के निवासियों की सच्ची राष्ट्रीयता तथा अथक् परिश्रम में निष्ठा आदि उल्लेखनीय हैं। जापानी लोग अपनी काम करने की असाधारण क्षमता, विभिन्न वर्गों की परम्परागत विशेषज्ञता, साहसिकता, मितव्ययता, अधिकारियों के प्रति निष्ठा और अनुशासन के लिए विश्व विख्यात हैं। कठिनाइयों में भी अनुशासित एवं मुस्कराते रहना जापानियों की परम्परागत विशेषता है।

जापान की अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण और विकास में अद्वितीय सफलता का श्रेय जापानी जनता की कट्टर राष्ट्रीयता, अथक् परिश्रम, कर्त्तव्यपरायणता तथा अधिकारियों के प्रति पूर्ण निष्ठा से अनुशासन निभाने के परम्परागत गुणों को जाता है जिसकी शुरुआत मेजी पुनर्संस्थापन काल में ही हो गई थी। इसमें एक महत्वपूर्ण कारण साक्षरता की व्यापकता भी है। जापान की 98% जनसंख्या शिक्षित है अतः उनमें विवेक और मितव्ययता है।

(2) **उच्च बचत एवं विनियोग दर**—अर्थ-व्यवस्था के विकास की गति पर आन्तरिक बचतों तथा विनियोगों का प्रभाव विवाद से परे है। जितना अधिक बचा कर विनियोग किया जायगा उतनी ही प्रगति की दर बढ़ेगी अगर विनियोग विवेकपूर्ण हुआ तो, अन्यथा स्थिति बिगड़ भी सकती है। जापान में बचत का अनुपात उनकी आय का 18·5 प्रतिशत है जो कि दूसरे राष्ट्रों की तुलना में बहुत अधिक है। इसी प्रकार विनियोगों की दर भी बहुत अधिक है। वार्षिक विनियोग राष्ट्रीय

आय का 25 प्रतिशत से भी अधिक है। इस तरह उच्च बचत एवं विनियोग दर आर्थिक पुनरुत्थान तथा विकास में सहायक सिद्ध हुई।

(3) **वित्तीय संरचना तथा विनियोग सम्बन्धी आचरण**—मेजी पुनर्संस्थापन काल से ही जापानियों में व्यावसायिक विनियोग करने की प्रबलता बहुत बढ़ी है। वे स्वयं अपने लाभों तथा उधार लेकर विनियोग करने में बहुत तत्परता बरतते हैं। दूसरी ओर मेजी शासन के बाद से देश में विकास के लिए जो वित्तीय ढांचा तैयार किया गया वह (1930 की मन्दी को छोड़ कर) सुदृढ़ होता गया। जापान के व्यावसायिक बैंक भी स्थायी साधनों और लाभदायक विनियोगों में अनिश्चित सीमा तक ऋण देने में नहीं हिचकिचाते। विनियोग की यह प्रवृत्ति विश्व के दूसरे देशों में नहीं पाई जाती। इस प्रकार की स्थिति में युद्धोत्तर काल में जापान में 1947 में पुनर्निर्माण वित्तीय बैंक (Reconstruction Finance Bank) की स्थापना तो उपयोगी सिद्ध हुई ही, उसके अलावा जापान विकास बैंक, *Canterpart Fund Account* आदि से बहुत सहायता मिली। जापान के केन्द्रीय बैंक की नीति भी इसमें सहायक सिद्ध हुई। बैंकों की तथा विनियोगकर्त्ताओं की विनियोग प्रवृत्ति विकास में उपयुक्त रही है।

(4) **आर्थिक व्यवस्था की दोहरी प्रवृत्ति**—जापान में उद्योगों में दोहरी प्रवृत्ति है। एक ओर बडे पैमाने के उद्योग हैं तो दूसरी ओर साथ-साथ मध्यम तथा लघु आकार के उद्योगों की भरमार है। इन दोनों प्रकार के उद्योगों में पूर्ण समन्वय है और दोनों एक दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। इस प्रकार का समन्वय दूसरे औद्योगिक राष्ट्रों में कम ही पाया जाता है। इसके साथ-साथ जापान की औद्योगिक संरचना में भी समय-समय पर परिवर्तन किया गया है तथा प्रौद्योगिक अनुसन्धानों का पूरा लाभ उठाया गया है। कृषि तथा उद्योगों में प्रगति के समन्वय के साथ-साथ आन्तरिक मांग और विदेशी व्यापार आवश्यकताओं में सन्तुलन बैठाया गया है।

इस उपर्युक्त विवरण से हम यह देखते हैं कि जापान में युद्धोत्तर काल के दो दशकों में जो तीव्र आर्थिक प्रगति हुई है उसने विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया है और उसके उत्तरदायी कारण युद्धोत्तर काल की अनुकूल परिस्थितियां तथा जापानी अर्थ-व्यवस्था में अन्तर्निहित विशेषताएं ही हैं। एक समय था जब जापान मुख्यतः उपभोग के हल्के सामान का उत्पादन करता था किन्तु आज वह मोटरें, ट्रैक्टर, लोहा-इस्पात, बिजली के भारी यन्त्र, रासायनिक पदार्थ, ट्रांजिस्टर, रेडियो, कैमरे आदि का ही उत्पादन नहीं करता बल्कि अब तो उसने अणु-शक्ति से चालित जहाज (समुद्री) भी बना लिया है। गैर-साम्यवादी राष्ट्रों में यह तीसरे नम्बर का विकसित राष्ट्र है

के बीच होने वाला व्यापार संसार में दूसरे स्थान पर आता है। सन् 1968 में ही जापान ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को लगभग 400 करोड़ डालर कीमत का माल भेजा। विश्व में जापान ही एक ऐसा राष्ट्र है जिसकी विदेशी मुद्रा का सुरक्षित कोष बढ़ रहा है उसमें अमेरिका द्वारा भारी आयात एक महत्वपूर्ण कारण है।

(आ) दीर्घकालीन आर्थिक तत्व

जापान के युद्धोत्तर कालीन पुनरुत्थान और आर्थिक विकास में अनुकूल परिस्थितियों के अलावा दीर्घकालीन आर्थिक तत्व भी महत्वपूर्ण हैं जो वहां की अर्थ-व्यवस्था में अन्तर्निहित हैं। अनुकूल परिस्थितियां उत्थान एवं विस्तार को धक्का देकर आगे बढ़ाती हैं पर उत्थान और विस्तार के लिए प्रारम्भिक साहस का श्रेय तो अन्तर्निहित तत्वों को ही जाता है। युद्धोत्तर काल में जापान के द्रुत गति से आर्थिक पुनरुत्थान तथा विस्तार के दीर्घकालीन कारणों में मुख्य इस प्रकार हैं—

(1) **जापानियों की राष्ट्रीयता, कर्त्तव्यपरायणता एवं निष्ठा**—जापान ने पिछले दो दशकों में आर्थिक, मुख्यतया औद्योगिक क्षेत्र में जो अद्वितीय प्रगति की है उसके मूल कारण जापानी नेताओं की सूझ-बूझ, यहां के निवासियों की सच्ची राष्ट्रीयता तथा अथक् परिश्रम में निष्ठा आदि उल्लेखनीय हैं। जापानी लोग अपनी काम करने की असाधारण क्षमता, विभिन्न वर्गों की परम्परागत विशेषज्ञता, साहसिकता, मितव्ययता, अधिकारियों के प्रति निष्ठा और अनुशासन के लिए विश्व विख्यात हैं। कठिनाइयों में भी अनुशासित एवं मुस्कराते रहना जापानियों की परम्परागत विशेषता है।

जापान की अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण और विकास में अद्वितीय सफलता का श्रेय जापानी जनता की कट्टर राष्ट्रीयता, अथक् परिश्रम, कर्त्तव्यपरायणता तथा अधिकारियों के प्रति पूर्ण निष्ठा से अनुशासन निभाने के परम्परागत गुणों को जाता है जिसकी शुरुआत मेजी पुनर्संस्थापन काल में ही हो गई थी। इसमें एक महत्वपूर्ण कारण साक्षरता की व्यापकता भी है। जापान की 98% जनसंख्या शिक्षित है अतः उनमें विवेक और मितव्ययता है।

(2) **उच्च बचत एवं विनियोग दर**—अर्थ-व्यवस्था के विकास की गति पर आन्तरिक बचतों तथा विनियोगों का प्रभाव विवाद से परे है। जितना अधिक बचा कर विनियोग किया जायगा उतनी ही प्रगति की दर बढ़ेगी अगर विनियोग विवेकपूर्ण हुआ तो, अन्यथा स्थिति बिगड़ भी सकती है। जापान में बचत का अनुपात उनकी आय का 18·5 प्रतिशत है जो कि दूसरे राष्ट्रों की तुलना में बहुत अधिक है। इसी प्रकार विनियोगों की दर भी बहुत अधिक है। वार्षिक विनियोग राष्ट्रीय

आय का 25 प्रतिशत से भी अधिक है। इस तरह उच्च बचत एवं विनियोग दर आर्थिक पुनरुत्थान तथा विकास में सहायक सिद्ध हुई।

(3) **वित्तीय संरचना तथा विनियोग सम्बन्धी आचरण**—मेजी पुनर्संस्थापन काल से ही जापानियों में व्यावसायिक विनियोग करने की प्रबलता बहुत बढ़ी है। वे स्वयं अपने लाभों तथा उधार लेकर विनियोग करने में बहुत तत्परता बरतते हैं। दूसरी ओर मेजी शासन के बाद से देश में विकास के लिए जो वित्तीय ढांचा तैयार किया गया वह (1930 की मन्दी को छोड़ कर) सुदृढ़ होता गया। जापान के व्यावसायिक बैंक भी स्थायी साधनों और लाभदायक विनियोगों में अनिश्चित सीमा तक ऋण देने में नहीं हिचकिचाते। विनियोग की यह प्रवृत्ति विश्व के दूसरे देशों में नहीं पाई जाती। इस प्रकार की स्थिति में युद्धोत्तर काल में जापान में 1947 में पुर्ननिर्माण वित्तीय बैंक (Reconstruction Finance Bank) की स्थापना तो उपयोगी सिद्ध हुई ही, उसके अलावा जापान विकास बैंक, Canterpart Fund Account आदि से बहुत सहायता मिली। जापान के केन्द्रीय बैंक की नीति भी इसमें सहायक सिद्ध हुई। बैंकों की तथा विनियोगकर्त्ताओं की विनियोग प्रवृत्ति विकास में उपयुक्त रही है।

(4) **आर्थिक व्यवस्था की दोहरी प्रवृत्ति**—जापान में उद्योगों में दोहरी प्रवृत्ति है। एक ओर बड़े पैमाने के उद्योग हैं तो दूसरी ओर साथ-साथ मध्यम तथा लघु आकार के उद्योगों की भरमार है। इन दोनों प्रकार के उद्योगों में पूर्ण समन्वय है और दोनों एक दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। इस प्रकार का समन्वय दूसरे औद्योगिक राष्ट्रों में कम ही पाया जाता है। इसके साथ-साथ जापान की औद्योगिक संरचना में भी समय-समय पर परिवर्तन किया गया है तथा प्रौद्योगिक अनुसन्धानों का पूरा लाभ उठाया गया है। कृषि तथा उद्योगों में प्रगति के समन्वय के साथ-साथ आन्तरिक मांग और विदेशी व्यापार आवश्यकताओं में सन्तुलन बैठाया गया है।

इस उपर्युक्त विवरण से हम यह देखते हैं कि जापान में युद्धोत्तर काल के दो दशकों में जो तीव्र आर्थिक प्रगति हुई है उसने विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया है और उसके उत्तरदायी कारण युद्धोत्तर काल की अनुकूल परिस्थितियां तथा जापानी अर्थ-व्यवस्था में अन्तर्निहित विशेषताएं ही हैं। एक समय था जब जापान मुख्यत: उपभोग के हल्के सामान का उत्पादन करता था किन्तु आज वह मोटरें, ट्रेक्टर, लोहा-इस्पात, बिजली के भारी यन्त्र, रासायनिक पदार्थ, ट्रांजिस्टर, रेडियो, कैमरे आदि का ही उत्पादन नहीं करता बल्कि अब तो उसने अणु-शक्ति से चालित जहाज (समुद्री) भी बना लिया है। गैर-साम्यवादी राष्ट्रों में यह तीसरे नम्बर का विकसित राष्ट्र है

और अगर विकास की यही गति रही तो हो सकता है कि हरमन काहन की वह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो जाय जिसमें "आगामी शताब्दी (21वीं शताब्दी) में जापान विश्व पर छाया रहेगा" की कल्पना की गई है। 1961 से जापान में एक दस वर्षीय योजना प्रारम्भ की गई है जिसमें 1970 के अन्त तक जापान की राष्ट्रीय आय दुगुनी होकर 7200 करोड़ डालर (260 खरब येन) करने का लक्ष्य था पर इस योजना के कार्यान्वियन के समय से आर्थिक संकटों के कारण 1966 में पंचवर्षीय योजना का तो परित्याग कर दिया गया, पर उसकी जगह एक नया आर्थिक कार्य-क्रम कार्यान्वित किया जा रहा है। जापान की आर्थिक नीति का सार उसका स्थायित्व के साथ विकास (Growth with Stability) में निहित है।

भाग-4

रूस के आर्थिक विकास के युग-प्रवर्तक-चिन्ह

अध्याय **1**

सोवियत रूस में नवीन आर्थिक नीति (1921-28)

(New Economic Policy in U.S.S.R. 1921-28)

यौद्धिक साम्यवाद की नीति के अन्तर्गत सरकार के प्रयत्न उत्पादन तथा वितरण पर राज्य का एकाधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। इससे अनेक दोषों का प्रादुर्भाव हुआ और समूची अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न सी हो गई। उत्पादन में गिरावट, किसानों और मजदूरों में द्वेपता, खाद्यान्न का अभाव और अकुशलता की स्थिति ने भयावह स्थिति उत्पन्न करदी। अतएव मार्च 1921 में उत्पादन में वृद्धि, किसानों और मजदूरों में मैत्री सम्बन्ध, कृषि तथा उद्योग में आर्थिक समुत्थान तथा समाजवाद के स्वप्न को साकार करने के लिये मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) पर आधारित जो नीति अपनाई गई उसे इतिहासकार नवीन आर्थिक नीति (N.E.P.) के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह नीति शान्तिकालीन परिस्थितियों में देश में आर्थिक पुनर्संगठन तथा पुनर्व्यवस्था का प्रयास था जिसमें पूंजीवाद तथा समाजवाद के समन्वय द्वारा रूस में समाजवाद का मार्ग प्रशस्त करने का उद्देश्य निहित था।

नवीन आर्थिक नीति अपनाने के कारण

यौद्धिक साम्यवाद की नीति के परित्याग तथा नवीन आर्थिक नीति द्वारा उसका प्रतिस्थापन निम्न कारणों से आवश्यक हो गया था—

(1) **व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मांग**—यौद्धिक साम्यवाद में समूची अर्थ-व्यवस्था पर सरकारी एकाधिपत्य तथा कठोर नियंत्रण से व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन हुआ जबकि किसानों, मजदूरों तथा देश के विभिन्न वर्गों में शान्तिपूर्ण स्थिति में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मांग प्रबल होती जा रही थी। भूमि तथा पशुधन पर स्वतंत्र अधिकार तथा मजदूरों में स्वतंत्रता की माँग पूरी करने के लिये नवीन आर्थिक नीति का अनुसरण आवश्यक हो गया था।

(2) **व्याप्त असंतोष का निवारण**—किसानों से अनिवार्य वसूली, मजदूरों के कार्यों पर कठोर नियंत्रण तथा उपभोग पर प्रतिबन्ध की नीति से समाज के विभिन्न

वर्गों में असन्तोष की प्रक्रिया उत्पन्न हो गई। अभाव के कारण दुर्भिक्ष और अर्थतंत्र में उत्पादन की कमी से अस्त-व्यस्तता ने किसानों और मजदूरों में द्वेष भावना जागृत कर दी। इस तरह सर्वत्र व्याप्त असंतोष का निवारण करने के लिये नई नीति अपनाना आवश्यक हो गया।

(3) **स्वतंत्र मूल्य-तंत्र तथा व्यापार व्यवस्था**—यौद्धिक साम्यवाद में समूची अर्थ-व्यवस्था में राज्य का एकाधिपत्य स्थापित कर एक राज्य संगठित वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रारम्भ किया गया जिसमें मुद्रा के उपयोग को शोषण की जड़ मान कर उसका परित्याग करने की चेष्टा की गई। पर नई परिस्थितियों में स्वतंत्रता की मांग को पूरा करने के लिये मुद्रा-प्रयोग तथा बाजार और व्यापार-व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के लिये नई नीति की आवश्यकता हुई।

(4) **परिवर्तित आर्थिक आधार**—यौद्धिक साम्यवाद के बाद किसानों तथा मजदूरों में परस्पर विरोधी मनोवृत्ति का समापन कर लेनिन इन दोनों में आपसी मैत्री सम्बन्ध को ही साम्यवाद का आधार मानने लगा। इन दोनों वर्गों के सहयोग में ही पूंजीवादी तत्वों पर विजय पाकर सर्वहारा वर्ग की सत्ता का स्वप्न साकार हो सकता था। अतएव इस समन्वय की प्रक्रिया को कार्यान्वित करने के लिये नवीन नीति को अपनाया गया।

(5) **राजनैतिक सुदृढ़ता तथा उत्पादन में वृद्धि**—यौद्धिक साम्यवाद में अकाल तथा अभाव के दुष्चक्र में समूची उत्पादन व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। व्याप्त असंतोष तथा अव्यवस्था में सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र की जड़ मजबूत करने के लिये साम्यवादी राज्य सत्ता के प्रति पुनः विश्वास तथा सौहार्द्र जागृत करने के लिये उत्पादन व्यवस्था का पुनर्संगठन तथा पुनर्व्यवस्था, कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में बहुमुखी उत्पादन वृद्धि से ही सम्भव था। अतः उत्पादन वृद्धि के लिये तथा राजनैतिक विश्वास जमाने के लिये नवीन नीति का अनुसरण अनिवार्य हो गया।

इस तरह रूस में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक कारणों से नवीन आर्थिक नीति अपनाई गई। श्री लेनिन को इन प्रतिक्रियाओं का आभास पहले ही हो चुका था और इसीलिए 24 फरवरी 1921 को ही साम्यवादी पार्टी की केन्द्रीय समिति के समक्ष उसने नये आर्थिक कार्य-क्रमों का प्रस्ताव रखा था जो बाद में पार्टी कांग्रेस के दसवें अधिवेशन में कतिपय संशोधनों से स्वीकार हो, नवीन आर्थिक नीति के रूप में परिणत हुए।

नवीन आर्थिक नीति के उद्देश्य
(Objectives of N.E.P.)

उपर्युक्त सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक प्रतिक्रिया के सन्दर्भ में नवीन आर्थिक नीति का उद्देश्य स्वाभाविक रूप से उत्पादन वृद्धि, मजदूरों तथा किसानों में

मैत्री सम्बन्ध, राजनैतिक संकट से मुक्ति तथा पूंजीवादी शक्तियों का राज्य के अधिकतम कल्याण के लिये प्रयोग करना था। 8 मार्च से 16 मार्च 1921 के पार्टी काँग्रेस के 10वें अधिवेशन में लेनिन ने नवीन आर्थिक नीति के उद्देश्य बतलाते हुए तीन मुख्य बातों पर बल दिया—

(1) **उत्पादन में वृद्धि**—गृह-युद्ध के समय उत्पादन व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाने से देश में अभाव का वातावरण व्याप्त था। अतः उत्पादन में वृद्धि के लिये हर संभव प्रयत्न इस नीति का मूल उद्देश्य था। लेनिन के शब्दों में—"We are living in such conditions of impoverishment and ruin of overstrain and exhaustion of principal productive forces of the peasants and workers that for a time, everything must be subordinated to this fundamental consideration at all costs to increase the supply of goods". क्रान्ति के बाद कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन में जो भीषण कमी हुई, उससे सम्पूर्ण आर्थिक तथा राजनैतिक ढांचे के अस्त-व्यस्त हो जाने की आशंका उत्पन्न हो गई थी। उद्योगों में कच्चे माल का अभाव तथा मजदूरों और किसानों को उपभोग सामग्री के अभाव से दयनीय स्थिति उत्पन्न हो गई थी। अतः स्थिति का मुकाबला करने का एक मात्र रास्ता उत्पादन वृद्धि ही था। जिससे आन्तरिक मांग की पूर्ति करने के साथ-साथ निर्यात की आवश्यकताओं को पूरा कर, आर्थिक सुदृढ़ता स्थापित की जा सके।

(2) **किसानों और मजदूरों में आपसी मैत्री सम्बन्ध सुदृढ़ करना**—युद्धकालीन साम्यवाद की नीति के अन्तर्गत किसानों से अनिवार्य वसूली तथा सैनिकों और मजदूरों के "जोर और दबाव" से किसानों में भीषण प्रतिक्रिया हुई, जिससे उनकी साम्यवाद में आस्था समाप्त होने लगी तथा मजदूरों और सैनिकों से द्वेष-भाव जागृत हुआ। लेनिन सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तत्र में श्रमिकों तथा किसानों को इसका अविभाज्य अंग मानता था। अतः दोनों वर्गों में अटल आपसी मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना, साम्यवाद की सफलता की आधार-शिला थी। लेनिन के शब्दों में—"खेतिहर वर्ग की सहमति से ही रूस में समाजवादी क्रान्ति को बचाया जा सकता है" और इसीलिये नवीन आर्थिक नीति का सिद्धान्त लेनिन के अनुसार—"सर्वहारा वर्ग तथा कृषक वर्ग में साहचर्य आवश्यक है जिससे सर्वहारा वर्ग अपना नेतृत्व सुदृढ़ कर राज्य-शक्ति को बनाये रख सके।

(3) **राजनैतिक संकट से मुक्ति**—गृह-युद्ध तथा यौद्धिक साम्यवाद की नीति के अनुसरण से किसान और मजदूर तथा शहर और गांव के बीच की खाई (Gulf) अधिक चौड़ी होती जा रही थी जिससे हँसिया और हथोड़ा (Hammer and

Sickle) के आपसी द्वेप से राजनैतिक संकट की सम्भावनाएं बढ़ गई थीं। अतः ऐसी विषम परिस्थिति में दोनों में परस्पर समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से नवीन नीति परमावश्यक थी।

(4) राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख केन्द्र विन्दुओं पर राज्य नियंत्रण— उत्पादन में वृद्धि तथा राजनैतिक संकट से वचाव के लिये नवीन आर्थिक नीति का उद्देश्य अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख केन्द्र विन्दुओं पर सरकार का प्रभावी नियंत्रण लागू करना था। अतएव प्रमुख आधार-भूत तथा मूल-भूत उद्योगों, साख, मुद्रा, यातायात तथा विदेशी व्यापार पर सरकार का प्रभावी नियंत्रण रखा गया जिससे क्रान्ति को सफल वनाया जा सका।

(5) पूंजीवादी शक्तियों का राज्य के अधिकतम कल्याण के लिये उपयोग— देश में गृह-युद्ध के पश्चात् उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कुछ सीमा तक साम्य-वादी सिद्धान्तों का परित्याग कर निजी व्यवसाय तथा व्यक्तिगत साहस का राज्य के अधिकतम कल्याण का अवसर दिया। अनेक छोटे उद्योगों का अराष्ट्रीयकरण कर व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान की गई। इसके अतिरिक्त विदेशी पूंजीवादी राष्ट्रों से संधियाँ कर विदेशी निजी पूंजीपतियों तथा उद्योगपतियों को रूस के औद्योगिक क्षेत्र में सहायता प्रदान करने का आमंत्रण था। अतः इस नीति का उद्देश्य समाजवाद तथा पूंजीवादी शक्तियों का राष्ट्र-हित में उपयोग कर, साम्यवादी क्रान्ति का स्वप्न साकार करना सम्भव हो सके।

इस प्रकार नवीन आर्थिक नीति का उद्देश्य कुछ समय के लिये, कुछ सीमा तक साम्यवादी सिद्धान्तों का परित्याग कर पूंजीवादी शक्तियों के सहयोग से उत्पादन वृद्धि, विदेशी व्यापार सन्तुलन में सुधार, हॉसिया तथा हथोड़ा में अटल मैत्री सम्बन्ध तथा राजनैतिक संकट से वचाव कर पूंजीवादी तत्वों पर विजय से, समाजवाद का मार्ग प्रशस्त करना था।

नवीन आर्थिक नीति की प्रकृति
(Nature of New Economic Policy)

नवीन आर्थिक नीति (NEP) की प्रकृति के सम्वन्ध में विद्वानों में विभिन्न मत रहे हैं। कुछ लोग इस नीति में "समाजवाद" लाने में असफलता और पूंजीवाद का पुन. संस्थापन देखते हैं तो कई इसे पूर्ण रूप से समाजवाद लाने के एक नये प्रयत्न से पूर्व "क्षणिक विश्राम" के रूप में देखते हैं। इसमें एक ओर समाजवाद का प्रमुख तत्व अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न केन्द्र विन्दुओं का आर्थिक नियोजन का समावेश था तो दूसरी ओर विभिन्न पूंजीवादी शक्तियों को भी अर्थतंत्र में स्वीकार किया गया। इस तरह अर्थ-व्यवस्था के नियंत्रक अंगों (Commanding heights) पर राज्य का

नियंत्रण रख कर, पूंवादीजी तत्वों को अर्थतंत्र में विकास के लिये आमंत्रित किया। अतः नवीन आर्थिक नीति (NEP) मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (Mixed Economy) पर आधारित थी। लेनिन के शब्दों में—"नवीन आर्थिक नीति द्वारा पूंजीवाद को कुछ सीमा तक विकसित होने की छूट देने का अभिप्राय "दो कदम आगे बढ़ने के लिये एक कदम पीछे हटने से था।"

यह नीति पूंजीवाद और समाजवाद के आपसी संघर्ष पर आश्रित थी, जिससे अन्ततः पूंजीवादी तत्वों पर विजय प्राप्त कर समाज में वर्ग-संघर्ष की समाप्ति से समाजवाद की जड़ जमाना था।

कुछ लोगों द्वारा यह नीति पूर्ण साम्यवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रियावादी नीति मानी जाती है। पर वास्तव में यह नीति न तो साम्यवाद की पराजय थी और न उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया ही, बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों में एक क्षणिक विश्राम की नीति थी जिसमें पूंजीवादी तत्वों का सहारा लिये बिना रूस को भावी विनाश तथा आर्थिक जीवन की अव्यवस्था से बचाना तथा औद्योगिक और कृषि उत्पादन में युद्ध पूर्व की स्थिति लाना असंभव था।

संक्षेप में नवीन आर्थिक नीति के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह एक पूर्व निश्चित तथा विधिवत् आर्थिक नीति न होकर देश की परिवर्तित परिस्थितियों में परिवर्तनशील नीति थी जिसमें समाजवाद का स्वप्न संजोया गया था।

नवीन आर्थिक नीति से रूसी अर्थ-व्यवस्था में पुनः निजी उद्योग, निजी सम्पत्ति, निजी संस्थानों तथा निजी व्यापार का बोलबाला हो गया। राष्ट्रीयकरण का क्रम रुक गया और देश में फिर एक बार अराष्ट्रीयकरण की नीति, बैंकिंग तथा साख क्षेत्र के नियंत्रण में ढ़ील दी गई। पूंजीवादी शक्तियों को निरंकुश न रख कर उनके सयोजन (Co-ordination) का प्रयत्न किया गया। नियंत्रण तथा आंतक के साम्राज्य के स्थान पर रूसी जनता को राहतपूर्ण स्वतंत्र वातावरण में साँस लेने का अवसर मिला। किसानों को भी अनिवार्य वसूली से छुटकारा मिला। उन्हें अब स्वतंत्र बाजार में वस्तुओं के बेचने का मौका मिला।

नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत कृषि
(Agriculture under the N.E.P.)

नवीन आर्थिक नीति का उद्देश्य कृषि क्षेत्र में व्याप्त असन्तोष समाप्त कर कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि करना था जिससे अकाल व अभाव के दुश्चक्र से मुक्ति मिल सके। अतः किसानों में असन्तोष को समाप्त करने तथा हांसिया और हथोड़ा (Hammer & Sickle) के बीच आपसी अटल सम्बन्धों के लिये निम्न कार्यक्रम अपनाये गये—

(1) **अनिवार्य वसूली के स्थान पर कृषि कर व्यवस्था**—यौद्धिक साम्यवाद के समय समस्त उत्पादन आधिक्य की नीति के स्थान पर नई नीति के अन्तर्गत निश्चित प्रतिशत पर आधारित वर्धमान कृषि कर (Agriculture Tax) लगाया गया। इसके अतिरिक्त अन्न को किसानों को स्वतंत्र बाजार में बेचने की सुविधा मिल गई। मध्यम तथा गरीब और शहरी क्षेत्र के मजदूरों के फार्मों पर अपेक्षाकृत कम कर लगाया जाता था तथा कृषि विस्तार और भूमि की उत्पादनशीलता में वृद्धि करने पर किसानों को कर में छूट (Rebate) की व्यवस्था थी। इस नई कृषि कर नीति से सरकार को अनिवार्य वसूली का लगभग आधा अन्न प्राप्त होता था। वह सैनिकों तथा औद्योगिक मजदूरों की आवश्यकता पूर्ति के लिये पर्याप्त था। पहले यह अन्न के रूप में तथा बाद में मुद्रा के रूप में वसूल किया जाने लगा। इससे कृपकों और मजदूरों में वैमनस्य समाप्त हो, मैत्री का नया आधार बना तथा उत्पादन में वृद्धि को प्रोत्साहन मिला।

(2) **उत्पादन वृद्धि के उपाय**—कृषि उत्पादन वृद्धि के लिये, भूमि के अन्तिम अधिकार समाज के पास सुरक्षित रखते हुए कृषक वर्ग की व्यक्तिगत प्रेरणा को प्रतिबन्धों से मुक्त कर, भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार को मान्यता प्रदान की गई। कृषकों को सामुदायिक अथवा व्यक्तिगत रूप से कृषि करने की स्वतंत्रता, सरकार द्वारा ऋण की सुविधा, सरकारी कृषि के लिए निर्धन किसानों को हर संभव सहायता दी गई जिससे उत्पादन में वृद्धि संभव हो सके। धनी किसानों (Kulaks) पर ऊंची दर से कृषि कर लगाकर, उनकी आर्थिक समृद्धि को सीमित कर दिया।

(3) **कृषि उत्पत्ति के स्वतंत्र व्यापार की व्यवस्था**—कृषि कर देने के पश्चात् अतिरिक्त उपज को बाजार में बेचने की स्वतंत्रता प्राप्त हुई, इससे विकेन्द्रित बाजार की पुनःस्थापना से कृषि और उद्योग में पुनः व्यापारिक सम्पर्क स्थापित हो गया। पूर्ति विभाग "NARCOMPROD" का बाजार पर एकाधिपत्य समाप्त होने से बाजार कृषक और श्रमिक के पारस्परिक सम्पर्क का माध्यम बन गया। यहां तक कि कालान्तर में स्थायी बाजार के प्रतिबन्धों के हटने से विस्तृत बाजार में अधिक लाभ का मार्ग खुला।

(4) **कृषि क्षेत्र में सहकारिता का विकास**—नवीन आर्थिक नीति में स्वतंत्र व्यापार नीति से नारकोमपरोड़ नामक केन्द्रीय संस्था के एकाधिपत्य का समापन हो गया। अतः सहकारी समितियों को पुनर्जीवित तथा विकसित करने का प्रयास इस नीति में किया गया। परिणामस्वरूप कृषकों को ऐच्छिक आधार पर सहकारी समितियां संगठित करने, संघीय सहकारी संस्था बनाने तथा अपने अंश अन्य समितियों को बेचकर, पूंजी एकत्रित करने की स्वतंत्रता थी।

(5) **क्रय विक्रय में मुद्रा का प्रयोग तथा वेतन भोगी मजदूर रखने की स्वतंत्रता**—क्रय विक्रय में मुद्रा का प्रयोग होने लगा जिससे स्वतंत्र मूल्यतंत्र का कृषकों को लाभ हुआ। किसानों को मशीनें किराये पर लेने तथा मध्यम किसानों को बढ़ावा देने के लिये खेतों को लगान पर लेने तथा सीमित मात्रा में वेतन भोगी मजदूर (Hired Labour) रखने की स्वतंत्रता दी गई। ये सब प्रयत्न पूंजीवादी तत्वों की सीमित छूट थी।

नवीन आर्थिक नीति से कृषि-क्षेत्र में उपलब्धियाँ
(Achievements)

नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत लागू किये गये सुधारों से कृषि क्षेत्र में पुनः कृषक वर्ग का आर्थिक कल्याण उसके उत्पादन से सम्बन्धित हो गया। उत्पादन वृद्धि कृषकों को स्वतंत्रता तथा कृषकों और श्रमिकों में पुनः सम्पर्क बढ़ जाने से उनका सरकार में विश्वास पुनः जाग्रत हुआ और राजनैतिक संकट टल गया—

(i) **कृषि-क्षेत्र में वृद्धि**—नवीन नीति के प्रोत्साहन से कृषि में विस्तार हुआ। सन् 1922-24 में कृषि-क्षेत्र 78·3 मिलियन हेक्टर था, वह 1926–27 में बढ़कर 93·7 मिलियन हेक्टर हो गया जो कि 1913 में कृषि-क्षेत्र का लगभग 92·7 प्रतिशत था।

(ii) **उत्पादन में वृद्धि**—कृषि-क्षेत्र में वृद्धि तथा स्वतंत्र बाजार में बेचने की सुविधा से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। खाद्यान्न का उत्पादन 1921–22 के 423 लाख टन से बढकर 1926–27 में 783 लाख टन हो गया। औद्योगिक कच्चे माल जैसे तम्बाकू, चुकन्दर, कपास में भी वृद्धि हुई। युद्ध पूर्व के मूल्यों पर कृषि उत्पादन का मूल्य जो 1921–22 में 626 करोड़ रूबल था, वह 1925–26 में बढ़कर 1130 करोड़ रूबल हो गया। कृषि उत्पादन सूचनांक (1913=100) क्रमशः 50·6 से बढ़कर 91·3 हो गया।

(iii) **कृषि उपज के बिक्री योग्य आधिक्य में सुधार**—खाद्यान्नों तथा कृषि उपज के मुक्त व्यापार से पुनः मौद्रिक व्यापार की वृद्धि हुई। कृषि और उद्योग में बाजार सम्पर्क होने से ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात बिक्री योग्य आधिक्य जो 1918–21 में लगभग शून्य था, 1923–24 में बढ़कर 120·9 करोड़ रूबल तथा 1925–26 में 193 करोड़ रूबल हो गया।

(iv) **सहकारी समितियों का विकास तथा सरकारी केन्द्रीकरण का ह्रास**—सहकारी समितियों की नारकोमपरोड की दासता से मुक्ति तथा स्वतंत्र बाजार से वेसेन्खा तथा ग्लावकी (Glavki) के औद्योगिक नियंत्रण को करारी चोट पहुँचने से उद्योगों को प्रायः 1921 तक व्यापारिक स्वतंत्रता (Commercial Autonomy)

प्राप्त हो गई क्योंकि अब वे अपनी आवश्यकता का कच्चा माल तथा खाद्यान्न स्वयं बाजार से खरीद सकते थे ।

नवीन कृषि नीति की असफलताएं
(Failures)

नवीन आर्थिक नीति का यद्यपि ग्रामीण समृद्धि पर अच्छा प्रभाव पड़ा पर आर्थिक समृद्धि का लाभ मुख्यतः मध्यम तथा बड़े किसानों को ही मिला । व्यक्ति कृषि पर प्रतिबन्ध हट जाने से छोटे खेतों की संख्या में वृद्धि हुई । जहां 1918 में छोटे खेतों की संख्या 75 लाख थी वह बढ़कर 1921 में 240 लाख हो गई । खेतों के छोटे आकार से यंत्रीकरण के अभाव में कृषि उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि न हो सकी ।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि उत्पादन में वृद्धि हुई तथा बिक्री योग्य उपज में वृद्धि हुई । पर अगर हम बिक्री योग्य उपज को कुल उत्पादन की दृष्टि से देखें तो स्थिति चिन्ताजनक बन जाती है । जहां 1913 में कुल फसल का 20·3 बाजार में बिकने को आता था 1924–25 में घटकर 14·3% तथा 1927·28 में सिर्फ 12·1% रह गया । इसका मुख्य कारण था कि सामुदायिक तथा राजकीय फार्म तो जो कुल उत्पादन का 1·7% उत्पादन करते थे अपनी उपज का 47·2% बेचते थे पर गरीब तथा मध्यम वर्ग के किसान जो कुल उत्पादन का 85·3% भाग उत्पादन करते थे अपनी उपज का सिर्फ 13% ही बेचते थे । वे अनाज को सरकारी संस्थानों को निर्धारित मूल्यों पर बेचने के बनिस्पत जानवरों को खिलाने, छिपाने तथा मूल्य वृद्धि की चेष्टा करने लगे । श्रमिकों तथा सैनिकों के लिये सरकार किसानों की तुच्छ पूंजीवादी प्रवृत्ति के सामने न झुक कर, बल प्रयोग करने लगी । नीति के अन्त में कृषि की दशा, युद्ध तथा क्रान्तिकालीन स्थिति में पहुंच गई । सरकार के कदम कृषि-संगठन को कमजोर करने वाले सिद्ध हुए जिसका कि पुनरुद्धार पहली योजना में ही सभव हो सका ।

नवीन आर्थिक नीति में उद्योग
(Industry under N.E.P.)

यौद्धिक साम्यवाद के अन्तर्गत उद्योगों के क्षेत्र में अत्यधिक केन्द्रीकरण की नीति का अनुसरण करने से लगभग समस्त औद्योगिक तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया । इन राष्ट्रीयकृत प्रतिष्ठानों का सचालन, प्रबन्ध तथा नियंत्रण सर्वोच्च आर्थिक परिषद् वेसेन्खा (Vesenkha) तथा सहायक विभागों ग्लावकी (Glavki) के हाथों केन्द्रित था । अतः नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत औद्योगिक क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये गये । कठोर नियंत्रण के स्थान पर सीमित स्वतन्त्रता, प्रबन्ध तथा सचालन में विकेन्द्रीकरण तथा छोटे २ उद्योगों के

अराष्ट्रीयकरण (Denationalisation) के कार्य-क्रम अपनाए गए। इस नीति में निम्न मुख्य विशेषताएं थीं—

(1) **मिश्रित अर्थव्यवस्था का निर्माण**—अर्थतंत्र के औगोगिक क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रेरणा को प्रोत्साहन देने के लिये इस क्षेत्र को दो भागों में विभाजित किया—(1) राष्ट्रीय महत्व के प्रमुख बड़े-बड़े उद्योग जैसे बैंकिंग, बिजली, परिवहन, धातु तथा इंजीनियरिंग उद्योग, सरकारी क्षेत्र में सर्वोच्च आर्थिक परिषद् (Vesenkha) के नियंत्रण, प्रबन्ध तथा संचालन में रहे जबकि (2) अन्य उद्योगों को सहकारी संस्थाओं तथा व्यक्तिगत उत्पादकों के नियंत्रण में छोड़ दिया। कुछ उद्योगों में प्रबन्ध व नियंत्रण विकेन्द्रित कर दिया तथा छोटे-छोटे औद्योगिक प्रतिष्ठानों का राष्ट्रीयकरण समाप्त कर दिया गया। विदेशी पूंजीपतियों तथा उद्योगपतियों को देश में विनियोग तथा साहस उठाने के लिये आमंत्रित किया गया। इस तरह पूंजीवादी शक्तियों का राज्य के अधिकतम कल्याण के लिये विकेन्द्रित मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) अपनाई गई जिससे 1928 में 88·4% संस्थाएं निजी व्यक्तियों, 3·1% संस्थाएं सहकारी संस्थाओं तथा 8·5% संस्थाएं राज्य के हाथ में आ गई।

(2) **औद्योगिक प्रबन्ध व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण**—गृह-युद्ध के समय उद्योगों का प्रबन्ध, संचालन तथा नियंत्रण देश की सर्वोच्च आर्थिक परिषद् (Vesenkha) के आदेशानुसार ग्लावकी (Glavki) तथा सेन्टर्स (Centres) द्वारा किया जाता था। पर नवीन नीति में भी ढ़ील देने के लिये प्रान्तीय आर्थिक परिषदों को (Vesenkha) के नियंत्रण से हटा प्रान्तीय राज्यसत्ता के अधिकार में दे दिया। वेसेन्खा की कार्य-प्रणाली तथा संगठन में सुधार किये। ग्लावकी की संख्या 53 से हटाकर 16 कर दी। समस्त आर्थिक तथा औद्योगिक क्रियाओं पर केन्द्रीय सत्ता का सामान्य नियंत्रण रखते हुए उनके दिन-प्रतिदिन की कार्य-व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण कर दिया।

(3) **राजकीय उद्योग के लिये ट्रस्टों का निर्माण**—राजकीय औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्वायत्त प्रबन्धीय व्यवस्था (Autonomous administrative structure) बहुत जटिल हो गयी थी। यह विकेन्द्रित कार्यव्यवस्था को लागू करने के लिए एक ही प्रकार की उत्पादन व्यवस्था वाले प्रतिष्ठानों को पुनर्संगठित कर उनके संघ (Unions) बनाये गये जिन्हें बाद में ट्रस्ट (Trust) कहा जाने लगा। इन ट्रस्टों तथा उन बड़े उद्योगों—जिनका सामूहिकीकरण या एकीकरण (Unification) संभव नहीं था—वेसेन्खा, ग्लावकी आदि के प्रबन्ध नियंत्रण से मुक्त कर दिया। 1921 के उत्तरार्द्ध तथा 1922 में इस ट्रस्ट प्रबन्ध व्यवस्था की लोक-प्रियता बढ़ने से द्रुत गति से ट्रस्टों का निर्माण हुआ। यहां तक कि 1923 की ग्रीष्म ऋतु तक अधिकृत ट्रस्टों की संख्या 478 हो गई थी जिनका निर्माण 3561 उपक्रमों के

एकीकरण से हुआ था और उनमें करीब दस लाख श्रमिक काम करते थे। श्रमिकों की यह संख्या कुल श्रमिकों की संख्या का लगभग 75% था। सोवियत सरकार ने इन संघों (Trusts) को—(1) संघीय प्रन्यास (2) प्रादेशिक प्रन्यास, तथा (3) स्थानीय प्रन्यास में विभाजित कर उन्हें क्रमशः वेसेन्खा, ग्लावकी तथा सेन्टर्स (स्थानीय अर्थ-परिषद्) के नियंत्रण में सौंप दिया। 29 अक्टूबर, 1921 में एक विज्ञप्ति द्वारा इन ट्रस्टों को दो वर्गों में विभाजित किया। वे ट्रस्ट्स जो कच्चे माल, ईंधन तथा आर्थिक सहायता के लिये सरकार पर निर्भर करते थे (जिसमें मुख्यतः धातु सुरक्षा तथा भारी उद्योग सम्मिलित थे) अपने उत्पादन का 50% सरकार को देने के बाद बाकी को बाजार में बेचने के लिये इस शर्त पर स्वतंत्र थे कि बिक्री में राजकीय संस्थाओं तथा सहकारी संस्थाओं को निजी क्रेताओं से प्राथमिकता दी जायगी। बाकी प्रन्यासों को जो चाहे राज्य पर निर्भर हों या नहीं व्यापारिक दृष्टि से चलाये जाने की नीति अपनाई।

इन ट्रस्टों का स्वतंत्र कानूनी व्यक्तित्व होने से व्यापारिक करार कर सकते थे। ये ट्रस्ट स्वयं सम्पत्ति के मालिक नहीं बल्कि राज्य की ओर से ट्रस्टी थे। इनका ध्यान राज्य द्वारा निर्धारित कीमतों की सीमा में अधिक मुनाफा कमाना था।

(iv) **राष्ट्रीयकरण की सीमित वापसी**—1920 में आम राष्ट्रीयकरण की नीति के अन्तर्गत जिन छोटे-छोटे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया था, नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत उनमें से अधिकांश का अराष्ट्रीयकरण (Denation-alisation) कर दिया तथा उन्हें वापिस पुराने स्वामियों तथा सहकारी संस्थाओं को सौंप दिया गया। 1922 तक 4000 प्रतिष्ठानों के राष्ट्रीयकरण को वापस कर दिया। इस नीति के फलस्वरूप 1923 से 1,65,781 प्रतिष्ठानों में से 88·5% निजी व्यवसाइयों के हाथ में, 3% सहकारी संस्थाओं के हाथ में, तथा 8·5% राज्य के हाथ में थे।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि पूंजीवाद तथा निजी व्यक्तियों के पुराने सुनहले दिन फिर लौट रहे थे। यद्यपि राज्य के हाथ में केवल 13697 (8·5%) प्रतिष्ठान ही थे पर उनमें राष्ट्र के 84% श्रमिक काम करते थे तथा देश के औद्योगिक उत्पादन का 95% भाग इन प्रतिष्ठानों में निर्मित होता था। अराष्ट्रीयकृत प्रतिष्ठानों में अधिकांश छोटे थे और उनकी संख्या अधिक होते हुए भी उनमें देश के 12·4% श्रमिक काम करते थे तथा उनके द्वारा केवल राष्ट्रीय उत्पादन का 5% भाग निर्मित होता था। इस तरह अराष्ट्रीयकरण पूंजीवादी तत्वों को सैद्धान्तिक सान्त्वना मात्र था।

नवीन आर्थिक नीति से औद्योगिक क्षेत्र में उपलब्धियाँ
(Achievements)

नवीन औद्योगिक नीति से निजी व्यवसाइयों को उत्पादन में वृद्धि करने तथा सैद्धान्तिक सान्त्वना से कुशलता लाने का मौका मिला। राजकीय उद्योगों में प्रशासनिक कुशलता तथा विकेन्द्रित कार्य-व्यवस्था से समन्वय होने से उत्पादन में वृद्धि हुई। आधारभूत उद्योगों का विकास तेजी से हुआ जिससे *प्रथम योजना को कार्यान्वित* करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

राजकीय, सहकारी तथा निजी क्षेत्र में 1922–24 का औसत उत्पादन (युद्ध-पूर्व मूल्यों के आधार पर) 349·1 करोड़ रूबल था। वह 1925–26 में बढ़ कर दुगुना अर्थात् 692·3 करोड़ रूबल था। राजकीय उद्योगों का उत्पादन 1922–24 में 240 करोड़ रूबल था, वह 1925–26 में 533 करोड़ रूबल था जबकि सहकारी संस्थाओं तथा निजी उद्योगपतियों का सम्मिलित उत्पादन 1922–24 मे 10104 करोड़ रूबल तथा 1925–26 में 159 करोड़ रूबल ही था। इसके अलावा आधार-भूत उद्योगों में उत्पादन वृद्धि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

प्रमुख उद्योगों में उत्पादन

उद्योग	इकाई	1913	1924–25	1927–28
कोयला	मिलियन टन	29·1	16·1	35·4
लोहा	मिलियन टन	4·2	1·3	3·3
इस्पात	मिलियन टन	4·2	1·9	4·3
खनिज तेल	मिलियन टन	9·2	7·0	11·8
विद्युत शक्ति	विलियन किलोवाट	1·9	2·3	5·1

उत्पादन के आंकड़ों तथा उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कोयला, इस्पात तेल तथा विद्युत-शक्ति के क्षेत्र में प्रगति सन्तोषजनक रही जिससे भावी समाजवाद का मार्ग प्रशस्त हो सका।

नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत व्यापार
(Trade)

यौद्धिक साम्यवाद की अवधि में छिन्न-भिन्न आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार को पुनर्जीवित तथा पुनर्संगठन का प्रयास नवीन नीति में किया गया। व्यापार के राष्ट्रीयकरण से व्याप्त असन्तोष के समापन के लिये आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में भिन्न २ नीति अपनाई गई—

(अ) **आन्तरिक व्यापार**—नवीन आर्थिक नीति में आन्तरिक व्यापार को पुनः विकसित करने के लिये स्वतंत्र व्यापार नीति को प्रोत्साहित किया गया। स्वयं लेनिन ने स्वतंत्र व्यापार नीति का समर्थन करते हुए कहा था कि स्वतंत्र व्यापार की मांग की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि उसके द्वारा ही छोटे पैमाने के उत्पादन के अस्तित्व की आर्थिक दशाओं की पूर्ति की जा सकती है।

जहां नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत स्वतंत्र व्यापार-पद्धति में किसानों को खाद्यानों तथा कच्चे माल व चारे को स्वतंत्र बाजार में बेचकर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने का अवसर मिला वहां दूसरी ओर मजदूरों को भी उत्पादन का कुछ भाग कृषि पदार्थों से विनिमय के लिये अलग रखने का अधिकार मिला। इस प्रकार का वस्तु विनिमय न केवल खाद्य संग्रह का मुख्य तरीका था बल्कि कृषि और उद्योग के उचित पारस्परिक सम्बन्ध की कसौटी थी। आरम्भ में आन्तरिक विनिमय पद्धति स्थानीय थी पर 1921 की मई में व्यापार क्षेत्र विस्तृत कर दिया। व्यापार का संस्थागत संगठन मुख्यतः तीन प्रकार का था—

(1) **गैर सरकारी निजी व्यापारी**—जिन्हें नेपमेन (Napman) कहा जाता था फुटकर व्यापार तथा प्रतिनिधि के रूप में कभी-कभी थोक व्यापार में भाग लेते थे। ये नेपमेन भारतीय महाजन के समान थे। सहकारी संगठन तथा सरकारी दूकानों की प्रारम्भ में कमी होने से, नीति के प्रथम दो वर्षों में ही इन व्यापारियों ने थोक तथा खुदरा व्यापार पर इतना प्रभाव जमा लिया कि फुटकर व्यापार का $\frac{9}{10}$ भाग तथा थोक व्यापार का $\frac{1}{5}$ भाग इनके हाथ में था। औद्योगिक तथा सहकारी ट्रस्टों का लगभग 50% व्यापार इन्हीं द्वारा सम्पन्न होता था।

(2) **सहकारी समितियां**—ये थोक तथा फुटकर दोनों प्रकार का व्यापार करती थीं। 1922–23 के कैंची संकट से उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए, व्यक्तिगत व्यापार को सीमित कर सहकारी सस्थाओं का विकास किया जाने लगा।

(3) **राजकीय संस्थाओं का कार्य**—यह मुख्यतः थोक व्यापार तक ही सीमित था। औद्योगिक संस्थाओं ने 1922 के बाद से थोक व्यापार के लिये संगठन स्थापित किए। प्रान्तीय सरकारों ने भी थोक तथा खुदरा दोनों प्रकार की व्यापारिक संस्थाओं की स्थापना की और वेसेन्खा ने व्यापारिक कम्पनियाँ बनाई। जिनमें गोस्टोर्ग, मोस्टोर्ग तथा युक्रेनटोर्ग मुख्य थीं।

इस तरह 1922–23 के बाद से सहकारी तथा राजकीय संस्थाओं के व्यापारिक क्षेत्र में प्रवेश से 1928–29 में नेपमेन के पास थोक व्यापार का सिर्फ 5% तथा फुटकर व्यापार का 25% ही बच रहा। इस तरह विशुद्ध साम्यवाद के स्थान पर सीमित पूंजीवाद की नीति का अवलम्बन कर राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के अन्य प्रमुख

अंगों की भाँति देश के आन्तरिक व्यापार पर भी सोवियत साम्यवादी सरकार का प्रभुत्व ज्यों का त्यों बना रहा।

(ब) **विदेशी व्यापार**—गृह-युद्ध के समय यौद्धिक साम्यवाद की नीति के अन्तर्गत विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया था क्योंकि रूस के नेताओं के विचार से देश की बुनियादी समस्याओं का हल, औद्योगिक विकास के लिए विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से बचाव तथा पूंजीवादी अर्थ-तंत्र के व्यापार चक्रों से अर्थ-व्यवस्था की रक्षा विदेशी व्यापार पर सरकार के एकाधिकार से ही संभव थी। इसी कारण नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत सब क्षेत्रों में स्वतंत्रता तथा रियायतें देने पर भी विदेशी व्यापार में कोई छूट नहीं दी गई। हां विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने तथा आन्तरिक और विदेशी व्यापार नीतियों को समन्वित करने के लिए एक व्यापार विभाग (Commissariat of Trade viz.) नारकमतोर्ग (Narcomtorg) तथा विदेशी व्यापार विभाग संगठित किये। विदेशी दूतावासों में व्यापार प्रतिनिधियों की नियुक्ति तथा दूतावासों के अभाव में विदेशी व्यापार विकास के लिये कम्पनी, संगठित की गई।

परिणामस्वरूप विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई। जहाँ 1920 में निर्यात 60 लाख रूबल था तथा आयात 1260 लाख रूबल वह 1924 में बढ़कर क्रमशः 149·61 करोड़ रूबल तथा 113·88 करोड़ रूबल हो गया। व्यापार सन्तुलन जो 1920 में 11·96 करोड़ रूबल विपक्ष में था, 1924 में 33 73 करोड़ रूबल पक्ष में हो गया। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है—

रूस का विदेशी व्यापार (1918–24)*

(मिलियन रूबल में)

वर्ष	आयात	निर्यात	सन्तुलन (पक्ष विपक्ष) + −
1918	460·8	35·5	− 425·3
1920	125·9	6·0	− 119·9
1922	1181·9	357·4	− 824·5
1924	1138·8	1496·1	+337·3
1928	4174·6	3518·9	− 655 7

*Source—Russia's Soviet Economy—Schwartz p. 590.

नवीन आर्थिक नीति में मौद्रिक, बैंकिंग तथा वित्तीय व्यवस्था
(Monetary, Banking and Financial Organisation in N.E.P)

इस नीति में भी मौद्रिक, बैंकिंग तथा वित्तीय व्यवस्था पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण रहा क्योंकि सोवियत सरकार मुद्रा विहीन अर्थ-व्यवस्था तथा बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र में पूर्ण नियन्त्रण रख कर अपनी राष्ट्रीयकरण नीति को सफल बनाना चाहती थी। इनमें नवीन नीति का संक्षिप्त विवरण निम्न है :—

(1) **मौद्रिक व्यवस्था**—इस नीति में भी 1921 में मुद्रा-विहीन (Money-less) अर्थ-व्यवस्था को मान्यता दी। यद्यपि बाद में 30 जून 1921 में ही एक विज्ञप्ति के द्वारा राष्ट्रीय-स्तर पर मुद्रा द्वारा क्रय-विक्रय, धन संग्रह, धन हस्तान्तरण तथा मुद्रा प्रचलन की सुविधा दे दी। रूबल के महत्व में कमी तथा घाटे के बजटों (जो 1921 में 20,33,200 करोड़ रूबल) से मुद्रा प्रसार हो गया। जहां 1921 में प्रचलित रूबल नोटों की मात्रा 3500 मिलियार्ड्स थी, वह 1 जनवरी 1922 में 17500 मिलियार्ड्स तथा 1 मई 1922 में 1,30,000 मि. तथा 1922 के अन्त तक 2 मिलियन मिलियार्ड हो गया। दो बार 1921 तथा 1922 में अवमूल्यन करना पड़ा तथा नये नोट शेर्वोनेज (Chervonitz) प्रचलन में आये। 1922 में मूल्य-स्तर 1913 के मूल्यों से 2 लाख गुना अधिक था। 1925 में पुराने नोटों को रद्द कर दिया गया। पर फिर भी मूल्य स्तर में स्थिरता के प्रयत्नों का अभाव था।

(2) **बैंकिंग व्यवस्था**—विभिन्न उद्योगों, यातायात, व्यापार, कृषि तथा मुद्रा प्रयोग से प्रतिबन्ध हट जाने पर मुद्रा प्रचलन को नियमित करने के लिए साख-सुविधाएं तथा अल्पकालीन ऋणों के लिए 1921 में राजकीय बैंक (Gos Bank) स्थापित किया। ब्याज की दर 12% से 8% प्रति माह थी। तदुपरान्त 1922 में औद्योगिक बैंक (Prom Bank) सहकारी संस्थाओं के ऋण के लिए Poko Bank जो बाद में 1923 में All Russian Co-operative Bank—Poro Bank बन गया। स्थानीय उद्योगों तथा स्थानीय कार्यक्रमों को ऋण के लिए म्युनिसिपल बैंक तथा छोटे २ निजी व्यक्तियों की सहायता के लिए पारस्परिक साख संघ स्थापित हुए। बैंकों पर वैयक्तिक जमा पर लगाये गये प्रतिबन्ध हटा लिए तथा जमा पर कर से छूट थी। सरकारी ऋण-पत्रों तथा विदेशी मुद्राओं के बाजार के लिए मास्को तथा अन्य व्यावसायिक केन्द्रों पर वित्तीय एक्सचेन्ज खोले गये।

(3) **वित्तीय व्यवस्था**—घाटे के बजट इस समय की मुख्य विशेषता थी। व्यय आय का 6 गुना था। नवीन नीति में 1921 में 20,33,000 करोड़ रूबल के घाटे के बजट की पूर्ति नोट छाप कर की गई। व्यय में कमी के लिए राज्य सहायता प्राप्त प्रतिष्ठानों में कमी की गई तथा अनुत्पादक इकाइयों को बन्द कर दिया गया।

विकेन्द्रीकरण से भी व्यय कम हुआ। राज्य में आय की वृद्धि के लिए उद्योगों से श्रमिकों की संख्या के आधार पर लाईसेन्स फीस, बिक्री कर, कृषि कर की मुद्रा में वसूली आदि महत्वपूर्ण प्रयत्न थे। इसके अलावा आय कर, उत्पादन कर तथा तार, टेलीफोन, जल, बिजली, गैस जो पहले निःशुल्क प्राप्त होती थीं, शुल्क लिया जाने लगा।

राज्य के व्यय भार को कम करने के लिए स्थानीय तथा राज्य के बजटों के सामूहिकीकरण (Unification) की नीति का परित्याग कर राज्य बजट तथा स्थानीय बजटों को अलग २ कर दिया गया। बैंकों से ऋण भी लेने की व्यवस्था की गई।

नवीन आर्थिक नीति में श्रम नीति
(Labour Policy)

अनिवार्य श्रम-सेवा बन्द कर दी गई। 1922 में श्रमिकों के लिए एक श्रम कोड बनाया गया जिसके अनुसार प्रतिदिन 8 घन्टे कार्य के निश्चित किये गये। मजदूरों की मजदूरी की समान दरों के स्थान पर मजदूरी की विभेदात्मक दरें लागू की गईं। इससे काम करने की प्रेरणा बढ़ी। कृषि-क्षेत्र में भी मध्यम कृषकों को वेतन भोगी (Hired labour) मजदूर रखने की छूट दे दी गई।

नवीन नीति की अन्य उपलब्धियां
(Other achievements of N.E.P.)

औद्योगिक कृषि तथा अर्थ-व्यवस्था के स्नायु-मण्डल के प्रमुख केन्द्रों पर सरकारी नियन्त्रण तथा मिश्रित नीति का सीमित कार्यान्वयन होने से नवीन आर्थिक नीति से उपर्युक्त उपलब्धियों के अलावा निम्न प्रभावी प्रगति भी उल्लेखनीय है—

राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय—नवीन आर्थिक नीति के कार्यान्वयन से केवल चार वर्ष में ही रूस अपनी अर्थ-व्यवस्था को युद्ध-पूर्व की स्थिति में पुनः ला खड़ा करने में समर्थ हुआ। राष्ट्रीय आय में 150% की वृद्धि हुई जबकि प्रति व्यक्ति आय 1921 में 39 रूबल से बढ़कर 1925 में 100 रूबल प्रति व्यक्ति हो गई। जबकि जनसंख्या में 25% वृद्धि हो गई थी।

यातायात एवं संदेशवाहन—गृह-युद्ध के समय रूसी रेलों की स्थिति दयनीय हो गई थी। यहां तक कि रेलों की लम्बाई 1913 में 58550 किलोमीटर से घटकर 1918 में 17570 ही रह गई थी तथा 4330 पुल नष्ट हो गये थे। नवीन आर्थिक नीति काल में न केवल क्षति की पूर्ति की गई बल्कि नये कार्यक्रम हाथ में लेने से रेलों की कुल लम्बाई 1928 में बढ़कर 76800 किलोमीटर हो गई। रेलों की यात्री तथा माल ढ़ोने की क्षमता 1913 के मुकाबले 150% अधिक थी। डाक-तार के क्षेत्र में

भी प्रगति सन्तोषजनक रही। जहां 1913 में 1,12,335 स्थानों पर ही नियमित रूप से डाक जाती थी। 1928 में ऐसे स्थानों की संख्या 2,41,000 हो गई।

नवीन आर्थिक नीति की आलोचना
(Criticism of N. E. P.)

नवीन आर्थिक नीति की आश्चर्यजनक सफलता के फलस्वरूप भी इस नीति की आर्थिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से आलोचना की गई है। इस नीति को अस्पष्टता, असमानता, साम्यवाद की हार तथा राजकीय उद्योगों की प्रधानता का दोषी ठहराया जाता है—

(1) **अस्पष्ट नीति**—यद्यपि नवीन आर्थिक नीति में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को आधार बनाया गया था पर न तो कभी निजी क्षेत्र को स्पष्ट किया गया और न राज्य क्षेत्र का निर्धारण ही। उद्योगपतियों को हर समय राज्य हस्तक्षेप का भय होने से उत्पादन में आशानुकूल वृद्धि न हो सकी। विदेशी उद्योगपति भी दिलचस्पी न ले सके।

(2) **सामाजिक असमानता**—1923 के कैंची संकट से पूर्व कृषि-क्षेत्र में कुलक वर्ग तथा उच्च वर्गीय कृषक गरीब किसानों की अपेक्षा अधिक समृद्ध थे जबकि 1923 के कैंची संकट के बाद में औद्योगिक मूल्य ऊंचे तथा कृषि मूल्यों के नीचे होने के कारण कृषि-क्षेत्र को भारी क्षति हुई। इस तरह समाजवाद का आधारभूत उद्देश्य "सामाजिक-समानता" का स्वप्न इस नीति से साकार न हो सका।

(3) **स्वतन्त्रता काल्पनिक ही थी**—नवीन आर्थिक नीति में न तो स्वतन्त्र प्रतियोगिता ही थी और न उपभोक्ताओं को उपभोग वस्तुओं के चुनाव की स्वतन्त्रता ही, क्योंकि उपभोग वस्तुओं की कमी तथा ऊंचे मूल्य होने से यह काल उत्पादकों का स्वर्ग (Producers Paradise) कहा जा सकता है। इसमें सरकार ही सबसे बड़ी उत्पादक संस्था थी अतः लाभ सरकारी हाथों में ही केन्द्रित रहा।

(4) **साम्यवाद की हार**—इस नीति में पूंजीवादी तत्वों को पुनः प्रश्रय दिया गया। कृषि, उद्योग तथा व्यापार में निजी व्यक्तियों को स्वतन्त्रता देने से भविष्य में सोवियत सरकार को काफी कठिनाई उठानी पड़ी। लेनिन ने स्वयं स्वीकार किया है कि निजी तथा सार्वजनिक उद्योग के अप्राकृतिक मिश्रण से एक ऐसा संघर्ष उठ खड़ा हुआ जिसमें पूंजीवादी तत्वों की विजय हुई। बिक्री संकट तथा कैंची संकट इसके प्रत्यक्ष उदाहरण थे। इस नीति से पूंजीवाद की पुनः स्थापना का भय व्याप्त हो गया था।

नवीन आर्थिक नीति का मूल्यांकन
(An appraisal of the New Economic Policy)

यद्यपि नवीन आर्थिक नीति की आलोचना की गई है पर उसकी उपलब्धियों

का विवेचन यह स्पष्ट कर देता है कि नवीन आर्थिक नीति सीमित मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के आधार पर समाजवाद के लिए मार्ग प्रशस्त करने में सफल हुई। इस अवधि में कृषि-क्षेत्र में अनिवार्य वसूली के स्थान पर कृषि कर और कृषि वस्तुओं को स्वतन्त्र बाजार में बेचने की सुविधा से कृषि और उद्योग में पुनः सहयोग बढ़ा। श्रमिकों तथा कृषि में अटल मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का यह सफल प्रयास था। पूंजीवादी शक्तियों के राष्ट्रीय कल्याण में उपयोग की नीति से औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई और रूस औद्योगिक उत्पादन के युद्ध पूर्व के स्तर को पहुँचने में सफल हुआ। प्रारम्भ में तो निजी व्यापारियों को फुटकर व्यापार में $\frac{3}{4}$ तथा थोक व्यापार में $\frac{1}{5}$ भाग मिला था पर बाद में बिक्री संकट तथा कैंची संकट के कारण आन्तरिक व्यापार में सरकारी हस्तक्षेप में वृद्धि तथा सहकारी संस्थाओं के विकास से निजी व्यावसायियों का भाग बहुत घट गया था। विदेशी व्यापार में भी वृद्धि हुई। जहां यौद्धिक साम्यवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय में 60 प्रतिशत की कमी हुई थी इस नीति काल में 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति आय 1921 में 39 रूबल से बढ़कर 1925 में ही 100 रूबल हो गई! राष्ट्रीय आय में 150 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

यद्यपि इस आर्थिक समृद्धि में विषमता भी बढ़ी। उत्पादक वर्ग में गरीब किसानों तथा निम्न स्तरीय मजदूरों को मध्यम तथा उच्च वर्गीय किसानों और उद्योगपतियों की अपेक्षा कम लाभ पहुँचा। इससे असमानता में वृद्धि हुई। कैंची संकट तथा बिक्री संकट में पूंजीवादी तत्वों का संघर्ष झलक रहा था।

इन परिस्थितियों से लेनिन के अनेक साथी जो बोलशेविक क्रान्ति को मार्क्स के सिद्धान्तों पर ले जाने को आतुर थे, नवीन नीति की इस उदारता तथा परिणामों से सन्तुष्ट न थे, इस नीति के विरुद्ध उनकी प्रतिक्रिया खुले रूप में 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद आई जब स्टालिन से सत्ता सम्हाल कर अर्थ-व्यवस्था में योजनाकरण तथा सामूहिकीकरण को प्रबल करना प्रारम्भ किया। अन्ततः 1928 में इस नीति का परित्याग कर रूस ने समाजवाद के स्वप्न को साकार करने के लिए निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त को हमेशा के लिए तिलांजलि दे दी।

संक्षेप में यही कहना युक्ति संगत है कि नवीन आर्थिक नीति, साम्यवाद की हार न होकर संक्रमण कालीन मिश्रित व्यवस्था (Transitional mixed system) के रूप में राजकीय पूंजीवाद था जिससे तत्कालीन संकटों पर विजय पाकर उत्पादन में वृद्धि, कृषकों तथा श्रमिकों में मैत्री सम्बन्ध तथा विघटित अर्थ-व्यवस्था को पुनः संगठित कर समाजवाद का मार्ग प्रशस्त करने की एक सफल नीति थी।

———

परिशिष्ठ (Appendix)

कैंची संकट
(Scissors Crisis)

सोवियत सरकार को नवीन आर्थिक नीति काल में तीन प्रमुख आर्थिक संकटों—ईंधन संकट, बिक्री संकट तथा कैंची संकट का सामना करना पड़ा। ईंधन संकट से परिवहन और उद्योगों के विकास में बाधा उत्पन्न हो गई थी तो बिक्री संकट में औद्योगिक वस्तुओं के गिरने तथा खाद्यान्न और कच्चे माल के मूल्यों में वृद्धि का दौर अल्पकाल में ही चरम सीमा पर पहुंचने लगा। 1913 के आधार वर्ष पर जहां जनवरी 1922 में औद्योगिक वस्तुओं तथा कृषि पदार्थों का मूल्य सूचनांक क्रमशः 92 और 104 था, वह मई 1922 में क्रमश: 74 तथा 113 हो गया। अत: सोवियत सरकार के सामने कृषि की समृद्धि में उद्योगों की अवनति के आसार दृष्टिगोचर होने लगे। पर सरकार के द्वारा इस दिशा में किये गये सुधार के प्रयत्नों से 1922 की मई के बाद स्थिति विपरीत दिशा में बदलने लगी और इससे कैंची संकट उत्पन्न हुआ जो अपेक्षाकृत अधिक दुखदायी था।

कैंची संकट क्या था ?

मई 1922 के बाद कृषि पदार्थों की बाजार में पूर्ति बढ़ने तथा औद्योगिक वस्तुओं की उत्पत्ति गिरने से कृषि पदार्थों के मूल्यों में कमी तथा औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होने लगी। यह स्थिति बिक्री संकट के बिलकुल विपरीत थी। अगर कृषि तथा औद्योगिक वस्तुओं के इन मूल्य सूचनांकों को रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत किया जाय तो इस रेखाचित्र का रूप कैंची के दो फलकों के समान हो जाता है। इसी कारण ट्रोट्स्की (Trotsky) ने इसे कैंची संकट की संज्ञा दी है। यह स्थिति कृषि तथा औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों में असन्तुलन को प्रदर्शित करती है। इससे कृषि तथा उद्योगों के विकास में समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।

इस प्रकार अगस्त 1922 में कृषि वस्तुओं का सूचनांक गिरकर 100·5 तथा औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों का सूचनांक बढ़कर 99 हो गया। यहां तक कि जनवरी 1923 तक कृषि वस्तुओं तथा औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों का अनुपात 1:3 हो गया था। निम्न तालिका इसका स्पष्टीकरण करने के लिए पर्याप्त है—

कृषि तथा औद्योगिक मूल्यों का सूचनांक
(1913=100)

वर्ष		कृषि मूल्य सूचनांक	औद्योगिक वस्तुओं का मूल्य सूचनांक
जनवरी	1922	104	92
मई	,,	113	74
अगस्त	,,	100·5	99
सितम्बर	,,	94	112
सितम्बर-अक्टूबर	1923	88	275

कृषि तथा औद्योगिक मूल्यों में यह असन्तुलन कृषि और उद्योगों के लिए अव्यवस्था तथा भयानक संकट का कारण वना। व्यापार का सन्तुलन ग्रामीण जनता के विपरीत हो गया।

कैंची संकट के कारण
(Causes of Scissors Crisis)

कैंची संकट के कारणों के वारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कोन्ड्रेटिव के अनुसार इस संकट का कारण ग्राम वाजार का संकुचन था जबकि प्रो. डोव के अनुसार संकट का कारण वाणिज्यीक अभिपदों के कारण उद्योगों की एकाधिकारी प्रवृत्ति थी। पियारकोव के अनुसार कैंची संकट कृषि पदार्थों की वाहुल्यता तथा औद्योगिक उत्पादन की न्यूनता के कारण उत्पन्न हुआ। विभिन्न विचारों के समन्वय से यह कहा जा सकता है कि कैंची संकट अनेक कारणों का सामूहिक परिणाम था। ये कारण निम्न थे :—

(1) **उदार साख नीति**—उदार साख नीति से उद्योगों का विनियोग वढ़ा तथा संग्रह प्रवृत्ति वढ़ी। विनियोग वढ़ने तथा औद्योगिक माल की पूर्ति में कमी से मुद्रा स्फीति उत्पन्न हो गई।

(2) **औद्योगिक उत्पादन में कमी**—मई 1922 तक औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य में कमी होने से उद्योगों में उत्पादन कम हो गया था। उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग नहीं उठाया गया था।

(3) **कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि**—मई 1922 में कृषि पदार्थों के ऊंचे मूल्यों से कृषि में उत्पादन को वढ़ावा मिला तथा फसल आने पर कृषि पदार्थों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। मांग कम लोचदार होने से मूल्यों में गिरावट स्वाभाविक थी।

(4) **औद्योगिक उत्पादन लागत में वृद्धि**—राजकीय उद्योगों में अव्यवस्था तथा अकुशलता के कारण लागत मूल्य में वृद्धि ने औद्योगिक मूल्यों को वढ़ाने में योग दिया।

(5) **लाभ की प्रवृत्ति**—बड़े २ सरकारी उद्योगों में एकाधिकारी प्रवृत्ति से लाभ के लिए उत्पादन की नीति अपनाई। वे युद्धकालीन क्षति की पूर्ति का प्रयत्न कर रहे थे तथा साथ ही अपनी कार्यशील पूंजी की पूर्ति भी लाभों से करना चाहते थे। अतः सर्वत्र लाभ प्रवृत्ति प्रबल थी। इससे मूल्य ऊंचे बढ़े। फुटकर व्यापारियों ने संकट को बढ़ाने में योग दिया।

(6) **दोषपूर्ण सरकारी नीति**—सरकार के द्वारा कृषि पदार्थों के मूल्यों का निर्धारण निम्न स्तर किया पर था। कृषक असंगठित थे और उन्हें सरकार से उदार सहायता के अभाव में अपनी उपज को बेचने के लिए बाध्य होना पड़ता था। विदेशों में अनाज व कृषि पदार्थों का निर्यात कम हो जाने से कृषि वस्तुओं की पूर्ति बढ़ गई।

(7) **मुद्रा-प्रसार**—उदार साख नीति से संग्रह प्रवृत्ति बढ़ी तथा मूल्य-स्तर में वृद्धि हुई। औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों में मुद्रा प्रसार के कारण तेजी से वृद्धि हुई।

कैंची संकट के दुष्प्रभाव
(Effects of Scissors Crisis)

कैंची संकट से रूस की सरकार के सामने विषम स्थिति उत्पन्न हो गई। इस संकट से ग्रामीण जनता का शोषण हुआ। औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में अत्यधिक लाभ से आर्थिक विषमता बढ़ी। नवीन आर्थिक नीति में कृषकों तथा श्रमिकों में जो अटूट मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का उद्देश्य था, उसके लिए एक राजनैतिक खतरा उत्पन्न हो गया था। कृषक वर्ग का सरकार में विश्वास समाप्त होने लगा और असन्तोष बढ़ता जा रहा था। इस संकट से नवीन आर्थिक नीति की असफलता दृष्टिगोचर होने लगी। अतः यह कहा जा सकता है कि कैंची संकट के आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक प्रभाव इतने भयंकर थे कि सरकार को इस संकट के निवारण के लिए तत्काल प्रभावी कदम उठाने पड़े।

कैंची संकट के निवारण के उपचार
(Remedial measures to end Scissors Crisis)

कृषि तथा उद्योगों के सन्तुलित विकास एवं सामन्जस्य तथा कृषकों एवं औद्योगिक श्रमिकों में मैत्री भाव बढ़ाने के लिए सरकार ने कृषि वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि तथा औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों में कमी करने के प्रयास प्रारम्भ किये। प्रमुख उपचार इस प्रकार थे :—

(1) **साख का राशन**—औद्योगिक प्रन्यासों को दी जाने वाली अग्रिम राशि तथा ऋण को सीमित किया गया जिससे उनकी संग्रह प्रवृत्ति कम हुई और बाजार में औद्योगिक वस्तुओं की पूर्ति बढ़ी। कृषि क्षेत्र में ऋण तथा अनुदान की उदार नीति अपनाई गई।

(2) कृषि पदार्थों के निर्यात तथा औद्योगिक वस्तुओं के आयात को प्रोत्साहन दिया गया जिससे कृषि वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि तथा औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य में कमी आने लगी।

(3) **औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि** उद्योगों में पूर्ण उत्पादन क्षमता का उपयोग करने तथा अभिनवीकरण आदि से उत्पादन में कुशलता लाने के प्रयास किये गये।

(4) **औद्योगिक उत्पादन लागत में कमी**—उत्पादन लागत में कमी करने के लिए उद्योगों के प्रबन्ध में कुशलता, अभिनवीकरण, वैज्ञानिक प्रबन्ध और पूर्ण क्षमता का उपयोग करने के प्रयत्न किये गये।

(5) **मूल्य नीति का निर्धारण**—सरकार ने औद्योगिक वस्तुओं के उच्चतम विक्रय मूल्यों की सीमा निर्धारित कर दी तथा उद्योगों में लाभ की मात्रा घटाने की कोशिश की गई। इसी प्रकार कृषि पदार्थों के सम्बन्ध में भी क्रय-विक्रय की उचित नीति निर्धारित की गई।

(6) **मौद्रिक नीति में सुधार**—सरकार ने मुद्रा के मूल्य में स्थिरता लाने तथा मुद्रा स्फीति के दुष्प्रभावों को नियन्त्रित करने के लिए मौद्रिक व्यवस्था में भी सुधार किया गया।

(7) **वितरण व्यवस्था में सुधार**—व्यक्तिगत-व्यापार को सीमित कर राज्य व्यापार को बढ़ाया गया। कृषि उत्पादन के व्यापार के केन्द्रीकरण के लिए सहकारिता तथा राजकीय व्यापार की नीतियों का अनुसरण किया। परिणामस्वरूप जहां 1922-23 में व्यक्तिगत व्यापारियों का भाग 75·2 प्रतिशत था वह घटकर 1927-28 में 22·8 प्रतिशत रह गया। केन्द्रीय राजकीय संगठनों ने अन्न तथा औद्योगिक फसलों का 80 से 100 प्रतिशत खरीद व्यापार को अपने हाथ में ले लिया।

इस प्रकार सोवियत सरकार द्वारा अपनाये गये अनेक उपचारों से कैंची संकट से 1924 तक मुक्ति मिल गई। औद्योगिक वस्तुओं और कृषि पदार्थों के मूल्यों का अनुपात जो सितम्बर 1913 में 3 : 1 था वह 1914 में घटकर 1·5 : 1 रह गया दोनों के मूल्यों का अन्तराल धीरे २ घटता गया और 1928 तक इस संकट के सभी संभावित खतरों की समाप्ति कर दी गई। इस संकट के समापन से कृषकों तथा श्रमिकों में पुनः मैत्री सम्बन्धों को सुदृढ़ कर समाजवाद का मार्ग प्रशस्त किया गया। दल में सामञ्जस्य स्थापित किया और विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं की विचारधारा प्रबल हुई। पूंजीवादी तत्वों को तिलाञ्जली देने को प्रोत्साहन मिला।

———

अध्याय 2

प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्व रूस की दशा

Condition of U.S.S.R. on the eve of First Five Year Plan)

आज विश्व में महान् शक्तिशाली राष्ट्र होने का दम भरने वाला रूस अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्व आर्थिक दृष्टि से अस्त-व्यस्त, सामाजिक दृष्टि से विघटित तथा राजनैतिक दृष्टि से प्रभावहीन राष्ट्र था । 1917 की खूनी-क्रान्ति तथा गृह-युद्ध में लेनिन के नेतृत्व में रूढ़िवादी तथा निष्प्राण जनता में समाजवाद की स्थापना के नारे से चेतना जागृत हुई। जार शासकों तथा कुलक वर्ग से शोषित भूमिहीन कृषकों तथा औद्योगिक और वित्तीय पूंजीवाद से पीड़ित श्रमिकों में अपने उज्ज्वल भविष्य की प्रेरणा प्रबल हो गई थी । । राजनैतिक दृष्टि से देखा जाय तो भी स्थिति दयनीय थी। पूंजीवादी शक्तियां समाजवाद के स्वप्न को विफल करने में हर संभव प्रयत्न कर रही थीं। इस राजनैतिक तथा सामाजिक आवरण में आर्थिक शोषण, असमानता, कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र का पिछड़ापन, व्यापार की सीमितता स्वाभाविक थी। इस तरह क्रान्ति के बाद 1928 तक राजकीय पूंजीवादी नीति, यौद्धिक साम्यवाद की नीति तथा 1921 से 1928 तक नवीन आर्थिक नीति (N.E.P.) से राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भावी विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार हो चुका था। इन क्षेत्रों की स्थिति प्रथम पंचवर्षीय योजना से पूर्व निम्न थी:—

(अ) सामाजिक दशा
(Social Conditions)

1917 की क्रान्ति से पूर्व तो रूस में दो वर्ग – शासक तथा शासित थे । इन दो वर्गों के बीच गहरी खाई थी । राज्य-अधिकारियों तथा पादरियों द्वारा भाग्यवादी, अन्धविश्वासी, चेतना रहित तथा निष्प्राण भोली जनता का शोषण होता था ।

पाश्चात्य संस्कृति तथा विचारों के प्रभाव का अभाव था पर क्रान्ति के बाद उनमें चेतना जागृत हुई। जार शासकों का समापन कर दिया गया। अब समाजवाद के स्वप्न को साकार करने के लिये मजदूरों तथा कृषकों में अटूट मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिये नवीन आर्थिक नीति में सीमित स्वतन्त्रता प्रदान की। इससे समाज में सम्पन्न वर्ग को पुनः अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिला। विक्री संकट तथा कैंची संकट के समय अपनाई गई नीतियों से समाज में आर्थिक असमानता बढ़ती जा रही थी। शोषण की पुन: शुरूआत होने का सिलसिला जारी हो गया था। नवीन आर्थिक नीति में पूंजीवादी तत्वों की विजय निश्चित होती देख, समाज में गरीबों तथा अमीरों में संघर्ष का वातावरण तैयार हो रहा था। इसी बीच लेनिन की मृत्यु 1924 में हो गई और स्टालिन ने इस संघर्ष से बचने के लिए नवीन आर्थिक नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर, निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त को सदा-सदा के लिये त्याग दिया तथा आर्थिक नियोजन की पद्धति प्रथम पंचवर्षीय योजना के रूप में प्रारम्भ की।

(ब) राजनैतिक दशा
(Political Conditions)

सामाजिक दुर्दशा के समान ही राजनैतिक दृष्टि से भी रूस की प्रथम योजना से पूर्व दयनीय दशा बन गई थी। 1917 से पहले तो जार शासन का अत्याचारी प्रकोप था। राजा और प्रजा में गहरी खाई थी। शोषण का बोलबाला था। लेनिन के नेतृत्व में 1927 में वहां की शोषित जनता ने अपने भावी भविष्य के लिये रक्त-रंजित क्रान्ति से जार शासन का उन्मूलन कर दिया और उसके स्थान पर सर्वहारा वर्ग की सरकार बन गई। देश और विदेश की पूंजीवादी शक्तियां अब भी इस समाज-वादी क्रान्ति का खुले तथा दवे रूप में प्रतिरोध कर रही थीं। अतः सरकार को प्रारम्भ में राजकीय पूंजीवाद तथा बाद में बिगड़ती स्थिति पर काबू पाने के लिए यौद्धिक साम्यवाद की नीति अपनाई। इस नीति में समुचित अर्थव्यवस्था पर सरकार का कठोर नियन्त्रण तथा बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण कर राजनैतिक सुदृढ़ता की कोशिश की गई। गृह-युद्ध की समाप्ति पर, युद्ध जर्जरित राजनैतिक डांवाडोल स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था पर आधारित नवीन आर्थिक नीति अप-नाई गई। इस नीति के कार्यान्वयन में पूंजीवादी शक्तियों ने समाज के राजनैतिक लक्ष्यों को धूमिल कर दिया। 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद पूंजीवाद के तत्वों के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रबल हो गई। स्टालिन ने सत्ता सम्हाल कर राजनैतिक दशा सुधारने का प्रयत्न प्रारम्भ किया तथा साम्यवाद को विघटित होने से बचाया।

(स) प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्व आर्थिक दशा
(Economic condition on the eve of the First Five Year Plan)

1917 की खूनी-क्रान्ति के बाद रूस के कर्णधार नेताओं ने सम्पूर्ण अर्थ-

व्यवस्था के कायापलट के लिए जो कदम राजकीय-पूंजीवाद, यौद्धिक-साम्यवाद तथा नवीन आर्थिक नीति के रूप में उठाये, उनसे समाजवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ। देश में लेनिन की मृत्यु के बाद स्टालिन ने सत्ता सम्हाली और उसने मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर क्रान्ति को सफल बनाने के लिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को नियोजित रूप से संगठित तथा संचालित करने के लिए 1928 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का शुभारम्भ किया। इस योजना के पूर्व देश की आर्थिक दशा का ज्ञान निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता है:—

(1) **राष्ट्रीय आय**—क्रान्ति तथा गृह-युद्ध के समय रूस की राष्ट्रीय आय बहुत नीचे गिर गई थी पर नवीन आर्थिक नीति से 150% की वृद्धि हुई। 1928 में राष्ट्रीय आय 1830 करोड़ रूबल थी जबकि 1928–29 में इसका 2750 करोड़ रूबल होने का अनुमान है। प्रति व्यक्ति आय (Per capita income) 1921 में 39 रूबल से बढ़कर 1925 में 100 रूबल तथा 1928 में लगभग 200 रूबल थी। 1928–29 में कुल निवेश 970 करोड़ रूबल तथा शुद्ध निवेश 622 करोड़ रूबल था। इस प्रकार शुद्ध निवेश राष्ट्रीय आय का लगभग $22\frac{1}{2}$% था। उपभोग राष्ट्रीय आय का 77% भाग था।

मूल्यों में उतार-चढ़ाव तथा औद्योगिक एवं कृषि मूल्यों में सामंजस्य के अभाव में धन की विषमता का बोलबाला था। एक ओर आर्थिक सम्पन्नता तथा दूसरी ओर गरीबी का ताण्डव नृत्य समाजवाद के लिए संघर्ष तथा खतरा बन चुका था।

(2) **कृषि**—1917 की क्रान्ति से प्रथम योजना के आरम्भ तक कृषि का इतिहास परीक्षणों, प्रोत्साहनों, विफलताओं और कृषकों के तुष्टीकरण के उपायों का इतिहास है। 1917–18 के कृषि सुधारों के कारण जमीदारियों का अन्त होने से किसानों के पास भूमि की मात्रा में काफी समानता आई और युद्ध पूर्व में 27 एकड़ से बड़े खेतों के अन्तर्गत जहां कुल कृषि भूमि का दो तिहाई भाग था, घट कर $\frac{2}{5}$ रह गया तथा 15 से 27 एकड़ के खेतों के अन्तर्गत कृषि भूमि का $\frac{1}{2}$ भाग हो गया था। खेती मुख्यत: नवीन नीति के अन्तर्गत व्यक्तिगत आधार पर होती थी। राजकीय खेतों (State Farms) की संख्या 4-5 हजार से अधिक नहीं थी और सामूहिक खेतों की संख्या लगभग 15 हजार थी। राजकीय कृषि फार्मों के पास 30–40 लाख एकड़ तथा सामूहिक फार्मों के पास 50–60 लाख एकड़ भूमि थी जो कुल कृषि योग्य भूमि का 1 प्रतिशत भाग था। देश की $\frac{3}{4}$ जनसंख्या कृषि पर आश्रित थी।

कृषि मुख्यत: छोटे पैमाने पर व व्यक्तिगत आधार पर की जाती थी। 1926–27 के अनुमान के अनुसार कुल किसानों में से 3·9% किसान "कुलक" (समृद्ध किसान) थे, 62·7% मध्यम वर्ग किसान, 22·1% निर्धन किसान तथा शेष 11 3% सर्वहारा वर्ग किसान थे जो कुल अन्न-कर का क्रमश: 25·9%, 72·9% तथा 1·3% भाग देते थे। सर्वहारा वर्ग के किसान अन्न-कर से मुक्त थे।

खेती के तरीके पुराने तथा रूढ़िवादी थे। भू-स्वामियों में समानता आ जाने पर भी औजारों व काम के लिए पशुओं का वितरण असमान था। $\frac{1}{4}$ से ज्यादा किसानों के पास खेत जोतने के लिए भी पशु नहीं थे जबकि 10% सम्पन्न किसानों (Kulaks) के पास $\frac{1}{3}$ से अधिक औजार होने से आर्थिक असमानता में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। सहकारी कृषि का विकास कम होने से विशिष्टीकरण का अभाव था।

1928 में कृषि उपज की दशा दयनीय थी क्योंकि एक ओर कुछ भागों में सूखा पड़ने से उत्पादन न हुआ वहां दूसरी ओर औद्योगिक मूल्यों की अपेक्षाकृषि मूल्यों में कमी होने से किसान राज्य को निर्धारित मूल्यों पर अन्न वेचने में अप्रसन्न थे। इस स्थिति का सामना करने के लिये कृषि उत्पादन संग्रह को जब्त करने की नीति अपनाई। राजकीय फार्मों तथा सामूहिक फार्मों की स्थापना का दौर तेजी से प्रारम्भ किया गया। लगभग ढाई करोड़ स्वतन्त्र किसानों की भूमि का अधिग्रहण करने का कार्य शुरू हुआ।

कृषि क्षेत्र में कुल उत्पादन 1928 में 73·3 मिलियन मैट्रिक टन था। इसमें खाद्यान्न का उत्पादन लगभग 4700 मिलियन पूड था। इस कमी से निर्यात वहुत कम हो गया था।

नई क्रान्तिकारी कृषि नीति से कुलक वर्ग में असन्तोष तथा राजकीय नीति में कड़ाई वरतने से 1928–29 में गाँवों में वर्ग संघर्ष बढ़ गया। ग्राम सोवियत की सहायता से कुलक वर्ग की सम्पत्तियों (मशीन, मवेशी तथा फार्म सम्पत्ति) को जब्त करने, राजकीय फार्मों तथा सामूहिकरण की नीति से ग्रामीण क्षेत्र में अशान्त एवं विप्लवकारी वातावरण तैयार हो गया था। ऐसे समय में पूर्ण आर्थिक नियोजन आवश्यक सा हो गया था।

(3) **उद्योग**—राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्षेत्र का भाग 42% था। नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत सीमित अराष्ट्रीयकरण की नीति के बाद भी सार्वजनिक क्षेत्र का उत्पादन कुल औद्योगिक उत्पादन का 82·4% था। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में 88·5% प्रतिष्ठान निजी क्षेत्र में, 3·1% सहकारी क्षेत्र में तथा सिर्फ 8·5% प्रतिष्ठान ही सार्वजनिक क्षेत्र में थे। इस तरह निजी क्षेत्र में वहुत छोटे पैमाने के उद्योग ही सम्मिलित थे और वे कुल उत्पादन का सिर्फ 5% उत्पादन करते थे। मूल औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर सरकार का प्रभावी नियन्त्रण ट्रस्टों के रूप में था।

उद्योगों के प्रति स्पष्ट नीति के अभाव में पूंजीपति वर्ग राज्य के रवैये के प्रति सशंकित थे। पूंजी का अभाव, कच्चे माल की कमी तथा प्रबल कुशलता की सीमितता से औद्योगिक उत्पादन जो 1922–24 में 3414 मिलियन रूबल था वह

1925–26 में 6923 मिलियन रूबल हो गया था। 1917 से 1927 की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में 1913 के मूल्य स्तर से 11% की वृद्धि हुई थी।

1927–28 में कोयले का उत्पादन 35·4 मि. टन, इस्पात का उत्पादन 4·3 मि. टन, खनिज तेल का उत्पादन 11·8 मि. टन तथा विद्युत शक्ति का उत्पादन 5·1 विलियन किलोवाट था।

कारखानों और फैक्टरियों में कार्य करने वाले श्रमिकों की सख्या 1·1 करोड़ थी और इस तरह देश के 18% श्रमिक उद्योगों में संलग्न थे।

कैंची संकट के फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र को लाभ हुआ पर 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद से ही स्टालिन के सत्ता में आने के बाद देश में औद्योगीकरण का मजबूत आधार तैयार करने की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। इस प्रक्रिया से भावी प्रथम पंचवर्षीय योजना के लिये आधार तैयार हुआ। यद्यपि 1928 में सोवियत उद्योग का स्तर क्रान्ति से पूर्व के स्तर से कहीं ऊंचा उठ गया था पर फिर भी उस समय उसका उत्पादन अमेरिका के उत्पादन का लगभग 12·5% भाग था जबकि अब यह 65% भाग है। 1928 में रूस का औद्योगिक उत्पादन सम्पूर्ण विश्व के औद्योगिक उत्पादन का लगभग 5% भाग था अब वह 20% भाग है।

(4) **व्यापार की दशा—(i) आन्तरिक व्यापार**—1917 की क्रान्ति के बाद यौद्धिक साम्यवाद में तो व्यापार पर सरकार का कठोर नियन्त्रण हो गया था पर नवीन आर्थिक नीति (N.E.P.) में आन्तरिक व्यापार में स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई। व्यापार NEPMAN निजी व्यापारियों का फुटकर व्यापार में $\frac{3}{4}$ भाग तथा थोक व्यापार में $\frac{1}{5}$ भाग था। कैंची संकट और बिक्री संकट के बाद सरकार ने निजी व्यापार को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से सहकारी संस्थाओं तथा सरकारी कम्पनियों का निर्माण किया जिनमें वेसेन्खा द्वारा निर्मित व्यापारिक कम्पनियों में गोस्टोर्ग, मोस्टोर्ग तथा युक्रन टोर्ग इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इससे निजी फुटकर दूकानों की भारी कमी हो गई। 1928–29 तक निजी व्यापारियों के हाथ में थोक व्यापार का केवल 5% तथा फुटकर व्यापार में 25% भाग ही रह गया था। इस तरह आन्तरिक व्यापार में औद्योगिक प्रन्यासों के संगठित व्यापारिक संस्थानों, सरकारी कम्पनियों के बढ़ते प्रभाव के बावजूद भी निजी व्यापारी भी काफी सक्रिय थे।

(ii) **विदेशी व्यापार**—जहां तक विदेशी व्यापार का प्रश्न है सरकारी कठोर नियन्त्रण लागू रहा तथा सरकार का एकाधिकार था। विदेशी व्यापार का सन्तुलन हमेशा विपक्ष में रहता था। इसके समाधान के लिये नवीन आर्थिक नीति के समय रूस सरकार ने 1924 में ब्रिटेन, इटली, नार्वे, आस्ट्रिया, चीन, डेनमार्क आदि देशों से व्यापार-सन्धियां कीं। अतः सोवियत रूस का विदेशी व्यापार 1921 में 18

करोड़ से बढ़कर 1924 में 47 करोड़ रूबल तथा 1928 में 137 करोड़ रूबल हो गया।

भारी उद्योगों की स्थापना की नीति के कारण रूस के आयातों में भारी मशीनों तथा यन्त्रों की प्रमुखता थी जबकि निर्यात में खाद्यान्न तथा कच्चे माल का बाहुल्य था।

देशी और विदेशी व्यापार में सामंजस्य स्थापित करने के लिये नारकमटोर्ग (NARKOMTORG) की स्थापना की।

(5) **श्रमिकों की दशा**—(i) **सामान्य**— 1917 से 1920 में अन्न संकट तथा आर्थिक अव्यवस्था के कारण श्रमिकों के शहरों से गांवों में प्रवास से उद्योग, व्यापार, परिवहन व सैनिकों के लिए श्रमिकों की कमी हो गई। अतएव यौद्धिक साम्यवाद (War Communism) में औद्योगिक श्रमिकों पर कठोर अनुशासन तथा दबाव की नीति अपनाई गई पर नवीन आर्थिक नीति में उन्हें कुछ स्वतन्त्रता दे दी गई। गृह-युद्ध के बाद शान्तिकालीन परिस्थितियों में पुनः गांवों से लोग शहरों तथा उद्योगों की ओर आकर्षित हुए। नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत उद्योगों के तीव्र विकास से एक अनुमान के अनुसार 1928 में सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था में 1·16 करोड़ श्रमिक व कर्मचारी रोजगार में थे। नवीन आर्थिक नीति के अन्तिम वर्षों में लगभग 17 41 लाख व्यक्ति बेरोजगार पंजीकृत थे। गृह-युद्ध के बाद सैनिकों की कमी के कारण भी बेरोजगारी में वृद्धि हुई।

(ii) **उत्पादन कुशलता**—1928 से पूर्व आधुनिक यन्त्रों तथा मशीनों के अभाव में रूस के श्रमिकों की उत्पादन कुशलता यूरोपीय श्रमिकों के मुकाबले बहुत कम थी। प्रशिक्षित कर्मचारियों का तो नितान्त अभाव था। अतः बड़ी संख्या में इन्जीनियरों तथा तकनीशियनों का अमेरिका, जर्मनी तथा इङ्गलैण्ड से आयात होता था।

(iii) **मजदूरी स्तर**—क्रान्ति के बाद विभिन्न क्षेत्रों में मजदूरी समानता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया था पर नवीन आर्थिक नीति में विभेदात्मक वेतनमानों की नीति कार्यान्वित की गई। वेतनमानों का निर्धारण प्रारम्भिक अवस्था में तो श्रमिक संघों की केन्द्रीय सभा (The Central Council of Trade Unions) किया जाता था पर NEP के अन्तिम वर्षों में केन्द्रीय सरकार ने स्वय वेतनमानों का निर्धारण करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय जहां कृषि तथा वन क्षेत्र में नियोजित श्रमिकों की औसत आय (1928 में) क्रमशः 290 रूबल तथा 395 रूबल वार्षिक थी, वहां बैंक, राजकीय कर्मचारियों तथा निर्माण कार्य में सलग्न श्रमिकों की वार्षिक औसत आय 900 से 1000 रूबल थी। सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का औसत

703 रूबल था। यहां यह स्पष्ट था कि कृषि क्षेत्र में श्रमिकों का शोषण हो रहा था और उनकी आय औद्योगिक श्रमिकों की आय की आधी ही थी।

(iv) **श्रमिक संघों का विकास**—यौद्धिक साम्यवाद की अवधि में तो श्रमिकों की स्थिति सैनिकों की सी थी पर नवीन आर्थिक नीति काल में श्रमिक संघों के निर्माण को प्रोत्साहित किया गया। लेनिन न तो श्रमिकों को अत्यधिक स्वतन्त्रता देने तथा न श्रमिक संघों को राजकीय संस्थाओं के रूप में परिणत करना चाहता था। वह चाहता था कि श्रमिक संघ प्रबन्धकों तथा श्रमिकों के बीच एक कड़ी का काम कर श्रमिकों के हितों की रक्षा करते हुए औद्योगिक विकास में सहयोग दें। सदस्यता ऐच्छिक होने पर सामाजिक लाभों तथा रोजगार में वरीयता के कारण 1925 के बाद श्रमिकों का $\frac{2}{3}$ श्रमिक संघों के सदस्य हो गये। 1928 में श्रम संघों की सदस्य संख्या 1·1 करोड़ थी।

(6) **परिवहन तथा सन्देश वाहन**—प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्व यातायात और सन्देश वाहन के साधनों का नितान्त अभाव था। यद्यपि 1917 की क्रान्ति के बाद नवीन आर्थिक नीति के कार्यान्वयन से यातायात तथा सन्देशवाहन के साधनों में वृद्धि के प्रयत्न किये गये। 1917 में रेलवे लाइनों की लम्बाई 63252 किलोमीटर थी, 1928 में बढ़ा कर 76800 किलोमीटर कर दी गई। नियमित रूप से 71600 किलोमीटर में आन्तरिक जल-मार्ग की व्यवस्था थी। सड़क यातायात अधिक पिछड़ा था। 1929 जक समुद्री मार्ग द्वारा केवल 10 विलियन टन किलोमीटर माल तथा 1·5 मिलियन यात्री भेजने की क्षमता थी।

इस तरह 1928 में रेलों द्वारा माल परिवहन क्षमता, 100 विलियन टन किलोमीटर, नदियों द्वारा 16·4 वि. टन किलोमीटर तथा जहाजों द्वारा 10 विलियन टन किलोमीटर क्षमता ही थी।

सन्देशवाहन साधनों का अभाव था। केवल 2·41 लाख स्थानों पर ही नियमित डाक-तार सेवाएं उपलब्ध थीं जो कि राष्ट्र की विशालता को देखते हुए नगण्य थीं।

(7) **मूल्य स्तर में विषमता**—1917 की क्रान्ति के बाद मूल्यों में उतार-चढ़ाव का दौर प्रारम्भ हुआ। 1922 में औद्योगिक उत्पादन का मूल्य कृषि उत्पादन मूल्यों की तुलना में गिर गया। ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक माल की मांग के अभाव में बिक्री संकट था। तदुपरान्त 1923 में अनोखा मोड़ आया और औद्योगिक उत्पादन मूल्य कृषि उत्पादन मूल्यों की तुलना में बहुत बढ़ गये। इस असन्तुलन को कैंची-संकट (Scissors Crisis) की संज्ञा दी जाती है। इस तरह कृषि तथा औद्योगिक मूल्यों में साम्य स्थापित नहीं किया गया। 1924–25 में सामान्य मूल्य स्तर से नीचे खाद्यान्नों का मूल्य निर्धारण करने से अन्न वसूली में कठिनाइयां, पशुओं का वध तथा

अन्त में सरकार ने बाध्य होकर कुलक वर्ग को समाप्त करने का संकल्प किया और सामूहिक कृषि फार्मों को संगठित करने की नीति अपनाई।

निष्कर्ष—इस प्रकार उपर्युक्त आर्थिक पृष्ठ-भूमि में सोवियत नेता स्टालिन ने राष्ट्र के शीघ्र आर्थिक विकास के लिये सुनिश्चित प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रस्तुत की, जिसके क्रियान्वयन के पर्याप्त साधन तथा लोगों के मन में लगन, उत्कण्ठा तथा अभिलाषा थी। 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद नवीन आर्थिक नीति में पूंजीवादी तत्वों के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया खुले रूप में सामने आई उससे समाजवाद के स्वप्न को अल्प काल में ही साकार करने के लिए पूंजीवादी शक्तियों के पूर्ण उन्मूलन तथा निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त को हमेशा के लिये तिलांजलि दे दी गई। सामाजिक पृष्ठ-भूमि भी इसके लिये अनुकूल थी, व्यक्तिगत साहस के स्थान पर श्रमिकों में संगठित हो अपने हितों की रक्षा तथा राष्ट्रीय विकास के लिये त्याग की भावना प्रबल थी। उज्ज्वल भविष्य के लिए वर्तमान त्याग को शून्य समझा जाने लगा। इस तरह प्रथम योजना के पूर्व देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक आधार तैयार हो चुका था।

———————

अध्याय 3

रूस में सामूहीकरण
(Collectivisation in U.S.S.R.)

सैद्धान्तिक दृष्टि से सामूहिक खेत (Collective Farm) कृषकों का एक ऐसा प्रजातांत्रिक तथा सहकारी संघ हैं जिसमें कृषक स्वेच्छा से अपनी भूमि तथा पूंजी को मिला सामूहिक रूप से कृषि करते हैं तथा अपने श्रम के अनुपात में लाभ का वितरण करते हैं। एकीकृत भूमि तथा पूंजी पर इस संघ का सामूहिक स्वामित्व होता है। सामूहिक कृषि की पद्धति छोटे खेतों तथा कम पूंजी की समस्या का समाधान करने के लिये बड़े खेतों में यंत्रीकरण से अधिक कुशल तथा लाभपूर्ण कृषि की दृष्टि से अपनाई गई।

क्रान्ति से पूर्व रूस में बड़े-बड़े ताल्लुकदार थे। दो तिहाई से अधिक भूमि पर उनका स्वामित्व था। किसान वर्ग अधिकांश भूमिहीन थे या उनके पास छोटी २ अनार्थिक जोतें थीं। 1917 की सर्वहारा वर्ग की खूनी-क्रांति मे ताल्लुकदारों की सारी भूमि सरकार द्वारा जप्त करली गई और किसानों को वितरित कर दी गई। पर कृषि की अनार्थिक जोतें, उन्नत कृषि का अभाव तथा बड़े पैमाने की कृषि के अभाव में कृषि पैदावार कम थी। कृषि के इन दोषों को दूर करने के लिये जोतों के आकार में वृद्धि तथा उन्नत विधियों और यंत्रों के प्रयोग की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

आरम्भ में 1920 से 1929 तक लेनिन के सिद्धान्तानुसार कृषकों तथा श्रमिकों में अटूट मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिये शक्ति से काम न लेने आकर्षक पद्धति अपनाई। 1922 में सभी भूमि पर सरकारी स्वामित्व की घोषणा कर दी गई पर 1921 की नवीन आर्थिक नीति के सफल कार्यान्वयन के लिये सोवियत सरकार ने व्यक्तिगत कृषि को भी मान्यता दे दी। 1920 से 1929 की अवधि में प्रयोगात्मक तौर पर तीन प्रकार की सामूहिक खेती प्रचलित थी—

(1) टोज—यह संयुक्त भूमि कृषि (Joint Land Cultivation) की पद्धति थी। यह एक प्रकार से उत्पादक कृषि सहकारी समिति के रूप में थी जिसमें

कृषक भूमि पर खेती करने, मशीनें खरीदने तथा उनके उपयोग के लिये सम्मिलित होते थे पर उसकी भूमि, उपज, पशु तथा औजारों पर व्यक्तिगत स्वामित्व रहता था। उत्पत्ति का वितरण भूमि के अनुपात में करते थे। यह एक तरह से Joint Co-operative Farming का रूप था।

(2) **आर्टेल**—यह वह मध्य-मार्गी पद्धति थी जिसमें अधिकांश उत्पादन तथा उत्पत्ति के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व रहता था। यही पद्धति आगे चल कर Collective Farms (Kolkhozy) का रूप धारण कर सकी। इस पद्धति में कुछ उत्पादन प्रत्येक सदस्य के परिवार को अलग से उत्पादित करने तथा कुछ भूमि, पूंजी, औजार तथा पशुओं पर अलग स्वामित्व रखने की छूट होती है। इस तरह उसे सामूहिक आय के साथ-साथ निजी आय प्राप्ति का भी मौका मिलता है। इसमें समाजवादी कृषि तथा व्यक्तिगत कृषि का सामञ्जस्य बैठता है।

(3) **कम्यून**—यह अन्तिम छोर है जिसमें भूमिहीन कृषक उत्पादन के लिये पूंजी, पशु, यंत्र तथा अन्य भूमि-साधनों के सामूहिक रूप से स्वामी होते हैं तथा सामूहिक रूप से उत्पादन करते हैं, साथ रहते हैं, साथ खाते हैं और साथ काम करके सामूहिक जीवन बिताते हैं। निजी स्वामित्व का नामोनिशान भी नहीं रहता।

सन 1924 तक तो कृषि सहकारिता की प्रगति धीमी रही। उस समय कुछ कृषकों का 10% ही अर्थात् 20 से 30 लाख ही सदस्य थे। 1928 तक यह संख्या 1 करोड़ तक पहुँच गई। पहली तथा तीसरी पद्धति का अपनाना मुश्किल था। अतः 1928–30 में आर्टेल पद्धति के आधार पर कृषि की व्यवस्था की नीति अपनाई गई क्योंकि नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत कृषि में दी गई स्वतंत्रता से पूंजीवादी शक्तियां प्रबल हो समाजवाद के लक्ष्य को धराशायी करने पर तुल गई थीं। स्वयं लेनिन ने इस गलती को महसूस किया तथा उसकी मृत्यु के बाद स्टालिन कृषि-क्षेत्र में सम्पन्न वर्ग (Kulaks) का उन्मूलन कर सामूहिक कृषि को कृषि विकास का आधार बनाना चाहता था। अतः 1928 में प्रथम योजना में कृषि सामूहीकरण से किसान परिवारों का 23% सामूहिक खेतों के रूप में संगठित करने का लक्ष्य था। इन खेतों के अन्तर्गत कृषि-क्षेत्र का 17·5 भाग तथा बिक्री योग्य उत्पादन का 43% का अनुमान लगाया गया था।

प्रथम योजना में सामूहीकरण
(Collectivisation)

प्रथम योजना में सामूहिक खेती (Collective Farming) के अन्दोलन का सूत्रपात बड़े उत्साह से किया गया था। पर कुलक वर्ग का विरोध सामूहीकरण के मार्ग में बाधाएं खड़ी कर रहा था। उसने राज्य पर दबाव डालने के लिये 1928–29

अध्याय 3

रूस में सामूहीकरण
(Collectivisation in U.S.S.R.)

सैद्धान्तिक दृष्टि से सामूहिक खेत (Collective Farm) कृषकों का एक ऐसा प्रजातांत्रिक तथा सहकारी संघ हैं जिसमें कृषक स्वेच्छा से अपनी भूमि तथा पूंजी को मिला सामूहिक रूप से कृषि करते हैं तथा अपने श्रम के अनुपात में लाभ का वितरण करते हैं। एकीकृत भूमि तथा पूंजी पर इस संघ का सामूहिक स्वामित्व होता है। सामूहिक कृषि की पद्धति छोटे खेतों तथा कम पूंजी की समस्या का समाधान करने के लिये बडे खेतों में यंत्रीकरण से अधिक कुशल तथा लाभपूर्ण कृषि की दृष्टि से अपनाई गई।

क्रान्ति से पूर्व रूस में बड़े-बड़े ताल्लुकदार थे। दो तिहाई से अधिक भूमि पर उनका स्वामित्व था। किसान वर्ग अधिकांश भूमिहीन थे या उनके पास छोटी २ अनार्थिक जोतें थीं। 1917 की सर्वहारा वर्ग की खूनी-क्रांति से ताल्लुकदारों की सारी भूमि सरकार द्वारा जप्त करली गई और किसानों को वितरित कर दी गई। पर कृषि की अनार्थिक जोतें, उन्नत कृषि का अभाव तथा बड़े पैमाने की कृषि के अभाव में कृषि पैदावार कम थी। कृषि के इन दोषों को दूर करने के लिये जोतों के आकार में वृद्धि तथा उन्नत विधियों और यंत्रों के प्रयोग की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

आरम्भ में 1920 से 1929 तक लेनिन के सिद्धान्तानुसार कृषकों तथा श्रमिकों में अटूट मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिये शक्ति से काम न लेने आकर्षक पद्धति अपनाई। 1922 में सभी भूमि पर सरकारी स्वामित्व की घोषणा कर दी गई पर 1921 की नवीन आर्थिक नीति के सफल कार्यान्वियन के लिये सोवियत सरकार ने व्यक्तिगत कृषि को भी मान्यता दे दी। 1920 से 1929 की अवधि में प्रयोगात्मक तोर पर तीन प्रकार की सामूहिक खेती प्रचलित थी—

(1) **टोज**—यह संयुक्त भूमि कृषि (Joint Land Cultivation) की पद्धति थी। यह एक प्रकार से उत्पादक कृषि सहकारी समिति के रूप में थी जिसमें

कृषक भूमि पर खेती करने, मशीनें खरीदने तथा उनके उपयोग के लिये सम्मिलित होते थे पर उसकी भूमि, उपज, पशु तथा औजारों पर व्यक्तिगत स्वामित्व रहता था। उत्पत्ति का वितरण भूमि के अनुपात में करते थे। यह एक तरह से Joint Co-operative Farming का रूप था।

(2) **आर्टेल**—यह वह मध्य-मार्गी पद्धति थी जिसमें अधिकांश उत्पादन तथा उत्पत्ति के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व रहता था। यही पद्धति आगे चल कर Collective Farms (Kolkhozy) का रूप धारण कर सकी। इस पद्धति में कुछ उत्पादन प्रत्येक सदस्य के परिवार को अलग से उत्पादित करने तथा कुछ भूमि, पूंजी, औजार तथा पशुओं पर अलग स्वामित्व रखने की छूट होती है। इस तरह उसे सामूहिक आय के साथ-साथ निजी आय प्राप्ति का भी मौका मिलता है। इसमें समाजवादी कृषि तथा व्यक्तिगत कृषि का सामञ्जस्य बैठता है।

(3) **कम्यून**—यह अन्तिम छोर है जिसमें भूमिहीन कृषक उत्पादन के लिये पूंजी, पशु, यंत्र तथा अन्य भूमि-साधनों के सामूहिक रूप से स्वामी होते हैं तथा सामूहिक रूप से उत्पादन करते हैं, साथ रहते हैं, साथ खाते हैं और साथ काम करके सामूहिक जीवन बिताते हैं। निजी स्वामित्व का नामोनिशान भी नहीं रहता।

सन 1924 तक तो कृषि सहकारिता की प्रगति धीमी रही। उस समय कुछ कृषकों का 10% ही अर्थात् 20 से 30 लाख ही सदस्य थे। 1928 तक यह संख्या 1 करोड़ तक पहुँच गई। पहली तथा तीसरी पद्धति का अपनाना मुश्किल था। अतः 1928–30 में आर्टेल पद्धति के आधार पर कृषि की व्यवस्था की नीति अपनाई गई क्योंकि नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत कृषि में दी गई स्वतंत्रता से पूंजीवादी शक्तियां प्रबल हो समाजवाद के लक्ष्य को धराशायी करने पर तुल गई थीं। स्वयं लेनिन ने इस गलती को महसूस किया तथा उसकी मृत्यु के बाद स्टालिन कृषि-क्षेत्र में सम्पन्न वर्ग (Kulaks) का उन्मूलन कर सामूहिक कृषि को कृषि विकास का आधार बनाना चाहता था। अतः 1928 में प्रथम योजना में कृषि सामूहीकरण से किसान परिवारों का 23% सामूहिक खेतों के रूप में संगठित करने का लक्ष्य था। इन खेतों के अन्तर्गत कृषि-क्षेत्र का 17·5 भाग तथा बिक्री योग्य उत्पादन का 43% का अनुमान लगाया गया था।

प्रथम योजना में सामूहीकरण
(Collectivisation)

प्रथम योजना में सामूहिक खेती (Collective Farming) के अन्दोलन का सूत्रपात बड़े उत्साह से किया गया था। पर कुलक वर्ग का विरोध सामूहीकरण के मार्ग में बाधाएं खड़ी कर रहा था। उसने राज्य पर दबाव डालने के लिये 1928–29

में बुआई कम की। इससे कृषि उत्पादन कम हुआ जबकि औद्योगिक उत्पादन तेजी से बढ़ रहा था। उच्चवर्गीय किसानों के प्रतिरोध को समाप्त करने के लिये कड़ाई बरतने तथा बड़े पैमाने पर सामूहीकरण का निश्चय किया गया। 1929 में कुलक वर्ग की शोषण पद्धति के नियंत्रण के स्थान पर उस वर्ग के उन्मूलन की नीति अपनाई। अब केवल 17·5% क्षेत्र पर ही सामूहीकरण का लक्ष्य नहीं था, पर अब तो अधिकांश भू-भाग पर सामूहीकरण का ध्येय था।

प्रारम्भिक काल में राज्य द्वारा दी गई सुविधाओं का लाभ उठाने के लिये साधन-हीन किसानों ने सामूहिक खेती स्वीकार करली। जहां 1 नवम्वर 1927 में सामूहिक खेतों की संख्या लगभग 15 हजार थी, जून 1929 में बढ़कर 57 हजार हो गई।

1929 के बाद में सामूहिक कृषि-क्षेत्र में प्रगति अप्रत्याशित ढ़ंग से हुई। बडे पैमाने पर सामूहीकरण तथा कुलक वर्ग का वर्ग के रूप में उन्मूलन करने की दृष्टि से निर्धन किसानों तथा स्थानीय अधिकारियों ने कानून अपने हाथ में लेकर कुलकों व उनकी सम्पत्ति के नाश से हत्याओं, लूट-पाट तथा अग्नि-काण्डों का बोल-बाला हो गया। यद्यपि उच्च सत्ता ने जबरदस्ती सामूहीकरण को त्याज्य बताया था।

राज्य की इस प्रकार की नीति, किसानों की जबरदस्ती तथा स्थानीय अधिकारियों की मनमानी से सामूहीकरण में आश्चर्यजनक प्रगति हुई—

सामूहीकरण की प्रगति

विवरण	20 जनवरी 1930	1 फरवरी 1930	10 फरवरी 1930	20 फरवरी 1930	1 मार्च 1930
सामूहिक खेतों की संख्या (हजारों में)	59·4	87·5	103·7	108·8	110·2
सम्मिलित परिवार (लाख)	43·93	80·15	109·35	136·75	142·64
कुल परिवारों का प्रतिशत	21·6	32·5	42·4	52·7	55·0

जहां 1929 में सामूहिक खेतों की संख्या 57 हजार थी वह 1930 के मार्च में बढ़ कर 110 हजार हो गई तथा सम्मिलित परिवारों की संख्या 43·9 लाख से बढ कर केवल $1\frac{1}{2}$ महिने में ही 142·6 लाख हो गई। कुल परिवारों का प्रतिशत 20 जनवरी 1930 में केवल 21·6 से बढ़कर केवल डेढ़ माह में 55% हो गया।

1928 में सामूहिक कृषि के अन्तर्गत केवल 13·9 लाख हेक्टर जमीन जोती गई थी 1930 में यह क्षेत्र बढ़ कर 150 लाख हेक्टर हो गया ।

सामूहीकरण में जोर जबर-दस्ती, हत्याओं, लूट-पाट तथा आगजनी की घटनाओं से कुलक वर्ग का विरोध अर्थ-व्यवस्था में विनाश का कारण बना । कुलकों तथा मध्यम वर्ग के किसानों ने पशुओं को सामूहिक फार्मों में देने की बनिस्पत उन्हें मार डालना अधिक उपयुक्त समझा और बड़े पैमाने पर पशु संहार हुआ । इस संहार का अनुमान इस तथ्य से लगता है कि 1939 में 1929 के मुकाबले गाय बैलों की संख्या में 33% कमी, बकरियों की संख्या में 50% की कमी और घोड़ों की संख्या में 25% की कमी हो गई थी । यह क्षति बढ़ने के दो सहायक कारण सामूहिक खेतों में पशुओं की ठीक देख-भाल न हो पाना तथा पशुओं के लिये आहार की कमी होने से बहुत से पशु मर गये । यह क्षति 1939 तक भी पूरी न हो सकी ।

इस पशु-वध का दुष्प्रभाव यह हुआ कि एक ओर कृषि-कार्यों में पशु-शक्ति की कमी तथा दूसरी ओर मांस, चमड़े तथा दूध के उत्पादन में कमी से कृषि के लक्ष्य पूरे न हो सके । कृषि उत्पादन में कमी हुई ।

स्टालिन ने यह महसूस किया कि जबर-दस्ती सामूहीकरण से अर्थ-व्यवस्था को अपार क्षति उठानी पड़ेगी । अतः कृषक वर्गों में फैले असन्तोष व प्रतिक्रिया को देख सामूहीकरण के नियमों को ढ़ीला किया पर बाधित सामूहीकरण को त्याज्य मानने से तथा नियमों में ढ़िलाई देने से काफी किसान सामूहिक खेती से अलग हो गये । सामूहिक खेतों की संख्या 1 मार्च 1930 में 110 हजार से घट कर 1 मई, 1930 में 82·3 हजार ही रह गई तथा सम्मिलित परिवारों की संख्या 142·6 लाख से घट कर 57 8 लाख रह गई । इस तरह थोड़ी सी ढ़ील से कृषक परिवारों का जो 55% भाग सामूहिक खेती की परिधि में आ गया था केवल दो महिनों में ही घट कर 24·1% ही रह गया जो कि लक्ष्य के अनुरूप ही था ।

बाधित सामूहीकरण को त्याज्य मानने तथा नियमों में ढ़ील के परिणामों से स्थिति को बिगड़ते देख सरकार ने पुनः उनकी प्रगति को मजबूत करने के लिये तथा सामूहीकरण को प्रोत्साहन देने के लिये सामूहिक खेतों को पूर्णतः साम्यवादी सिद्धान्तों पर संचालित न कर सुविधाएं प्रदान की । जिनमें अधिक व सुविधापूर्ण साख, अल्प वस्तुओं की पूर्ति, पशु-कर में छूट, अतिरिक्त उत्पादन को बाजार में बेचने की छूट तथा सदस्यों को सीमित मात्रा में निजी भूमि तथा पशु रखने की स्वतंत्रता से सामूहीकरण को पुनः बल मिला । परिणामस्वरूप 1932 में सामूहिक खेतों में सम्मिलित परिवारों की संख्या 140 लाख हो गई जो कि कुल कृषक परिवारों का लगभग 60% था । सामूहिक खेतों की संख्या 2 लाख थी और उनके अन्तर्गत बोई गई भूमि का 75% भाग था ।

प्रथम योजना में कृषि के सामूहीकरण के प्रभाव
(Effects of Collectivisation of Agriculture in 1st Five Year Plan)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 1928 से 1932 की अवधि में सामूहीकरण के कारण अर्थ-व्यवस्था पर निम्न मुख्य प्रभाव पड़े—

(1) **कुलक वर्ग की समाप्ति**—बाधित सामूहीकरण, किसानों के द्वारा निर्मम अत्याचार तथा स्थानीय अधिकारियों की मनमानी से कुलकों को सामूहिक खेतों में सम्मिलित होना पड़ा। जहां 1928 में कुलकों की संख्या 50 लाख थी घट कर 1934 में सिर्फ 15 लाख ही रह गई।

(2) **पशुधन में भारी क्षति**—कुलक वर्ग तथा उनको समर्थन देने वाले मध्यम वर्ग के किसानों ने अपने पशुओं को सामूहिक तथा सरकारी खेतों के लिये देने की अपेक्षा उनको मारना अधिक उपयुक्त समझा जिससे सरकार को कठिनाई सामने आये। बड़े पैमाने पर पशु-वध से 1931 में 1929 के मुकाबले गाय बैलों की संख्या में एक तिहाई, भेड़ बकरियों की संख्या में आधी तथा घोड़ों की संख्या में एक चौथाई कमी हो गई। पशु-वध के अलावा पशुधन में कमी का कारण सामूहिक खेतों में अपर्याप्त देख-भाल तथा आहार के अभाव में पशुओं की अकाल मृत्यु भी था। इस कमी की पूर्ति रूस अगले दस वर्षों में भी पूरा न कर सका।

(3) **मांस, दूध तथा पशु-शक्ति का अभाव**—पशुधन की क्षति का दुहरा प्रभाव पड़ा। एक ओर मांस और दूध की पूर्ति में कमी हो गई तो दूसरी ओर कृषि-कार्यों के लिये पशु-शक्ति का मिलना मुश्किल हो गया। यद्यपि ट्रैक्टरों का उत्पादन 6-7 गुना बढ़ गया था फिर भी पशु-शक्ति के बिना कृषि उत्पादन में बाधा पड़ी।

(4) **कृषि उत्पादन में कमी**—सामूहीकरण की तीव्र गति तथा प्रशासन की स्वेच्छाचारिता से 1931 में अच्छे मौसम के बावजूद पशुशक्ति की कमी, कुलकों द्वारा बोये गये क्षेत्र में अत्यधिक कमी से कुल कृषि उत्पादन 1929 में 14·7 बिलियन रूबल से घट कर 1932 में 13·1 बिलियन रूबल रह गया। 1931 और 1932 में सूखा पड़ने से भी उत्पादन में कमी स्वाभाविक थी। यह कमी 1933 तक चलती रही। खाद्यान्न का उत्पादन 1928 में 7·33 करोड़ टन से घटकर 1932 में 6·99 करोड़ टन ही रह गया।

(5) **बड़े खेतों का निर्माण तथा बड़े पैमाने का संगठन**—सामूहीकरण से रूस में लगभग 2·5 करोड़ छोटे खेतों को मिला कर 2 लाख सामूहिक खेतों में परिवर्तित कर दिया। इसमें कृषक परिवारों का 60% भाग तथा कृषि योग्य भूमि का 75% भाग आ जाने से यंत्रीकरण कर उत्पादन में भावी वृद्धि का मार्ग खुल गया।

(6) पूंजीवाद का आधार "व्यक्तिगत सम्पत्ति" का समापन—सामूहीकरण से कुलकों का उन्मूलन कर भूमि में निजी सम्पत्ति का सिद्धान्त समाप्त कर दिया। स्टालिन के शब्दों में–"सभी देशों के पूंजीवाद सोवियत संघ में पूंजीवाद को पुनः प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देख रहे थे। उनकी अन्तिम आशा पर पानी फिर रहा है और वह नष्ट हो रही है। जिन किसानों को वे पूंजीवादी जमीन के लिये खाद समझते थे, वे सामूहिक रूप से "व्यक्तिगत सम्पत्ति" की प्रशस्ति पताका छोड़ कर सामूहिक खेती और समाजवाद के मार्ग को अपना रहे हैं। पूंजीवाद को रूस में प्रतिष्ठित करने की अन्तिम आशा क्षीण हो रही है।"

1932 से 1945 तक सामूहीकरण की प्रगति
(Progress of Collectivisation from 1932 to 1945)

प्रथम योजना काल में सामूहीकरण की प्रगति से द्वितीय योजना में भी उनकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ। सामूहिक कृषि के विस्तार के स्थान पर उनके प्रावैधिक आधार को मजबूत करने की चेष्टा की गई। फार्मों को प्रावैधिक सुविधाएं प्रदान की गई। ट्रैक्टरों की संख्या में वृद्धि की गई। अनेक अनुसंधान केन्द्र खोले गये। सामूहिक फार्मों में संगठनात्मक सुधार लागू किये गये। इन फार्मों की संरचना तथा संगठन में यथा संभव एकरूपता लाने तथा किसानों में सामूहिक खेतों की कार्यविधि के बारे में मार्गदर्शन की दृष्टि से 1935 में Model Rules of Agricultural Artel (Kholkhoz Charter) बनाया गया। इसके अलावा सामूहिक खेती को प्रोत्साहित करने के लिये व्यक्तिगत फार्मों पर करों की दर में वृद्धि की गई। कृषि मूल्यों में अनिश्चितता से बचने के लिये सामूहिक फार्मों को उद्योगों से "अग्रिम अनुबन्ध" (Forward contracts) की व्यवस्था लागू की तथा अतिरिक्त उपज को खुले बाजार में बेचने की सुविधा थी।

इस तरह सामूहीकरण के प्रयासों में 1937 तक प्रायः 93% किसान परिवार सामूहिक खेतों के अन्तर्गत आ गये तथा वे अन्न उत्पादन का 99% भाग उत्पादन करते थे। रूसी कुलक तथा किसान मिल कर जितने गल्ले का विपणन करते थे, उससे 40 करोड़ पुड़ अधिक गल्ले का विपणन 1937 में केवल सामूहिक खेतों में उत्पादित गल्ले से होता था।

इसके बाद तृतीय योजना 1938 में प्रारम्भ हुई। पर तीन वर्ष के बाद ही हिटलर के बर्बरता पूर्ण आक्रमण से रूस में तृतीय योजना को बीच में ही स्थगित कर दिया गया। 1940 में 192 लाख कृषक परिवार सामूहीकरण की परिधि में आ चुके थे। चूंकि 1939 से ही द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। अतः रूस को अपनी सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने तथा स्थिति का मुकाबला करने के लिये यातायात, रासायनिक, अलोह धातुओं तथा विशिष्ट फौलाद सम्बन्धित उद्योगों को

अधिक महत्व दिया गया था। अतः "सब कुछ मोर्चे के लिये" (All for front) का नारा बुलन्द था। युद्ध का रूसी कृषि पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। उनके उपकरण तथा मशीनें नष्ट हो गये या मरम्मत के अभाव में काम में आने योग्य नहीं रहे। सोवियत संघ के आठ लाख वर्ग मील क्षेत्र में युद्ध होने के कारण 98000 सामूहिक खेतों, 2900 मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों, 1·37 लाख ट्रैक्टरों तथा 49 हजार कम्बाइन हार्वेस्टरों का नुकसान हुआ। कृषि का औसत उत्पादन 10 करोड़ टन से घट कर ५–७ करोड़ टन के लगभग रह गया।

युद्धोत्तर काल में सामूहीकरण की बदलती संरचना
(Changing Pattern of Collectivisation in Post-War Period)

द्वितीय विश्व-युद्ध में युद्ध जर्जरित अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण में कृषि विकास को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। 1947 में सामूहिक फार्मों की संख्या 2·12 लाख थी पर 1948 तथा 1949 में बाल्टिक स्टेट्स, पूर्वी पोलैंड, युकरैन तथा अन्य क्षेत्रों में तेजी से सामूहीकरण के कारण 32 हजार सामूहिक फार्मों की वृद्धि हो गई तथा 1950 में सामूहिक फार्मों की संख्या 2 54 लाख थी। 1948 से 1949 में सामूहीकरण की प्रगति का एक ज्वलंत उदाहरण Estonia है जिसमें अप्रैल 1948 में सिर्फ 47 सामूहिक खेत थे। उनकी संख्या बढ़ कर नवम्बर 1949 में 3000 हो गई। जहां 1930 के वर्षों में सरकार के द्वारा वाध्य करने पर भी सामूहिक खेतों की संख्या इतनी तेजी से नहीं बढ़ी जबकि अब बिना किसी दवाव के बढ़ रही थी। इस तरह 1950 में सामूहिक खेतों की संख्या 2·54 लाख थी। जिनके अन्तर्गत कुल बोये गये क्षेत्र का 90% भाग था तथा कुल कृषि उत्पादन का लगभग 85% भाग उत्पादन कर रहे थे।

एकीकरण
(Amalgamation)

1950 के पहले विभिन्न सामूहिक खेतों के आकार में असमानता इतनी अधिक थी कि केवल 20% सामूहिक खेतों के पास तो कृषि योग्य भूमि का 60% भाग था जबकि 30% सामूहिक खेतों के पास कृषि योग्य भूमि का सिर्फ 6% भाग ही था।। 1940 में 72000 सामूहिक खेत ऐसे थे जिनके पास 500 एकड़ कृषि-योग्य भूमि प्रति फार्म से अधिक नहीं थी। ऐसे सामूहिक खेत उत्तर-पश्चिम तथा उत्तरी भागों में थे। इनमें से सिर्फ आधों को मशीन ट्रैक्टर स्टेशनस् (MTS) की सेवाएं उपलब्ध थीं। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है—

1939 में कृषि-योग्य भूमि के आकार के आधार पर सामूहिक खेतों का विवरण

(Distribution of Soviet Collective Farms in 1939 by size of Arable Land)

क्षेत्रफल (हेक्टर में)	कुल सामूहिक खेतों का प्रतिशत	कुल कृषि-योग्य भूमि का प्रतिशत
50 या 50 से कम	3·2	0·6
51–100	8·8	1·0
101–200	18·4	4·1
201–500	29 6	14·5
501–1000	20·0	21·2
1001–1500	9·3	16 8
1501–3000	8·1	24·4
3000 से ऊपर	2·6	17·4
कुल	100	100

Source—Voprosy Economiki No. 5 (1950, p. 48.

इन सामूहिक खेतों के आकार की विषमता को समाप्त करने तथा छोटे खेतों को बडे फ़ार्मों में एकीकरण का आन्दोलन सरकार तथा साम्यवादी दल द्वारा चलाया गया। छोटे सामूहिक फार्मों पर ऐच्छिक एकीकरण के लिये भारी दबाव डाला गया। परिणामस्वरूप मास्को में सामूहिक खेतों (Kolkhozy) की संख्या 1950 के आरम्भ में 6069 से घटकर जून 1950 में सिर्फ 1668 ही रह गई। लेनिनग्राड प्रान्त में 1950 के चार महीनों में ही 2000 फार्मों को मिला कर 600 फार्मों में परिवर्तित कर दिये। इसी तरह बेलोरूस, नोवगरोड़ में भी तेजी से एकीकरण हुआ। अन्य क्षेत्रों में भी सरकारी आज्ञा से एकीकरण किया गया। इस एकीकरण के निम्न कारण थे—

(1) कृषि यंत्रों के मितव्ययतापूर्ण उपयोग तथा कुशलता में वृद्धि।

(2) प्रशासनिक व्यय में बचत।

(3) अधिक पूंजी विनियोग क्षमता से कुशल विशिष्टिकरण सम्भव होना।

(4) सरकार तथा साम्यवादी दल का सामूहिक खेतों पर नियंत्रण में सुदृढ़ता।

सामूहिक खेतों के एकीकरण (Amalgamation) की प्रगति तीव्र रही। जहां 1950 में सामूहिक खेतों की संख्या 2·54 लाख थी 1951 में घट कर 1·23 लाख, अक्टूबर 1952 में 97 हजार तथा सितम्बर 1953 में केवल 94 हजार ही रह गई। यह कमी यह स्पष्ट करती है कि न केवल छोटे-छोटे सामूहिक फार्मों का एकीकरण किया बल्कि मध्यम श्रेणी के सामूहिक फार्मों का भी एकीकरण हुआ तथा उन्हें Super collectives में परिवर्तित कर दिया। 1953 में ख्रुश्चेव ने बताया कि एकीकरण से प्रत्येक सामूहिक खेत के पास कृषि-योग्य भूमि 1500 एकड़ से बढ़ कर लगभग 4200 एकड़ हो गई। दूसरे शब्दों में 589 हेक्टर से बढ़ कर 1693 हेक्टर हो गई। इस तीव्रगामी परिवर्तन से सामूहिक खेतों के प्रशासन की समस्याएं अधिक जटिल हो गईं क्योंकि अब इन खेतों के आकार में वृद्धि तथा अधिक कृषकों के इसकी परिधि में आ जाने से समन्वय अधिक कठिन हो गया। इन खेतों के लिये अधिक प्रशिक्षित एवं योग्य कर्मचारियों की आवश्यकता महसूस हुई तथा सामूहिक खेतों के अध्यक्ष-पद पर कृषकों के स्थान पर तकनीशियन्स को नियुक्त करने के लिये आन्दोलन चला। पर इसके लागू होने के तीन सालों में इसकी विफलता स्पष्ट हो गई जिसको ख्रुश्चेव के शब्दों में "केवल 16600 सामूहिक फार्मों के अध्यक्ष ही विश्वविद्यालयीय तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे बाकी पर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे"

इस तरह एकीकरण के उद्देश्यों में सफलता प्राप्त न हो सकी।

फार्म सीटीज का निर्माण प्रस्ताव—एकीकरण के साथ-साथ 1950 के प्रारम्भिक वर्षों में ख्रुश्चेव ने सामूहिक खेतों में कार्य करने वाले कृषकों को जो विभिन्न गांवों में बिखरे थे, उनके रहने के लिये एक केन्द्रीय स्थान Farm Cities (Agro-gorods) बनाने का प्रस्ताव किया जिसमें एक सामूहिक खेत के सभी कृषकों के एक स्थान पर होने से अधिक कुशलता तथा अधिक सुविधाएं (नल-बिजली तथा शहरी सुविधाएं) जुटाना सम्भव होगा।

निजी व्यक्तिगत छोटे गार्डन्स को एक जगह रखना—यह दूसरा प्रस्ताव भी ख्रुश्चेव का सनसनीखेज प्रस्ताव था। क्योंकि ख्रुश्चेव सामूहिक खेतों में कार्य करने वाले किसानों के उन व्यक्तिगत गार्डन्स को जो उनके रहने के मकानों के ठीक पीछे होते थे, हटाकर उन सब किसानों को एक स्थान पर उनके निजी खेतों की व्यवस्था करना चाहता था जिससे सामूहिक खेतों में काम की चोरी कर स्वयं के खेत पर काम करने की प्रवृत्ति को रोका जा सके तथा स्थानीय अधिकारियों द्वारा उसका पता लगाया जा सके।

इन दोनों प्रस्तावों का किसानों द्वारा विरोध हुआ। अतः अक्टूबर 1952 की 19वीं साम्यवादी पार्टी कांग्रेस में उन्हें अस्वीकृत कर दिया। मेलनकोव (Malenkov) ने भी इन प्रस्तावों की आलोचना की। रूस की छठी योजना जो 1956 से 1958 तक चली सामूहिक खेतों में अधिक मशीनी यंत्रों की पूर्ति करने में रही।

सातवीं योजना में सामूहीकरण

1958 में सामूहिक कृषि फार्मों का पुनर्संगठन किया गया। छोटी-छोटी इकाइयों को बड़ी इकाइयों में मिला दिया गया। अनेक मशीन ट्रेक्टर स्टेशनों को समाप्त कर उनकी मशीनें एवं उपकरण सामूहिक फार्मों को दे दिये गये। सप्तम पंचवर्षीय योजना (1958–65) में सामूहिक तथा राजकीय फार्मों (Kolkhoz तथा Sovkhoz) में एकरूपता लाने का प्रयत्न किया गया तथा इस योजना को कई रूपों में व्यावहारिक रूप देने की कोशिश की गई—जैसे सामूहिक फार्म पद्धति की उन्नति, उनकी सम्पत्ति में वृद्धि, उनके अविभाजनीय कोष का उपयोग—बिजलीघर, नहरें, स्कूल, अस्पताल, अनाज भंडार आदि कार्यों में करने की अनुमति दी गई।

इस योजना में सामूहिक खेतों के राजकीय फार्मों में विलयन (Merger) को प्रोत्साहन दिया गया क्योंकि ज्यों-ज्यों सामूहिक फार्म अधिक विकसित वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित होते गये उनकी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति सार्वजनिक कोष से की गई और वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व खोकर राष्ट्रीय सम्पत्ति में विलीन हो गये। इस तरह इस योजना में सामूहीकरण के सम्बन्ध में प्रभावी कदम उठाये गये।

विभिन्न प्रयत्नों से एकीकरण से सामूहिक खेतों की संख्या जो 1952 में 94 हजार थी, 1958 में घट कर 67700 तथा 1965 में 36600 ही रह गई।

आठवीं योजना (1966–1970)

इस योजना में भी सामूहिक खेतों के राजकीय फार्मों में विलीनीकरण तथा छोटे-छोटे सामूहिक फार्मों के एकीकरण का दौर जारी रहेगा। उनको अधिक मशीनों तथा यंत्रों व वैज्ञानिक पद्धतियों से सुसज्जित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। 1965 में सामूहिक खेतों की संख्या 36600 से एकीकरण तथा विलीनीकरण से 1969 में घट कर 25000 रह जाने का अनुमान है। अब तक लगभग सभी कृषक परिवार सामूहिक खेतों के अन्तर्गत आ गये हैं और उनके पास 34·5 करोड़ कृषि योग्य भूमि है।

सामूहीकरण की प्रगति

वर्ष	सामूहिक खेतों की संख्या (हजारों में)	सामूहिक खेतों में कुल कृषक परिवारों का प्रतिशत	सामूहिक खेतों में कुल कृषि-योग्य भूमि का प्रतिशत	विशेष विवरण
1927	15	10	4	
1929	57	21·6	20	
मार्च 1930	110	55	37	बाधित सामूहीकरण
मई 1930	82·6	24·1	30	सामूहीकरण में ढ़ील से सामूहिक खेतों से वापसी ।
1932	200	60	75	
1938	242	70	93	
1950	254	85	95	
1952	94	95	95	एकीकरण से संख्या में कमी तथा राजकीय फार्मों में विलीनीकरण ।
1958	67·7	95	95	
1965	36·6	सभी	95	
1969	25·0	सभी	95	

(यह तालिका विभिन्न आंकड़ों के संकलन से तैयार की गई है ।)

सामूहिक खेतों का स्वरूप एवं संगठन
(Structure and Organisation of Collective Farms)

सामूहीकरण के क्रमिक विकास से रूस में कृषि-क्षेत्र में क्रान्ति का दिग्दर्शन उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है । इन सामूहिक खेतों को रूस में Kolkhozy तथा सामूहिक खेत को एक वचन में Kolkhoz कहा जाता है । इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

संरचना

कोलखोज अर्थात् सामूहिक खेत (Collective Farm) किसानों का एक संगठन है जिसमें वे अपनी भूमि, पशु, उपकरण तथा पूंजी को सदा के लिए समुचित (Pool) कर संयुक्त उपयोग से सामूहिक उत्पत्ति करते हैं । कोई सदस्य कोलखोज से अलग हो सकता है परन्तु उसको उसके द्वारा दी गई भूमि नहीं लौटाई जा सकती, केवल मूल्य चुकाया जा सकता है । कोलखोज की इस एकत्रित सम्पत्ति पर सबका

सामूहिक स्वामित्व रहता है और उसका सामूहिक हितों में ही उपयोग किया जाता है। वैसे सिद्धान्त में ये संगठन प्रजातान्त्रिक तथा सहकारी कहे जाते हैं पर व्यवहार में इनका संचालन पूर्ण साम्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित है। प्रारम्भ में निजी सम्पत्ति तथा निजी स्वामित्व को कोई स्थान नहीं था पर 1935 के कोलखोज चार्टर में सामूहिक खेतों में सम्मिलित होने वाले किसानों को कुछ निजी सम्पत्ति का अधिकार दिया। इनके सदस्यों को ¼ एकड़ से 2½ एकड़ तक क्षेत्र शाकोद्यान (Kitchen gardens) के लिए तथा कुछ पशु, उपकरण आदि भी निजी सम्पत्ति रखने की अनुमति दी गई। इस तरह किसानों को निजी आय (Private income) के साथ-साथ सामूहिक आय (Collective income) में हिस्सा मिलता है।

आकार

एक कोलखोज में कृषक परिवारों तथा भूमि क्षेत्र के सम्वन्ध में विभिन्न हैं। कुछ क्षेत्रों में कोलखोज छोटे हैं तो कुछ में वहुत वड़े। 1950 के वाद से एकीकरण की प्रवृत्ति से उनके आकार में तीव्र वृद्धि हुई है। औसतन एक कोलखोज में पहले 1600 से 2000 एकड़ भूमि होती थी पर अब 5000 से 50000 एकड़ भूमि होती है। कृषक परिवारों की सख्या 50 से 1000 होती है।

कोलखोज चार्टर

प्रत्येक कोलखोज का अपना एक संविधान होता है जिसमें संगठन की संरचना, सामूहिक खेतों के कृषकों की जिम्मेदारी, प्रवन्ध, लाभांश आदि के वारे में प्रावधान होते हैं। आजकल सामूहिक फार्मों में संविधान 1935 के नियमों पर आधारित हैं या वाद में किए गए संशोधनों को सम्मिलित कर लिया गया है।

कोलखोज के उत्पत्ति के साधन

प्रत्येक कोलखोज के पास अपने उपक्रम में उत्पत्ति, कार्य के लिए वड़ी मशीनों के अलावा सभी साधन स्वयं के होते हैं जिसमें पशु, साधारण उपकरण, फार्म भवन, बीज, पशुओं के लिए आहार, आटा मिलें तथा अन्य प्रोसेसिंग मशीनें हैं। प्रत्येक कोलखोजनीकी (Collective Farmer) अपने स्वयं के साधन अलग रख सकते हैं पर निश्चित सीमा से अधिक नहीं।

कोलखोज का उत्पादन कार्य

प्रत्येक कोलखोज को वार्षिक कार्यशील योजना, जो समूचे देश के लिए लागू की गई है, के अनुसार कार्य करना होता है। कोलखोज सम्पत्ति का संरक्षण, अधिकतम उत्पादन तथा साधनों का सर्वोत्तम उपयोग करना अनिवार्य है। प्रत्येक कोलखोज को अपने सदस्यों की तकनीकी दक्षता में वृद्धि करने तथा उनको सभी प्रकार की सुविधाएँ देने की जिम्मेदारी होती है।

प्रबन्ध

कोलखोज का प्रबन्ध संविधान के अनुसार सामूहिक खेत की साधारण सभा के निर्णयों अनुसार होता है। यह कोलखोज में सर्वोच्च अधिकारिणी सत्ता है। यह सब अधिकारियों का चुनाव करती है, नए सदस्यों की स्वीकृति देती है तथा सदस्यों के निष्कासन की आज्ञा देती है। यह प्रशासन अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए बजट, योजना, मूल-पत्र तथा निर्णयों को सामान्य स्वीकृति देती है। इससे नीचे प्रबन्ध समिति (Management Committee) होती है जिसमें 5 से 9 सदस्य साधारण सभा द्वारा निर्वाचित होते हैं। सर्वोच्च अधिकारी कोलखोज का अध्यक्ष (Chairman) होता है जो सैद्धान्तिक दृष्टि से साधारण सभा द्वारा चुना जाता है। कोलखोज का सारा कार्य इसके सदस्यों द्वारा ही किया जाता है पर आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग भुगतान पर किया जाता है।

कोलखोज में श्रम संगठन

कोलखोज में श्रमिकों का संगठन उसके सदस्यों को ब्रिगेड्स (Brigades) में बांट कर किया जाता है। प्रत्येक ब्रिगेड में 50 से 100 सदस्य होते हैं और उन्हें 3 या 3 वर्ष से अधिक उसी ब्रिगेड के कार्यों के अनुसार काम करना होता है और प्रत्येक ब्रिगेड को अपने कार्य सम्पादन के लिए आवश्यक पशु, मशीन तथा अन्य उपकरण दे दिए जाते हैं। कभी-कभी इन ब्रिगेड्स को उप-विभाग (Squads) में बांट दिया जाता है जिसे Zveno or link कहा जाता है। इसमें 12 से 15 सदस्य होते हैं। सदस्यों की कार्यक्षमता में वृद्धि तथा अधिकतम उत्पादन सम्भव बनाने के लिए सरकार ने कोलखोज में सदस्यता में परिवर्तन को हतोत्साहित किया जाता है। इस प्रत्येक ब्रिगेड में एक नेता होता है जो निर्धारित कार्य को पूरा करने में ब्रिगेड का संचालन करता है और काम न करने वाले तथा कार्य की अवहेलना करने वालों को दण्डित किया जाता है।

कोलखोज में मजदूरी की गणना तथा भुगतान

कोलखोज पर श्रमिक के कार्य की गणना मनमाने ढंग से निर्धारित कार्य-दिवस (Work-day) के आधार पर की जाती है। इसमें कार्य की मात्रा और गुण को भी ध्यान में रखा जाता है। 1948 से रूस सरकार के द्वारा किये गए सुधार से अब 9 प्रकार की विभिन्न कार्य-दिवस दरें हैं। दक्ष-श्रम की दशा में कम कार्य घण्टों का एक दिवस माना जाता है। प्रत्येक ब्रिगेड का नेता श्रमिकों के द्वारा किये गए कार्य का विवरण रखता है। 1953 तक प्रत्येक कोलखोज में सम्मिलित परिवार का ़े नाना (Remuneration) साल में एक बार दिया जाता था, पर 1956 में चुकाने की पद्धति में परिवर्तन करने से लगभग 70 प्रतिशत कोलखोज

मासिक तथा त्रैमासिक भुगतान करने लग गये। 1957 में इसमें पुनः परिवर्तन कर अधिक सुविधापूर्ण बना दिया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक सामूहिक कृषक को निश्चित मासिक अग्रिम दिया जाने लगा और बाकी का भुगतान वर्ष के अन्त में कार्य-दिवसानुसार किया जाने लगा। अब लगभग 80 प्रतिशत कोलखोज मासिक तथा त्रैमासिक अग्रिम के रूप में पारिश्रमिक चुकाते हैं तथा उत्पादन में प्रोत्साहन देने के लिए बोनस तथा अतिरिक्त लाभ भी दिये जाने की व्यवस्था लागू की गई है।

कोलखोज के उत्पादन का वितरण (Distribution of Production)

कोलखोज में उत्पादन के वितरण के सम्बन्ध में सरकार के निर्धारित नियमों का पालन करते हुए जटिल ढंग से होता है जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

(अ) सरकार को समर्पण (Deliveries to State)—
- (i) अनिवार्य समर्पण (Obligatory Deliveries)
- (ii) मोटर ट्रैक्टर स्टेशन को वस्तु में भुगतान
- (iii) सरकारी बीज की वापसी

(आ) राज्य को बिक्री

(इ) अतिरिक्त उत्पादन की बाजार में सहकारी समितियों या उपभोक्ताओं को सीधी बिक्री

(ई) सामूहिक आवश्यकता तथा निवेश (Reserves)
- (i) बीज आवश्यकता तथा निवेशों की पूर्ति
- (ii) पशु आहार तथा निवेशों की पूर्ति
- (iii) आवश्यक मदद के लिए
- (iv) अन्य खर्च

(उ) सामूहिक कृषकों को उनके कार्य-दिवस के अनुसार

कोलखोज में आय का वितरण तथा लाभांश

आय का वितरण भी सामान्यतः उत्पादन-वितरण के अनुरूप ही है। पहले सरकार का आय-कर जो आजकल साल में चार बार चुकाना पड़ता है, लगभग आय का 14% भाग आता है। इसके बाद राज्य बीमा का भुगतान करना होता है। इसके बाद अविभाज्य कोष में कुल आय का 24 से 25% रखा जाता है अन्य सेवाओं के भुगतान के लिए। बाकी बची राशि को लाभांश के रूप में सामूहिक खेत के सदस्यों में उनके कार्य-दिवस के अनुपात में विभाजित कर दिया जाता है।

कोलखोज का सरकार से सम्बन्ध

प्रत्येक कोलखोज यद्यपि अपने आप में स्वतन्त्र होता है पर राज्य से उसका सम्बन्ध निम्न तीन प्रकार का होने से स्वतन्त्रता काल्पनिक ही रह जाती है :—

(1) प्रत्येक कोलखोज की फसल योजना (Crop Plan) राज्य बनाता है और प्रत्येक वस्तु का उत्पादन लक्ष्य भी राज्य ही निर्धारित करता है।

(2) कोलखोज पर सभी यान्त्रिक कृषि-कार्य राजकीय मोटर ट्रैक्टर स्टेशन करते हैं। 1958 के बाद से बहुत से MTS की ट्रैक्टर, मशीनें आदि सामूहिक फार्मों को बेच दिये गए हैं तथा अब MTS केवल Repair Station के रूप में रह गए हैं।

(3) उपज का निर्धारित अंश सरकार द्वारा पूर्व निर्धारित मूल्य पर राज्य को बेचना पड़ता है। आजकल अनुबन्ध पद्धति लागू की गई है जो सामान्यत: दो-तीन साल तक चलती है।

मोटर ट्रैक्टर स्टेशन (MTS)

राज्य-स्वामिक MTS सारे देश में फैले हुए हैं। उनके पास कृषि के सभी यन्त्र—जोताई, बोआई, कटाई और मड़ाई आदि कृषि का 70-80% कार्य करते हैं। इसके लिए कोलखोज उन्हें फसल का भुगतान देता है। इस तरह के 8400 स्टेशन, जिनमें 12·50 लाख कर्मचारी थे। इनमें 1 लाख कृषि विशेषज्ञ, 8·7 लाख चालक तथा 24 हजार मेकेनिक थे। 1958 में सरकार ने इनके यन्त्रों को सामूहिक फार्मों को बेच दिए, अतः अब ये Repair Stations हैं और यन्त्रों के अतिरिक्त भाग (Spare Parts) की व्यवस्था करते हैं। ये स्टेशन कोलखोज के संचालन सम्बन्धी सरकारी नीति का निर्माण एवं प्रसार करते हैं तथा कोलखोज के आन्तरिक कार्य-करण में निर्देश देते हैं।

कोलखोज के कार्य में बाधाएँ
(Problems of Kolkhoz Operation)

सामूहीकरण की इस पद्धत्ति में कोलखोज के कार्य में शुरू से अब तक कठिनाइयां आई हैं, अतः वांछित आशाओं की पूर्ति नहीं हो सकी है :—

(1) **अकुशल क्रियान्वयन और कम आय**—कोलखोज व्यवस्था में अकुशलता का बोलबाला रहा है। 1937-38 में प्रत्येक कृषक सदस्य को प्रतिदिन 20 सेन्ट की आय प्राप्त होती थी। यह 1946 में घट कर और आधी ही रह गई क्योंकि निजी

प्लोटों पर खेती करने से अधिक आय प्राप्त होती थी तो सामूहिक कार्यों से लोग जी चुराते थे। इसके अलावा कम रुचि लेना तथा अधिक आय वाले कार्यों की ओर आकर्षित होने से सामूहिक कार्यों को गौण समझना आदि से अकुशलता बढ़ी। 1939 में सोवियत सरकार ने एक डिक्री जारी कर एक न्यूनतम कार्य-अवधि (Work-days) निर्धारित कर दिए जिसे 1942 में 100 से 150 कार्य दिवस सामूहिक खेत पर कार्य अनिवार्य कर दिया, यहाँ तक कि प्रत्येक ऋतु में भी न्यूनतम सीमा निर्धारित कर अवहेलना करने वालों के लिए 6 महीने कार्य करने की सजा दी जाती थी तथा उससे प्राप्त आय का 25% सरकार द्वारा जप्त कर लिया जाता था। यही प्रावधान युद्धोत्तर काल में भी लागू रहा।

(2) **कोलखोजों की आय में असमानता** :—कोलखोजों की कुशलता, आकार, भूमि की उपजाऊ शक्ति, कार्य का गुण, फसल की किस्म और उनके मूल्यों की विभिन्नता से इनकी आय में असमानता पाई जाती है। 1953 में ख्रुश्चेव ने बताया कि दो बराबर आकार के कोलखोजों में एक में प्रति हेक्टर आय 2113 रूबल थी जबकि दूसरे में 167 रूबल ही थी। यह विषमता सरकार का सिरदर्द है। इस असमानता के कारण कोलखोज के कृषक परिवारों की आय में भी काफी विषमता पाई जाती है जो समाजवाद के लिए कलंक है।

(3) **तकनीकी तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव**—औद्योगीकरण से रोजगार की दशायें (Service Conditions) कृषि की अपेक्षा बेहतर होने से तकनीकी एवं प्रशिक्षित व्यक्ति सामूहिक खेतों की ओर आकर्षित न हुए। इससे अकुशलता बढ़ी और आय में कमी हुई। 1953 में 94000 कोलखोज में से सिर्फ 16600 फार्मों के अध्यक्ष ही कुछ प्रशिक्षित थे, बाकी फार्मों के अध्यक्ष नाम मात्र को ही शिक्षित थे।

(4) **साम्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित प्रबन्ध तथा तानाशाही**—सैद्धान्तिक रूप से तो कोलखोज प्रजातान्त्रिक संगठन है पर व्यवहार में तानाशाही तथा राजकीय नियन्त्रण का बोलबाला है। कोलखोज के अधिकारियों की नियुक्ति नाम मात्र में साधारण सभा के नाम पर साम्यवादी पार्टी तथा सरकारी अफसर करते हैं। प्रारम्भ में तो जोर जबरदस्ती का सहारा लिया गया। उससे अपार पशुधन की हानि हुई और कृषि उत्पादन में कमी हो गई। इसके अलावा उत्पत्ति का बहुत बड़ा भाग सरकार द्वारा बहुत कम मूल्यों पर वसूल कर लिया जाता है। उत्पादन की योजना सरकार बनाती है और पार्टी के निर्देशों के अनुसार उसे कार्यान्वित किया जाता है तो फिर प्रजातन्त्र रह ही कहाँ जाता है। अजब विडम्बना है।

1953 के बाद ख्रुश्चेव ने थोड़ा उदारतावादी रुख अपनाया तथा अधिक उत्पत्ति के प्रोत्साहन के लिए प्रलोभन की नीति के रूप में मजदूरी चुकाने में बोनस तथा नौकरशाही पर नियन्त्रण किया गया है।

(5) **कृषि वस्तुओं के नीचे मूल्य**—सरकार जहां एक ओर सामूहिक खेतों से उत्पत्ति की अनिवार्य वसूली करती है या खरीदती है तो बहुत ही कम निर्धारित मूल्यों पर क्रय होता है। इससे न तो उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है और न कोलखोज की आय में वृद्धि होने से सदस्यों की आर्थिक हालत में सुधार होता है। यद्यपि अब इस दिशा में प्रयत्न किए गये हैं फिर भी यह बाधा, नीति में प्रभावी परिवर्तन की आवश्यकता का संकेत करती है।

अध्याय **4**

1954 से सोवियत कृषि का विकास

(Agriculture Development Since 1954 in U.S.S.R.)

रूस में पंचवर्षीय योजना 1951 में लागू की गई और कृषि विकास के लिये महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किये गये थे । खाद्यान्नों में 40 से 50 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था । मांस के उत्पादन में 90% तथा मक्खन उत्पादन की 72% वृद्धि का लक्ष्य था । इतने ऊंचे लक्ष्यों के मुकावले कृषि क्षेत्र में इस योजना के पहले तीन वर्षों में प्रगति सन्तोषजनक नहीं थी । 1953 तक अन्न का उत्पादन 1950 के मुकावले केवल 3 से 4 प्रतिशत ही अधिक था । औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन की दशा दयनीय थी । मवेशियों की चारे के अभाव में कमी होने से, दूध तथा मांस का उत्पादन वहुत कम हो गया था ।

1953 में स्टालिन की मृत्यु के वाद रूस की अर्थ व राजनैतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । कृषि के विकास की मन्द गति तथा अनेक कठिनाइयों को देखते हुए कृषि विकास के लिए विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया गया । इसमें उदारतापूर्ण तथा प्रेरणा-मूलक सिद्धान्तों का अनुसरण किया गया ।

1954 में रूस की कम्युनिस्ट पार्टी ने वंजर तथा अनुपयुक्त भूमि को कृषि योग्य वनाने के लिए 2 लाख ट्रैक्टरों तथा $3\frac{1}{2}$ लाख युवकों को नियोजित किया । फलस्वरूप 2 वर्षों में ही लगभग 7 करोड़ एकड़ नई भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाया गया । किसानों को अनाज के ऊंचे मूल्य चुकाये जाने लगे । कृषि के लिए आयोजित राशि में वृद्धि की गई, कृषि उत्पादन वृद्धि के लिए प्रोत्साहन दिया गया ।

इन सव प्रयत्नों के फलस्वरूप योजना के अन्तिम दो वर्षों में उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई । 1955 में खाद्यान्न का उत्पादन 1950 के उत्पादन से 29 प्रतिशत अधिक रहा । औद्योगिक कच्चे माल में वृद्धि हुई । गायों, भेड़ों तथा सुअरों की संख्या में क्रमश: 20%, 32% तथा 83% वृद्धि होने से मांस और दूध की कमी की समस्या पर काबू पाया जा सका ।

इस अवधि में राजकीय तथा सामूहिक फार्मों में यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन दिया गया। परिणामस्वरूप राजकीय फार्मों में 95% तथा सामूहिक फार्मों में 80 प्रतिशत कार्य मशीनों से होने लगा।

छठी पंचवर्षीय योजना के तीन वर्षों में प्रगति (1956—1958)

छठी पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास पर विशेष जोर दिया गया। खाद्यान्नों में 38 प्रतिशत वृद्धि से 1960 तक खाद्यान्न का उत्पादन 18 करोड़ टन करने का लक्ष्य था। औद्योगिक फसलों में कपास के उत्पादन में 56%, ऊन के उत्पादन में 82% तथा चुकन्दर आदि के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि का लक्ष्य था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए खाद्यान्न फसलों के विस्तार, बेकार परत भूमि को कृषि योग्य बना कर (Virgin Soil Compain) क्षेत्र का विस्तार करना, उन्नत बीजों के क्षेत्र का विस्तार, पौध संरक्षण कार्यों तथा कृषि में यन्त्रीकरण के लिए 16·5 लाख ट्रैक्टर और 5·6 लाख ग्रेन कम्बाइन वितरित करने की योजना थी। मांस के उत्पादन में 78% तथा मक्खन और दूध के उत्पादन को 100% बढ़ाने का लक्ष्य था।

छठी योजना 1956 में प्रारम्भ करने के एक वर्ष के भीतर ही ख्रुश्चेव के बढ़ते हुए प्रभाव से अर्थतन्त्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। उसके नेतृत्व में सामूहिक फार्मों के एकीकरण, यन्त्रीकरण तथा कृषकों को उपज बेचने सम्बन्धी स्वतन्त्रता, मूल्य परिवर्तन तथा अन्य स्वतन्त्रता के कारण योजनागत कार्य-क्रमों में तेजी से परिवर्तन एवं संशोधन आवश्यक हो गया। 1958 में कृषि-क्षेत्र में दो मौलिक परिवर्तन हुए—(1) मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों को बन्द करके उनकी सारी मशीनरी सामूहिक फार्मों को बेच दी गई और (2) सामूहिक फार्मों की उत्पादन वसूली तथा क्षेत्रीय मूल्य नीति में आमूलचूल परिवर्तन किया गया।

छठी पचवर्षीय योजना को बीच में ही 1958 में समाप्त कर 5 जनवरी 1959 की 21वीं पार्टी कांग्रेस की बैठक में 1959 से 1965 तक सप्तम सप्तवर्षीय योजना प्रारम्भ करने का निर्णय किया गया। फिर भी इस योजना के अन्तर्गत परिवर्तनों से तीन वर्षों (1956 से 1958) में कृषि-क्षेत्र में तीव्र गति से प्रगति हुई। सामूहिक कृषि फार्मों की आय 1953 में 49·6 लाख रूबल से बढ़कर 1958 में 132 लाख रूबल हो गई। प्रति सामूहिक कृषक परिवार की आय जो 1953 में 252 रूबल मात्र थी वह बढ़कर 1958 में 701 रूबल हो गई।

सप्तम सप्तवर्षीय योजना में कृषि विकास (1959—65)
(Development of Agriculture during Seventh Seven Year Plan 1959—1965)

छठी पंचवर्षीय योजना के महत्वाकांक्षी लक्ष्यों की पूर्ति की असफलता की

आशंका से रूस के प्रशासकों ने छठी योजना का मध्यावधि परित्याग कर भावी सफलताओं के लिए 1959 में सप्तम सप्तवर्षीय योजना का शुभारम्भ किया। इस योजना में कृषि-क्षेत्र में सुधार की जोशवादी अव्यावहारिकता का परित्याग कर दिया गया था। कृषि उत्पादन (खाद्यान्न) में अगले 7 वर्षों में 70% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया जिससे खाद्यान्न का उत्पादन 10–11 अरब पुड हो सके।[1] मुख्य औद्योगिक फसलों के लक्ष्य निम्न तालिका में दिये जा रहे हैं:—

सप्तम योजना में मुख्य औद्योगिक फसलों के लक्ष्य (1959—1965)

फसल	उत्पादन मात्रा	1957 की तुलना में वृद्धि
कपास	57 लाख से 61 लाख टन	35 प्रतिशत से 45 प्रतिशत वृद्धि
चुकन्दर	7 करोड़ से 7·8 करोड़ टन	1·8 से दुगुनी वृद्धि
तिलहन	55 लाख टन के लगभग	70 प्रतिशत वृद्धि
फ्लेक्स (पटसन के रेशे)	5·8 लाख टन	32 प्रतिशत वृद्धि

इसी प्रकार आलू की फसल का कुल उत्पादन जो 1957 में 8·8 करोड़ टन था उसे 1965 में बढ़ा कर 14·7 करोड़ टन करने का लक्ष्य था। मांस तथा दूध के उत्पादन में क्रमशः दुगुनी तथा 1·7 से 1·8 गुना वृद्धि का लक्ष्य था।

इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए 7 सालों से 10 लाख ट्रैक्टर, 4 लाख हारवेस्ट कम्बाइन्स और अन्य कृषि यन्त्र उपलब्ध किये जाते थे। यन्त्रीकरण के साथ-साथ विद्युतीकरण को बढ़ावा देना था। सामूहिक खेतों की उत्पादन क्षमता में दुगुनी तथा राजकीय फार्मों की उत्पादन क्षमता में 50 से 60 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य था। दूध, मांस की पूर्ति के लिए पशुओं की संख्या में 20% वृद्धि का लक्ष्य था।

सप्तम सप्तवर्षीय योजना के शुरू होने के दो वर्ष बाद ही अक्टूबर, 1961 में साम्यवादी दल के 22वीं कांग्रेस में देश में पूर्णतया समाजवादी समाज की स्थापना के लिए 20 वर्षीय कार्य-क्रम प्रस्तुत किया गया। इस बीस वर्षीय योजना में कृषि उत्पादन में $3\frac{1}{2}$ गुना वृद्धि, खाद्यान्न में दुगुनी वृद्धि, दूध के उत्पादन में 3 गुनी वृद्धि तथा दूध उत्पादन में चौगुनी वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। निम्न तालिका में बीस वर्षीय योजना के कृषि सम्बन्धी लक्ष्य स्पष्ट हो जाते हैं:—

---

1. 10 से 11 अरब पुड अर्थात् 16 से 18 करोड़ टन खाद्यान्न।

दीर्घकालीन कृषि उत्पादन सम्बन्धी बीस वर्षीय योजना (1961–1981) के प्रमुख लक्ष्य

विवरण	इकाई	1960	1970	1980
खाद्यान्न	मिलियर्ड पुड	8·2	14	18 से 19
मांस	लाख टन	87	250	300 से 320
दूध	लाख टन	617	135	1700 से 1800
कपास	लाख टन	43	80	100 से 110
चुकन्दर	करोड़ टन	5·8	8·6	9·8 से 10·8
आलू	करोड़ टन	8·5	10·4	15·6
ऊन	हजार टन	35·7	800	1045 से 1155

इस तरह सप्तम सप्तवर्षीय योजना काल में ही कृषि विकास में दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपना लिया गया था जो अब तक कि सप्तम सप्तवर्षीय योजना तथा अष्ठम पंचवर्षीय योजनाओं में परिलक्षित होता है। सप्तम योजना के अन्त में उपलब्धियां प्रेरणास्पद रही। 1964 में खाद्यान्न का उत्पादन अधिक था पर 1965 में खराब मौसम से उत्पादन गिर गया।

सप्तम सप्तवर्षीय योजना की कृषि क्षेत्र में उपलब्धियों की समीक्षा

इस योजना में कृषि विकास सन्तोषप्रद नहीं रहा तथा लक्ष्यों की पूर्ति न हो सकी। जहां खाद्यान्न में 70 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य था वहां केवल 10 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई। पशु-धन में वृद्धि नहीं हुई। यहां तक कि सुअरों, भेड़ों तथा मुर्गियों की संख्या में कमी होने से उत्पादन गिरा। रूसी अर्थशास्त्रियों ने भी अनुभव किया कि जहां 1958 के पिछले पांच वर्षों में कृषि क्षेत्र में कुल विनियोग का 11·3 प्रतिशत भाग विनियोग किया जाता था वह 1959–65 की अवधि में केवल 7·5 प्रतिशत ही रह गया। 1961 में कृषि उपज में 4·4 प्रतिशत को वृद्धि हुई थी वह 1962 में घट कर केवल 2·8 प्रतिशत ही रह गई। इसके बाद स्थिति सूखे के कारण बहुत बिगड़ गई। अत योजना काल में कृषि उपज में वार्षिक वृद्धि की दर 1·5 से भी कम थी। बाहर से खाद्यान्न का आयात करना पड़ा।

इस अवधि में सामूहिक कृषि फार्मों का पुनर्संगठन किया गया। छोटे-छोटे फार्मों को बड़े फार्मों में मिला दिया। परिणामस्वरूप सामूहिक फार्मों की संख्या 1958 में 67700 से घट कर 1965 में केवल 36600 रह गई। कुछ सामूहिक फार्मों को राजकीय फार्मों में परिवर्तित कर दिया। मशीनी प्रक्रिया में सुधार हुआ।

रासायनिक खाद, उन्नत बीज तथा कीटाणुनाशक औषधियों के उपयोग में वृद्धि होने से 1965 तक कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई।

जहां 1958 में सामूहिक कृषि फार्मों की कुल आय 132 लाख थी वह 1963 में बढ़ कर 161 लाख तथा 1966 में बढ़ कर 231 लाख रूबल हो गई। इसी प्रकार प्रति कृषक परिवार आय 1958 में 701 रूबल से बढ़ कर 1963 में 996 रूबल तथा 1966 में 1506 रूबल हो गई थी। खाद्यान्न का उत्पादन 12 करोड़ टन था। मांस तथा मछली का उत्पादन क्रमशः 96 लाख तथा 57 लाख टन था। मक्खन 11·8 लाख टन, दूध 7·24 करोड़ टन, चीनी 110 लाख टन था।

अष्टम पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास (1966–1970)

(Agriculture Development Programme in Eighth Five Year Plan—1966-70)

सातवी सात वर्षीय योजना की कृषि-क्षेत्र मे लक्ष्यों की प्राप्ति में असफलता से खाद्यान्न की मांग में वृद्धि, औद्योगिक कच्चे माल का अभाव खल रहा था। अतः सरकार ने कृषि उत्पादन में अगले पांच वर्षो (1966–70) में 40 से 45 वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया। योजना काल में कृषि विकास पर 4100 करोड़ रूबल की धनराशि व्यय का प्रावधान रखा ताकि कृषि से पूंजी विनियोग सातवीं योजना से दुगुना हो जाय। खाद्यान्नों के उत्पादन में 30% वृद्धि करने के लिए आवश्यक कदम उठाये जाने की व्यवस्था की गई। कृषि में यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन देने के लिये 17·9 लाख ट्रेक्टरों, 11 लाख लारियों तथा 5·5 लाख कम्बाइन हारवेस्टरों की पूर्ति का लक्ष्य रखा। कृषि-योग्य भूमि में वृद्धि करने के लिए 60 लाख से 65 लाख हेक्टर दल-दल भूमि को सुखा कर कृषि योग्य बनाने तथा कजाकस्तान, युक्रेन, काकेशस तथा मध्य एशिया में 25 से 30 लाख हेक्टर भूमि में सिचाई का प्रबन्ध करने का लक्ष्य रखा गया। कृषि में तेजी से विद्युतीकरण से 1970 तक प्रयुक्त मात्रा में तिगुनी वृद्धि की जाना निर्धारित किया गया जिससे उपयोग 65000 करोड़ किलोवाट घण्टे हो जाय, ऐसी व्यवस्था की गई है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूंजी विनियोग कुल व्यय का 11·3 प्रतिशत से बढ़ कर 17·4 प्रतिशत हो जायगा।

वर्तमान स्थिति

आठवीं पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्षो में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। जहां सातवीं योजना में खाद्यान्न का औसत वार्षिक उत्पादन 13 करोड़ टन था वह 1968 तक 17 करोड़ टन हो गया अर्थात् 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जहां 1965 में कपास का उत्पादन 50 लाख टन था वह बढ़कर 1968 में 60 लाख टन, चीनी का उत्पादन 60 लाख टन से बढ़कर 72 लाख टन हो गया। दूध और मांस

के उत्पादन में क्रमशः 5 प्रतिशत और 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई है। उर्वरकों का उपयोग 1965 में 180 लाख टन से बढ़ कर 1968 में 320 लाख टन होने लग गया था। इसके स्पष्ट है कि रूस ने प्रति एकड़ उपज वढ़ाने के लिए उर्वरकों के महत्व को स्वीकार कर लिया है और सोवियत नेता कृषि के विकास की हर सम्भव पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं। सामूहिक तथा राजकीय फार्मों की कार्यविधि में कुशलता तथा प्रेरणा को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

अपने समय में लेनिन कृषि के लिए 1 लाख ट्रैक्टर की बात सोचता था जब 1967 में रूस में 16·7 लाख ट्रैक्टर, 5·31 लाख ग्रेन कम्बाइन हारवेस्टर तथा 10 लाख लारियां तथा कई अन्य आधुनिक यन्त्र थे। 1913 की तुलना में उत्पादन 16 गुना अधिक था। इस सन्दर्भ में 1956 से 1970 की अवधि में कृषि-क्षेत्र का विकास निम्न तालिका से स्पष्ट होता है:—

1954 के बाद कृषि विकास एक दृष्टि में
(वार्षिक औसत)

विवरण	इकाई	1956–60	1961–65	1966–70 (अनुमानित)
कुल कृषि-उत्पादन	मूल्य अरब रूबल	46·7	52·3	70
खाद्यान्न	करोड़ टन	12·15	13·0	16·7
कपास	लाख टन	44·0	50·0	60·0
मांस	लाख टन	79·0	93·0	110·0
दूध	करोड़ टन	5·7	6 5	7·8
अण्डा	अरब सं०	23·6	28·7	34·0
ऊन	हजार टन	317·0	361	410

1954 के बाद कृषि में सुधार

स्टालिन की मृत्यु के वाद कृषि क्षेत्र में तीव्रगामी परिवर्तन हुए क्योंकि पांच पंचवर्षीय योजनाओं के वावजूद कृषि उत्पादन सन्तोषजनक नहीं था। निम्न परिवर्तन महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं:—

(1) सामूहिक खेतों के वसूली मूल्यों में वृद्धि—स्टालिन काल में सामूहिक खेतों की हीन दशा का एक कारण यह था कि सामूहिक खेतों के कृपकों ने सरकार द्वारा कृत्रिम रूप से निर्धारित नीचे मूल्यों पर अनिवार्य वसूली की जाती थी। अतः मेलनकोव ने सर्वप्रथम सुधार इन मूल्यों में वृद्धि करके किया;

(2) **वसूली मूल्यों में विभिन्नता का समापन**—1958 में इस दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इससे पहले सामूहिक फार्म की अनिवार्य वसूली के लिए एक नीचा मूल्य रखा गया था और अनिवार्य वसूली से अतिरिक्त खरीद के लिए कुछ ऊंचा मूल्य था। अतः नये सुधार में सरकार ने समस्त खरीद का अपेक्षाकृत ऊंचा एक ही मूल्य (Single price) निर्धारित किया। हाँ क्षेत्रीय विषमता का थोड़ा ध्यान रखा गया था। इस विवेकपूर्ण नीति से सामूहिक कृषकों को उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा मिली।

(3) **सामूहिक खेतों की योजनाओं में सरलता**—पहले सामूहिक खेतों की योजनाओं को अति विस्तृत बनाया जाता था। यहां तक कि एक वार्षिक योजना में 200 से अधिक लक्ष्य (Targets) प्रत्येक सामूहिक खेत के लिए निर्धारित किये जाते थे। अब प्रत्येक योजना में केवल राज्य को दी जाने वाली अनिवार्य वसूली का उल्लेख किया जाने लगा है।

(4) **विकेन्द्रीकरण तथा कृषि प्रबन्ध में स्वतन्त्रता**—प्रादेशिक स्तर पर प्रशासन में विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई गई तथा फार्म मैनेजमेन्ट को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान की ताकि नौकरशाही की अकुशलता में कमी हो।

(5) **सामूहिक खेतों में यन्त्रीकरण को बढ़ावा तथा मशीन, ट्रैक्टर-स्टेशन की समाप्ति**—1958 से पूर्व सामूहिक खेत अपनी आवश्यकता के लिए ट्रैक्टर नहीं रख सकते थे। उन्हें अपनी आवश्यकता के लिए Machine-Tractor-Station (M.T.S.) पर निर्भर करना पड़ता था और M.T S. ही सामूहिक खेतों पर राजनैतिक नियन्त्रण तथा निरीक्षण करते थे। पर M.T.S. की अकुशलता से 1958 में मशीन-ट्रैक्टर-स्टेशन को समाप्त कर दिया तथा उसकी मशीनों को सामूहिक खेतों तथा राजकीय खेतों को बेच दी।

(6) **कृषि क्षेत्र में विस्तार**—कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए सरकार द्वारा दल-दल भूमि को सुखा कर या बंजर व कठोर भूमि को कृषि योग्य बनाने के प्रयत्नों से 1953 में कृषि योग्य भूमि 15 करोड़ हेक्टर से बढ़ कर 1959 में 20 करोड़ हेक्टर हो गई। कृषि क्षेत्र में 5 करोड़ हेक्टर की वृद्धि से कृषि में खाद्यान्न का उत्पादन 8·2 करोड़ टन से बढ़ कर 12·6 करोड़ टन हो गया। इन नये क्षेत्रों में राजकीय फार्म (सोव-खोज) स्थापित किये गये।

(7) **सामूहिक खेतों का पुनर्संगठन एवं एकीकरण**—कृषि क्षेत्र में संगठन सम्बन्धी सुधार महत्वपूर्ण रहा है। 1950 के वर्षों में सामूहिक फार्मों के एकीकरण की प्रवृत्ति प्रबल हुई। जहां 1949 में सामूहिक खेतों की सख्या 2,50,000 (ढाई लाख) थी। उनके एकीकरण से 1959 में खेतों की संख्या घट कर केवल 53436 ही रह गई।

(8) **सामूहिक खेतों तथा राजकीय खेतों के सम्बन्ध में विवाद**—पार्टी की हमेशा राजकीय फार्मों (Sovkhozy) के प्रोत्साहन की प्रवृत्ति रही है और कृषि व्यवस्था में उनसे महत्वपूर्ण लाभ की आशा की जाती है और यह भावना अधिक प्रबल होती जा रही है कि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की सुदृढ़ नींव के लिए राजकीय फार्म अधिक आवश्यक हैं। परन्तु दूसरी ओर आलोचकों के द्वारा राजकीय फार्मों की अकुशलता, भ्रष्टाचार, तानाशाही प्रवृत्तियों का पर्दा फाश कर दिया है।

इस प्रकार 1954 के बाद में कृषि क्षेत्र में बड़े पैमाने से यन्त्रीकरण की नीति से जन-भार भी कम हुआ है और उत्पादन में वृद्धि द्रुत गति से हो रही है।

निष्कर्ष—इस प्रकार उपर्युक्त विवरण तथा तालिकाओं को देख कर यह स्पष्ट होता है कि जब से स्टालिन की मृत्यु हुई और ख्रुश्चेव ने नेतृत्व संभाला, परिवर्तनों का दौर प्रारम्भ हुआ। अब कृषि विकास में अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। रूस के नेताओं तथा जनता ने यह जान लिया कि कृषि में प्राकृतिक कारण प्रबल हैं। अतः उन्होंने सामूहिक खेतों के पुनर्संगठन, कुशलता तथा प्रेरणा में वृद्धि, कुछ स्वतन्त्रता आदि की नीति अपनाई है। परिणामस्वरूप उत्पादन में द्रुत गति से विकास हुआ है।

अध्याय **5**

रूस में द्रुतगति से औद्योगीकरण की समस्या

(Problem of Rapid Industrialisation in U.S.S.R.)

रूस ने औद्योगीकरण में जिस द्रुतगति से विकास का परिचय दिया है वह विश्व में अद्वितीय तथा प्रशंसनीय है। जहां 1913 से 1965 की अवधि में संयुक्त राज्य अमेरिका के औद्योगिक उत्पादन में 6·8 गुना, ग्रेट ब्रिटेन में 2·3 गुना, फ्रांस में 3·1 गुना तथा पश्चिमी जर्मनी में 4·6 गुना वृद्धि हुई है वहां सोवियत संघ में इसी अवधि में 66 गुना वृद्धि हुई है। यहां तक कि 1970 में वह 82 गुना हो जाने का अनुमान है। 1966-70 की आठवीं योजना में ही औद्योगिक उत्पादन में 50% वृद्धि का लक्ष्य है। वह आज विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का 20 प्रतिशत भाग उत्पन्न करता है। सोवियत संघ के औद्योगिक विकास का परिचय इससे स्पष्ट हो हो जाता है कि वह आज ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, कनाडा, बेल्जियम, नीदरलैण्ड तथा जापान सबके सम्मिलित उत्पादन से भी अधिक औद्योगिक वस्तुओं का निर्माण करता है।

आज सोवियत रूस में आधुनिक उद्योगों की सभी शाखाएं जो कि 300 से भी अधिक हैं। प्रथम वर्ग में आधार भूत उद्योग हैं जिसमें तकनीकी सामान, विद्युतीकरण, स्वचालित मशीनें तथा यन्त्रीकरण से सम्बन्धित उद्योग हैं। 1966 में रूस के उद्योगों में विनियोजित पूंजी से वहां के उद्योगों की संरचना स्पष्ट होती है। कुल विनियोग का 10·6 प्रतिशत लोह-इस्पात उद्योग, 13·9 प्रतिशत ईंधन उद्योग, 14·9 प्रतिशत विद्युत उद्योग, 8·3 प्रतिशत रासायनिक उद्योग, 20 प्रतिशत मशीन निर्माण उद्योग में लगा है जबकि केवल 13·6 प्रतिशत विनियोग हल्के और खाद्यान्न उद्योगों में विनियोजित है।

जहां 1913 में रूस का औद्योगिक उत्पादन संसार के कुल औद्योगिक उत्पादन का 4 प्रतिशत भाग था वह आज 20 प्रतिशत भाग है और 1913 में रूस का

औद्योगिक उत्पादन सं. रा. अमेरिका का 12·5 प्रतिशत था वह अब बढ़कर 65 प्रतिशत से भी अधिक हो गया है। इसी प्रकार इस्पात, विद्युत शक्ति, सीमेन्ट आदि सभी वस्तुओं के निर्माण में तीव्र गति से प्रगति हुई है। हाल के ही कुछ वर्षों में रासायनिक उद्योग में 14 से 15 प्रतिशत वृद्धि "Big Chemistry" का द्योतक है। इलेक्ट्रोनिक्स का उद्योगों में उपयोग निरन्तर बढ़ रहा है। श्री स्टालिन के शासन काल में उपभोग उद्योगों की जो अवहेलना की गई, श्री ख्रुश्चेव के सत्ता संभालने के वाद नीति में परिवर्तन किया गया है और अब उत्पादक उद्योगों के विकास के साथ २ उपभोग उद्योगों के विकास को भी पर्याप्त महत्व दिया जा रहा है जिससे उपभोक्ताओं के कष्टों का निवारण हो और वे उन्नत जीवन-स्तर बिता सकें। पर इस औद्योगिक विकास में अनेक समस्याएं आईं, उनका विवरण आगे है।

द्रुतगति से औद्योगीकरण की समस्या

यौद्धिक साम्यवाद के बाद संक्रमण काल के रूप में रूस में नवीन आर्थिक नीति अपनाई गई जिसमें परम्परागत कृषि तथा अविकसित उद्योगों की स्थिति में औद्योगिक क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग के समाजवाद की कल्पना निहित थी। इस मिश्रित पद्धति में जहां पूंजीवाद और समाजवादी तत्वों का अस्वाभाविक मेल था, यह प्रश्न उठा कि भावी विकास के लिए औद्योगिक क्षेत्र में किस दशा में आगे बढ़ा जाय। कैंची संकट (Scissors Crisis) में उद्योगों तथा कृषि विकास से सम्बन्धित नीतियों के बारे में नेताओं में मूलभूत मतभेद दृष्टिगोचर हुआ। प्रश्न था कि नवीन आर्थिक नीति से समाजवाद कैसे और कब आयेगा? सोवियत नेताओं के सामने 1928 में औद्योगिक विकास के नियोजन के सम्बन्ध में अनेक ऐसे आधार भूत प्रश्न थे जिनसे कि विकास को गति प्रदान की जा सके। इसका हल बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास एवं विस्तार तथा कृषि में सहकारिता को प्रोत्साहन करने में निहित लगा, पर साथ ही साथ यह भय था कि क्या तत्कालीन परिस्थितियों में संभव था और अगर कठिन है तो क्यों न पूंजीवाद की पुनरावृत्ति में समाजवादी तत्वों को सुदृढ़ किया जाय। स्वयं ट्रोटस्की (Trotsky) ने यह महसूस किया था कि रूस में समाजवाद तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि विश्व के दूसरे भागों में भी सर्वहारा वर्ग की विजय न हो जाय "The real growth of the Socialist Economy in Russia can take place only after the victory of the proletariat in the more important countries of Europe." ऐसी परिस्थिति में औद्योगीकरण के बारे में धारणा जोर पकड़ती जा रही थी। दिसम्बर 1925 में पार्टी कांग्रेस ने अगले वर्षों में औद्योगीकरण को सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर लिया। यहीं से औद्योगीकरण की समस्या उत्पन्न हुई :—

(1) औद्योगीकरण के लिए विनियोग के साधन

सर्व प्रथम प्रश्न औद्योगीकरण के लिए विनियोग के साधन जुटाने का था। यह जनशक्ति के रूप में ही नहीं बल्कि कच्चे माल, शक्ति, ईंधन तथा औद्योगिक श्रमिकों के खाद्यान्न की व्यवस्था से था। जहां तक जन शक्ति का सम्बन्ध था, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर लोग बेरोजगार थे और साथ ही साथ कृषि में छिपी हुई बेरोजगारी से श्रमिकों की पूर्ति हो सकती थी पर फिर भी तकनीकी प्रशिक्षित व्यक्तियों की समस्या जरूर थी। औद्योगिक निर्माण में विकास की सीमा लोह-इस्पात, यन्त्रों की मात्रा, इंजीनियरिंग उपकरण आदि में भी जिनके सम्बन्ध में देश अब भी बहुत पिछड़ा था और गृह-युद्ध के कारण उत्पादन 1913 के स्तर से 50 से 60 प्रतिशत कम था।

अगर आधार भूत एवं भारी उद्योगों के लिए आवश्यक विनियोग साधनों की पूर्ति आन्तरिक साधनों से पूरी न हो तो विदेशी पूर्ति का ही विकल्प रह जाता है। विदेशों से मशीनें आयात करने में आयातों के भुगतान के लिए अनाज के निर्यात को बढ़ाना और अगर अनाज का निर्यात बढ़ाना तो पिछड़ी कृषि में उत्पादन को बढ़ाना उसी कुचक्र का दूसरा छोर था।

साथ ही सम्बद्ध समस्या थी कि अगर औद्योगिक विकास द्रुतगति से किया जाय और थोड़े समयों में ऊंचे लक्ष्य प्राप्त करने की कोशिश की गई तो साधनों को जुटाने में अधिक कठिनाई रहेगी चाहे भविष्य में निर्मित क्षमता स्वयं अपने साधनों की पूर्ति कर सकें। अल्पकाल में ही विकास की नीति अर्थ-व्यवस्था में प्रारम्भ में भार स्वरूप सिद्ध होगी पर दीर्घकाल में विकास कार्यक्रमों को बिखेरने पर चाहे विनियोग के साधन कम चाहिए पर भविष्य को अधिक उज्ज्वल बनाना कठिन है।

अत: औद्योगीकरण के विनियोग के साधनों में आन्तरिक तथा बाह्य साधनों के साथ २ उनमें समय तत्व बहुत महत्व का था।

(2) भारी तथा आधार भूत एवं हल्के उद्योगों को प्राथमिकता की समस्या

साधनों की सीमितता और साध्यों की अनेकता में औद्योगीकरण की यह समस्या अधिक महत्वपूर्ण थी कि औद्योगीकरण में भारी तथा आधार भूत उद्योगों को प्राथमिकना दी जाय या हल्के उपभोग उद्योगों को। हल्के उपभोग उद्योगों को प्राथमिकता देने में उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में तेजी से वृद्धि जीवन-स्तर में सुधार को प्रोत्साहित करेगी पर दीर्घ काल में उपभोग उद्योगों का विस्तार संभव नहीं होगा। जबकि आधार भूत एवं भारी उद्योगों में अधिक विनियोग होने के साथ २ दीर्घकालीन फल मिलता है, जीवन-स्तर पर अल्पकाल में बुरा प्रभाव पड़ता

है परन्तु भविष्य में तीव्र औद्योगीकरण का सुदृढ़ आधार तैयार हो जाता है। स्टालिन ने 14वीं कांग्रेस में अपनी आर्थिक नीति की रिपोर्ट में औद्योगीकरण के लिए आधार भूत एवं भारी उद्योगों पर अधिक बल दिया। उनके प्रस्ताव के अनुसार रूस जो मशीनों का आयातक है उत्पादक हो जाय और तभी वह पूंजीवादी राष्ट्रों की अर्थ-व्यवस्था का पिछलग्गु न रह कर एक स्वतन्त्र समाजवादी राष्ट्र बन सकता है। प्रस्ताव के अनुसार "That the Soviet Union be converted from a country which imports machines to a country which produces machines, in order that by this means, the Soviet Union in the midst of capitalist encirclement should not become an economic appendage of the capitalist world economy but an independent economic unit which is building socialism."

1925 की 14वीं कांग्रेस के समय शोकोल्नीकोव ने औद्योगीकरण में हल्के उद्योगों को प्राथमिकता देने तथा पूंजीगत माल के लिए आयात पर निर्भर रहने की बात कही तो स्टालिन ने इसकी कटु आलोचना की और कहा कि विकास के इस स्तर पर अगर हम पूंजीगत सामान स्वयं उत्पादन न कर विदेशों पर आश्रित रहे तो हम अपनी अर्थ-व्यवस्था को पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का अनुयायी होने से नहीं बचा सकते। अतः औद्योगीकरण में भारी एवं आधार भूत उद्योगों को अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। सोवियत नेताओं ने अपनी सभी योजनाओं में आधार भूत उद्योगों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। इससे यद्यपि जीवन-स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ा। जनता को यातनाएं भुगतनी पड़ी, पर आज सोवियत रूस में विकास के लिए सुदृढ़ औद्योगिक आधार बन चुका है जिससे अब हल्के एवं उपभोग उद्योगों का भी तेजी से विस्तार हो रहा है।

(3) कृषि को प्राथमिकता या उद्योगों को ?

कुछ लोगों की यह धारणा है कि कृषि ही औद्योगिक विकास का आधार है क्योंकि कृषि विकास से ही आवश्यक औद्योगिक कच्चा माल, विनियोग के लिए बचतें, उत्पादन आधिक्य से विदेशों में निर्यात से आवश्यक पूंजीगत माल, तथा विस्तृत आन्तरिक बाजार का निर्माण होता है। औद्योगिक श्रमिकों के लिए खाद्यान्न की पूर्ति होती है। कृषि-क्षेत्र में आय वृद्धि से औद्योगिक माल की मांग बढ़ती है।

जबकि कुछ लोग इस बात को महत्व देते हैं कि उद्योगों को प्राथमिकता देनी चाहिए क्योंकि इससे कृषि पर भार कम होता है, आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों, उर्वरकों आदि से कृषि में उपज बढ़ती है और कृषि में परम्परागत दृष्टिकोण के स्थान पर व्यावसायिक दृष्टिकोण का सूत्रपात होता है।

रूस के औद्योगीकरण में कृषि बनाम उद्योग विकास प्राथमिकता की समस्या उस समय अधिक जटिल हो गई जब कैंची संकट की समाप्ति के बाद यह मत व्यक्त किया जाने लगा था कि सरकार को कृषि विकास की नीति से परिवर्तन कर औद्योगिक विकास की नीति को अधिक अपनाया जाय। 1923 में Piatakov, सप्रोनोव, आदि ने कृषि तथा औद्योगिक मूल्यों में विषमता की समाप्ति की भर्त्सना की।

(4) उत्पादन की मात्रा निर्धारण की समस्या

(Problem of determination of Volume)

उत्पादन की मात्रा निर्धारण करने में पूंजीवादी राष्ट्रों के आर्थिक इतिहास के तत्वों को ध्यान में रखा गया। यह निर्धारित किया गया कि फ्रांस, जर्मनी तथा इंगलैंड के उद्योगों में उत्पादन क्षमता का पार किया जाय। 1939 के बाद इस आधार को त्याग कर प्रति श्रमिक उत्पादन में वृद्धि का प्रयास किया गया जिसमें अमेरिका के प्रति श्रमिक उत्पादन से भी अधिक उत्पादन का उद्देश्य था।

(5. उत्पादन वृद्धि की दर व लक्ष्य निर्धारण की समस्या

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का आधार समय है और जितनी द्रुतगति से उत्पादन बढ़ाया जाय उतना ही औद्योगीकरण कम समय में ही सफल सिद्ध होता है। प्रारम्भ में तो सोवियत नेता अनुमान और अन्दाज पर आधारित रहे पर बाद में अनुभवों का लाभ उठा आवश्यक सांख्यिकी से भविष्य के प्रोजेक्शन्स, तथा अधिक व्यावहारिक अनुमान लगाने में समर्थ थे। वे भारी एवं आधार भूत उद्योगों में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए हल्के एवं उपभोग उद्योगों की अवहेलना करने में भी नहीं हिचकिचाते थे।

(6) नये उद्योगों की स्थापना क्षेत्र (Location) के निर्धारण की समस्या

उद्योगों के स्थापना के सम्बन्ध में भी सोवियत संघ के आयोजकों ने उनके स्थान निर्धारण में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक तत्वों को ध्यान में रखा। आर्थिक दृष्टि से वही स्थान उपयुक्त है जहां उत्पादन लागत कम से कम तथा उत्पादन अधिक से अधिक हो। इसके लिए कच्चे माल तथा बाजार की निकटता, श्रम की उपलब्धता, यातायात के साधनों की सुगमता तथा विभिन्न प्रकार के कच्चे माल के साधनों की तुलनात्मक लागत आदि महत्वपूर्ण थे। राजनैतिक दृष्टि से सुरक्षा को महत्व दिया गया। औद्योगिक इकाइयां स्थापित करने में उद्योग की पश्चिमी आक्रमणों से विनाश से मुक्ति का उद्देश्य रहा। सामाजिक दृष्टि से अविकसित क्षेत्रों के विकास की ओर भी ध्यान दिया गया। युराल तथा पश्चिमी साईबेरिया में उद्योगों का विकास इसी उद्देश्य से प्रेरित था। लोहा और कोयला की निकटता को ध्यान

में रखकर लोह उद्योगों के स्थान का निर्धारण किया गया। पर एक महत्वपूर्ण विशेषता उनमें यह थी कि कभी २ आर्थिक कारणों को राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नजर अन्दाज कर दिया गया। इसका अनुपम उदाहरण मेगनीटोगोर्स्क—कजनेस्क क्रमशः लोहा और कोयला की खानों के अनमेल गठबन्धन से लोह-इस्पात कारखाना स्थापित किया गया जिनमें 1300 मील की लम्बी दूरी तक भारी कच्चा माल ढ़ोना पड़ता था। फिर भी सामान्यतः उद्योगों की स्थापना में न्यूनतम यातायात व्यय को मुख्य आधार माना।

(7) उद्योगों में मजदूरी नीति की समस्या

द्रुतगति से औद्योगीकरण के साथ २ यह समस्या भी महत्वपूर्ण थी कि औद्योगिक उत्पादन तथा मौद्रिक मजदूरी में वृद्धि का क्या सम्बन्ध रहे तथा इस वृद्धि का कितना भाग मजदूरों के जीवन-स्तर में वृद्धि तथा कितना भाग पूंजी निर्माण में लगे ? जहां 1922-24 की अवधि में उत्पादन में तो केवल 45 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई जबकि औद्योगिक क्षेत्र में मौद्रिक मजदूरी में दुगुनी वृद्धि हो गई थी। उत्पादकता अभी भी युद्ध पूर्व स्तर से कम थी। वेसेन्खा के अनुमानों के अनुसार जहां पहले एक पुड सूती सामान उत्पादन करने में 2·14 मानव-दिन लगते थे अब 3·2 मानव-दिन लगते थे। इससे औद्योगिक लागतों में वृद्धि से वित्तीय कठिनाइयां बढ़ गई थी। वेसेन्खा ने इस समस्या के अध्ययन के लिए एक आयोग भी नियुक्त किया था। अन्ततः प्रश्न यही महत्वपूर्ण था कि श्रम की उत्पादकता में वृद्धि की जाय तथा मौद्रिक आय और उत्पादकता में एक उपयुक्त सन्तुलित सम्बन्ध रखा जाय।

(8) बेरोजगारी की समस्या

1925 के आगे वाले वर्षों में बेरोजगारी की समस्या अपना भयंकर रूप धारण कर रही थी यहां तक कि बेरोजगारों की संख्या 20 लाख तक पहुँच गई थी। कुछ सीमा तक यह समस्या नव-आगुन्तकों तथा कुछ सीमा तक छिपी हुई मौसमी बेरोजगारों के कारण थी। यद्यपि 1926 तक लगभग 5 लाख व्यक्तियों को उद्योगों में रोजगार दिया गया था, फिर भी पंजीकृत बेकारों की संख्या जो पहले 1 लाख थी 1926 तक 10 लाख हो गई थी। श्रम विभाग के अनुसार बेकारों में 21 प्रतिशत कुशल, 51 प्रतिशत अकुशल तथा 18 प्रतिशत बौद्धिक श्रमिक थे। इन बेकारों में 14 प्रतिशत व्यक्ति 18 साल से कम उम्र के थे। इस प्रकार की बेकारी की जटिल समस्या के समाधान के लिए 25 अक्टूबर 1927 में उपलब्ध औद्योगिक मशीनों से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करने तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करने के लिए 7 घन्टे का कार्य-दिन (7 Hour Working Day) कर दिया गया

और बहु-शिफ्ट (Multiple-shift) लागू किया गया। इसमें भी बाद में कभी कच्चे माल तथा कार्यशील पूंजी का अभाव तथा कभी २ कुशल तथा तकनीको निरीक्षण श्रमिकों की कमी का मुकाबला करना पड़ता था। अन्ततः प्रथम योजना के दो वर्षों में ही तीव्र औद्योगिक विकास से बेरोजगारी की समस्या का समापन कर दिया गया।

(9) अन्य

इसके अलावा रूस में प्रारम्भ में कुशल तथा तकनीकी श्रम की कमी की समस्या रही। उसको दूर करने के लिए उचित प्रशिक्षण व्यवस्था करनी पड़ी, कार्य के घन्टों में वृद्धि तथा आराम में कमी करके पूरा करने की चेष्टा की गई।

रूस में पूंजीवादी तत्वों के उन्मूलन से औद्योगीकरण का मार्ग अपनाये जाने से पूंजीवादी तत्वों ने औद्योगीकरण को असफल सिद्ध करने में पूरा प्रयत्न किया। कुलक वर्ग ने भी कच्चे माल के संग्रह से तथा अनाज की वसूली में कठिनाइयां उत्पन्न की। इससे विदेशी भुगतान सन्तुलन पर भी प्रभाव पड़ा। पर 1928 तक तो कुलकवर्ग का हमेशा के लिए समापन कर दिया गया।

विदेशी पूंजी के अभाव में औद्योगीकरण के प्रारम्भिक वर्षों में आवश्यक मशीनों, तथा पूंजीगत माल में कठिनाई रही। सरकार ने यौद्धिक साम्यवाद के अन्तर्गत ही विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर लिया था इससे भुगतान सन्तुलन में कुछ बचत संभव हो सकी और औद्योगीकरण के लिए आवश्यक विदेशी भुगतान संभव हो सके। नवीन आर्थिक नीति (NEP) से भी विदेशी पूंजी का आयात संभव हुआ पर बाद में इसकी कटु आलोचना होने लगी थी।

कुछ सीमा तक उद्योगों के प्रबन्ध की भी समस्या रही क्योंकि उद्योगों में प्रबन्धकों पर कठोर नियन्त्रण थे जबकि सीमित स्वतन्त्रता थी। इससे प्रोत्साहन तो कम था पर भय अधिक था। इसका औद्योगीकरण पर बुरा प्रभाव पड़ा।

निष्कर्ष

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि रूस में औद्योगीकरण का जो स्वरूप हमारे सामने है उसके निर्माण में अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ा है। एक पिछड़े कृषि प्रधान देश में जहां पूंजी निर्माण का अभाव हो, कुशल तथा तकनीकी श्रम की न्यूनता हो, उद्योगों का विकास बहुत ही कम हो पाया हो तो उस देश में आधार भूत तथा भारी उद्योगों का विकास करना और वह भी बिना विदेशी सहायता के कोरी कल्पना लगता है। पर सोवियत नेताओं ने देश के औद्योगीकरण में जिस दूरदर्शिता, विवेक और परिश्रम का परिचय दिया, वह वास्तव में विकासशील राष्ट्रों के लिए अनुकरणीय है। सोवियत जनता ने भी भारी एवं

में रखकर लोह उद्योगों के स्थान का निर्धारण किया गया
विशेषता उनमें यह थी कि कभी २ आर्थिक कारणों को राजनै
के लिए नजर अन्दाज कर दिया गया। इसका अनुपम उदाहरण
क्रमशः लोहा और कोयला की खानों के अनमेल गठबन्धन से
स्थापित किया गया जिनमें 1300 मील की लम्बी दूरी तक भा
पड़ता था। फिर भी सामान्यतः उद्योगों की स्थापना में न्यूनत
मुख्य आधार माना।

(7) उद्योगों में मजदूरी नीति की समस्य

द्रुतगति से औद्योगीकरण के साथ २ यह समस्या भी
औद्योगिक उत्पादन तथा मौद्रिक मजदूरी में वृद्धि का क्या सम्बन्ध
का कितना भाग मजदूरों के जीवन-स्तर में वृद्धि तथा कितना
में लगे ? जहां 1922-24 की अवधि में उत्पादन में तो केवल 4
वृद्धि हुई जबकि औद्योगिक क्षेत्र में मौद्रिक मजदूरी में दुगुनी वृ
उत्पादकता अभी भी युद्ध पूर्व स्तर से कम थी। वेसेन्खा के अनु
जहां पहले एक पुड सूती सामान उत्पादन करने में 2·14 मानव-
3·2 मानव-दिन लगते थे। इससे औद्योगिक लागतों में वृद्धि से
बढ़ गई थी। वेसेन्खा ने इस समस्या के अध्ययन के लिए एक
किया था। अन्ततः प्रश्न यही महत्वपूर्ण था कि श्रम की उत्पा
जाय तथा मौद्रिक आय और उत्पादकता में एक उपयुक्त सन्तु
जाय।

(8) बेरोजगारी की समस्या

1925 के आगे वाले वर्षों में बेरोजगारी की समस्या
धारण कर रही थी यहां तक कि बेरोजगारों की संख्या 20 ल
थी। कुछ सीमा तक यह समस्या नव-आगुन्तकों तथा कुछ सी
मौसमी बेरोजगारों के कारण थी। यद्यपि 1926 तक लगभग
उद्योगों में रोजगार दिया गया था, फिर भी पंजीकृत बेकारों
1 लाख थी 1926 तक 10 लाख हो गई थी। श्रम विभाग के
21 प्रतिशत कुशल, 51 प्रतिशत अकुशल तथा 18 प्रतिशत बौ
बेकारों में 14 प्रतिशत व्यक्ति 18 साल से कम उम्र के थे।
की जटिल समस्या के समाधान के लिए 25 अक्टूबर 1927
मशीनों से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करने तथा औद्यो
करने के लिए 7 घन्टे का कार्य-दिन (7 Hour Working I

और बहु-शिफ्ट (Multiple-shift) लागू किया गया। इसमें भी बाद में कभी कच्चे माल तथा कार्यशील पूंजी का अभाव तथा कभी २ कुशल तथा तकनीकी निरीक्षण श्रमिकों की कमी का मुकाबला करना पड़ता था। अन्ततः प्रथम योजना के दो वर्षों में ही तीव्र औद्योगिक विकास से बेरोजगारी की समस्या का समापन कर दिया गया।

(9) अन्य

इसके अलावा रूस में प्रारम्भ में कुशल तथा तकनीकी श्रम की कमी की समस्या रही। उसको दूर करने के लिए उचित प्रशिक्षण व्यवस्था करनी पड़ी, कार्य के घन्टों में वृद्धि तथा आराम में कमी करके पूरा करने की चेष्टा की गई।

रूस में पूंजीवादी तत्वों के उन्मूलन से औद्योगीकरण का मार्ग अपनाये जाने से पूंजीवादी तत्वों ने औद्योगीकरण को असफल सिद्ध करने में पूरा प्रयत्न किया। कुलक वर्ग ने भी कच्चे माल के संग्रह से तथा अनाज की वसूली में कठिनाइयां उत्पन्न की। इससे विदेशी भुगतान सन्तुलन पर भी प्रभाव पड़ा। पर 1928 तक तो कुलकवर्ग का हमेशा के लिए समापन कर दिया गया।

विदेशी पूंजी के अभाव में औद्योगीकरण के प्रारम्भिक वर्षों में आवश्यक मशीनों, तथा पूंजीगत माल में कठिनाई रही। सरकार ने यौद्धिक साम्यवाद के अन्तर्गत ही विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर लिया था इससे भुगतान सन्तुलन में कुछ बचत संभव हो सकी और औद्योगीकरण के लिए आवश्यक विदेशी भुगतान संभव हो सके। नवीन आर्थिक नीति (NEP) से भी विदेशी पूंजी का आयात संभव हुआ पर बाद में इसकी कटु आलोचना होने लगी थी।

कुछ सीमा तक उद्योगों के प्रबन्ध की भी समस्या रही क्योंकि उद्योगों में प्रबन्धकों पर कठोर नियन्त्रण थे जबकि सीमित स्वतन्त्रता थी। इससे प्रोत्साहन तो कम था पर भय अधिक था। इसका औद्योगीकरण पर बुरा प्रभाव पड़ा।

निष्कर्ष

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि रूस में औद्योगीकरण का जो स्वरूप हमारे सामने है उसके निर्माण में अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ा है। एक पिछड़े कृषि प्रधान देश में जहां पूंजी निर्माण का अभाव हो, कुशल तथा तकनीकी श्रम की न्यूनता हो, उद्योगों का विकास बहुत ही कम हो पाया हो तो उस देश में आधार भूत तथा भारी उद्योगों का विकास करना और वह भी बिना विदेशी सहायता के कोरी कल्पना लगता है। पर सोवियत नेताओं ने देश के औद्योगीकरण में जिस दूरदर्शिता, विवेक और परिश्रम का परिचय दिया, वह वास्तव में विकासशील राष्ट्रों के लिए अनुकरणीय है। सोवियत जनता ने भी भारी त्याग

आधार भूत उद्योगों के विकास के लिए जो त्याग किया, वह इतिहास में अद्वितीय है। साधनों को गतिशील बनाने, आन्तरिक साधनों को जुटाने में उपभोग की कमी, भुगतान सन्तुलन में पूंजीगत वस्तुओं के आयात के लिए अनाज तथा कच्चे माल का निर्यात आदि से उपभोग स्तर में काफी कमी हुई। भारी उद्योगों के विकास के लिए उपयोग उद्योगों की अवहेलना की गई। ये सब सोवियत जनता के त्याग और नेताओं की सूझ-बूझ का ही परिणाम था कि आज सोवियत रूस, अमेरिका के बाद विश्व का सबसे प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र है। 1981 तक रूस, अमेरिका से भी आगे बढ़ने को कृत-संकल्प है।

अध्याय **6**

रूस के नियोजन तथा आर्थिक विकास की आधुनिक प्रवृत्तियां

(Recent Trends in Planning and Economic Development of U.S.S.R)

श्री लेनिन की मृत्यु के बाद श्री स्टालिन के तानाशाही नेतृत्व में सोवियत रूस ने आर्थिक क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति की और विश्व मे आर्थिक नियोजन के महत्व को स्पष्ट कर दिया। 4 मार्च, 1953 को श्री स्टालिन की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पूर्व ही कुछ प्रतिक्रियावादी तत्व सजग हो रहे थे पर वे उसकी मृत्यु के बाद ही प्रत्यक्ष रूप में सामने आये।

नियोजन में आधुनिक प्रवृत्तियां

श्री स्टालिन की मृत्यु के बाद नियोजन (Planning) के क्षेत्र में निम्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर हुई हैं:—

(1) **मन्त्रालयों का एकीकरण**—एक ही वर्ग के अनेक मन्त्रालयों को मिला कर वडे मन्त्रालयों में परिवर्तन किया गया। जैसे जहाज निर्माण मन्त्रालय, परिवहन मशीन निर्माण मन्त्रालय, भारी मशीन निर्माण मन्त्रालय एवं भवन तथा सड़क मन्त्रालय को मिला कर एक मन्त्रालय "परिवहन एवं भारी मशीन निर्माण मन्त्रालय" स्थापित कर दिया। इसी प्रकार अन्य उद्योगों के क्षेत्रों में भी एकीकरण कर मन्त्रालयों की संख्या कम की गई। इस एकीकरण में दायित्वों को पूरा करने में कठिनाई देख, फिर मन्त्रालयों की संख्या बढ़ाई गई। अब समन्वय एवं कठिनाइयों के निराकरण में कठिनाई महसूस होने लगी। अतः परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हुई।

(2) **आर्थिक परिषदों की स्थापना**—श्री निकिता ख्रुश्चेव ने सोवियत रूस में आर्थिक विकेन्द्रीकरण के युग का सूत्रपात किया। समस्त रूस को 104 आर्थिक प्रशासनिक इकाइयों में बाँटा गया और प्रत्येक इकाई के लिए एक आर्थिक परिषद्

(Economic Council or SOVNARKHOZY) की स्थापना की गई । 1960 के कानून के अन्तर्गत गण-राज्यों में आर्थिक परिषदों की स्थापना हो गई और ऐसे गण-राज्यों जिनके अधीन अनेक आर्थिक क्षेत्र सम्मिलित थे—समन्वय के लिए व्यवस्था की गई । यह एक सराहनीय प्रयास था जिससे गण-राज्यों को अपनी स्थानीय समस्याओं को सुलझाने, साधनों के विकसित करने में जन-सहयोग का सुअवसर मिला ।

(3) **आर्थिक परिषदों की समाप्ति तथा केन्द्रीय आर्थिक मन्त्रालयों की पुनः स्थापना**—साम्यवादी शासन में नाटकीय परिवर्तन का अनुपम उदाहरण 1964 में सामने आया । जब श्री निकिता ख्रुश्चेव के सत्ता से पदच्युत होने पर नये पदासीन प्रधान मन्त्री श्री कोसीजन ने एक वर्ष बाद ही आर्थिक प्रशासन के ढाँचे में पुनः परिवर्तन कर दिया । कुछ समय के लिये आर्थिक प्रशासन के अधिकार गोसप्लान (Gosplan) को सौंप दिये और क्षेत्रीय आर्थिक परिषदों का विघटन कर दिया । धीरे-धीरे आर्थिक प्रशासन का केन्द्रीकरण केन्द्रीय आर्थिक मन्त्रालयों में होने लगा । गण-राज्यों की आर्थिक परिषदों को जो अधिकार दिये गये थे वे पुनः केन्द्रीय आर्थिक मन्त्रालयों को सौंप दिये गये ।

(4) **उपक्रमों के स्थानीय प्रबन्ध एवं उत्पादन में विकेन्द्रीकरण**—श्री कोसीजन केन्द्रित नौकरशाही के दुष्परिणामों से जागरुक हैं । अतः उन्होंने उद्योगों के प्रबन्ध में केन्द्रीकरण की पुनर्स्थापना के साथ-साथ औद्योगिक उपक्रमों में प्रबन्ध कुशलता और तत्काल निर्णय (Quick decision) की क्षमता बढ़ाने के लिए उपक्रमों के स्थानीय प्रबन्ध एवं उत्पादन ने विकेन्द्रीकरण की नीति का अनुसरण किया । जहां एक ओर उत्पादन की प्रक्रिया में तकनीकी सुधार करने, कच्चे माल की प्राप्ति, वेतनमानों का निर्धारण तथा उत्पादन की किस्म का निर्धारण करने की स्थानीय प्रबन्धकों को पहले से अधिक स्वतन्त्रता दी गई है । उपक्रम की सफलता का आधार लाभ और उत्पादित वस्तु की बढ़िया किस्म है । इस नीति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि उत्तरदायित्व-हीनता का समापन होकर उपक्रम के लाभपूर्ण संचालन को बढ़ावा मिला है सार्वजनिक उपक्रम विनियोग के लिये आवश्यक साधन जुटाने में सक्षम हुए हैं ।

(5) **योजनाओं का मध्यावधि परित्याग एवं दीर्घकालीन योजना**-श्री स्टालिन की मृत्यु के बाद जब देश में छठी पंचवर्षीय योजना बनाई गई तो उसके तीन वर्ष बाद ही उसका परित्याग कर 1959 से नई सातवी सप्तवर्षीय योजना प्रारम्भ की गई । यह सात साल की थी । इसके चलते रहते ही 1961 से 1981 की एक दीर्घकालीन योजना भी बनाई गई । यह नियोजन की दशा में एक महत्वपूर्ण आधुनिक प्रवृत्ति है ।

(6) **योजना आयोग के स्वरूप एवं ढांचे में परिवर्तन**—स्टालिन की मृत्यु के बाद गोसप्लान (Gosplan) को पुनर्संगठित किया गया है । उसे पुनः वे अधिकार सौंपे हैं जो उसे 1948 से पहले प्राप्त थे । केवल सांख्यिकी विभाग मन्त्री परिषद् का अंग बना रहा । आर्थिक आयोजन में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का प्रवेश हुआ । आर्थिक कार्य-क्रमों का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सत्ता के स्थान पर गण-राज्यों (Republics) पर डाला गया । योजना आयोग को दो विभागों में विभाजित किया गया:—

(1) गोसप्लान

(2) गोसेकोनोम कोशिमा

दीर्घकालीन योजना बनाने का भार गोसप्लान पर है जबकि चालू योजनाएं बनाने का काम राजकीय आर्थिक आयोग पर है । तकनीकी विभाग भी एक अलग सस्था के रूप में कार्य करने लगा है । रूस में वर्तमान आर्थिक नियोजन संगठन इस प्रकार है:—

गोसप्लान राज्यों की योजनाओं को एकीकृत कर व आवश्यक संशोधनों से पूरे देश की योजना का निर्माण करता है।

आर्थिक विकास की मुख्य प्रवृत्तियां

श्री स्टालिन की मृत्यु के बाद आर्थिक विकास के क्षेत्र में कृषि उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि करने के लिये तथा राष्ट्रीय आर्थिक उत्पादन में द्रुत गति से विकास करने के लिए दीर्घकालीन योजनाओं का निर्माण किया जाने लगा है। विनियोग के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। लोगों के जीवन-स्तर में वृद्धि करने के लिए उपभोग उद्योगों को विकसित करने की प्रवृत्तियां प्रबल हुई हैं। अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विकास की प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

(1) **कृषि क्षेत्र**—श्री स्टालिन के तुरन्त बाद मेलेन्कोव ने सामूहिक खेतों की उत्पत्ति को प्रोत्साहन देने हेतु अनिवार्य वसूली का मूल्य ऊंचा निर्धारित किया। कृषि उत्पादन में असन्तोषजनक प्रगति देख कर कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिये बंजर तथा कठोर भूमि को खेती करने योग्य बनाने के प्रयत्न किये गये। परिणामस्वरूप 5 करोड़ हेक्टर नई भूमि पर खेती करना सम्भव हो सका। अब भी ये प्रयत्न जारी हैं। सामूहिक खेतों के एकीकरण की तेजी से प्रगति हुई है। जहां 1949 में सामूहिक खेतों की संख्या ढाई लाख थी वह 1959 तक 53346 हजार ही रह गई। सामूहिक खेतों में यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए (M.T.S.) मशीन-ट्रैक्टर-स्टेशन को समाप्त कर दिया, तथा उसकी मशीनरी सामूहिक फार्मों को बेच दी गई। कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि हो रही है। जहां 1956–60 की अवधि में कृषि उत्पादन का औसत वार्षिक मूल्य 46 7 अरब रूबल था, वह अब बढ़ कर 70 अरब रूबल होने का अनुमान है। खाद्यान्न का उत्पादन भी पहले 12 करोड़ टन था, अब 17 करोड़ टन तक पहुँच गया हैं। अन्य औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन में भी तेजी से वृद्धि हुई है। कृषि में यन्त्रीकरण तेजी से बढ़ता जा रहा है। 1967 में कृषि-क्षेत्र में 16·6 लाख ट्रैक्टर, 5·31 लाख ग्रेन कम्बाइन तथा 10 लाख लारियों के अलावा कई आधुनिक यन्त्र थे।

(2) **औद्योगिक क्षेत्र**—श्री स्टालिन की मृत्यु के बाद औद्योगिक क्षेत्र में भी तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है। श्री स्टालिन काल में उपभोग उद्योगों की अवहेलना कर उत्पादन उद्योगों का विस्तार कर जनता के जीवन को कष्टमय बनाया गया था। 1929 से 1952 की अवधि मे जहां भारी उद्योगों से 683 बिलियन रूबल का विनियोग किया गया वहां कृषि विकास पर 94 बिलियन तथा उपभोग उद्योगों पर 72 बिलियन रूबल ही विनियोग किया गया था। 1956 में ख्रुश्चेव ने 20वीं पार्टी कांग्रेस में कहा था—

"Now that we possess a powerful heavy industry developed in every respect, we are in a position to promote rapidly the production of both the means of production and consumer goods."

अतः 1956–60 की योजना में भारी उद्योगों को प्राथमिकता देने के बावजूद उपभोग उद्योगों तथा भारी उद्योगों के बीच की खाई को कम किया गया। 1959–65 की सप्तम सप्तवर्षीय योजना में इस उद्देश्य को परिलक्षित किया गया। योजना काल में औद्योगिक उत्पादन में 80 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य था उसमें से 85 से 88 प्रतिशत वृद्धि पूंजी निर्माण क्षेत्र तथा 62 से 65 प्रतिशत वृद्धि उपभोग उद्योग में वृद्धि करने का लक्ष्य था।

उद्योगों में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को समाप्त किया गया तथा ख्रुश्चेव काल में विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन दिया गया, पर फिर 1964 में कोसीजन ने प्रशासन में केन्द्रीकरण पर उपक्रमों के स्थानीय प्रबन्ध तथा उत्पादन में विकेन्द्रित व्यवस्था की नीति अपनाई। पिछले कुछ वर्षों में रूस के औद्योगिक उत्पादन में तेजी से परिवर्तन हुआ है। अब विद्युत उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि का उद्देश्य हुआ है। रूस की बीस वर्षीय योजना में उद्योगों के विकास की प्रवृत्ति की झलक मिलती है—

औद्योगिक उत्पादन लक्ष्य

(1955 के मूल्य स्तर पर)

उद्योग	इकाई	1960	1970	1980
कुल औद्योगिक उत्पादन	मूल्य मिलियर्ड रूबल	155	408	970 से 1000
पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन	,,	105	287	720 से 740
उपभोग उद्योगों का उत्पादन	,,	50	121	250 से 260
विद्युत शक्ति	मिलियर्ड कि. वा.	292·3	900 से 1000	2700 से 3000

(3) **श्रमिकों के कल्याण कार्य**—मानव विश्व की सबसे बड़ी उत्पादक शक्ति है। उसके स्वयं का विकास सब साधनों के विकास से अधिक महत्वपूर्ण है। अतः अब उनके कल्याण कार्यों में वृद्धि की गई है। उनके काम के घन्टे निरन्तर कम किये जा रहे हैं। उन्हें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी मिली है। 1970 तक काम के घन्टे प्रति सप्ताह 35 कर दिये जायेंगे तथा 1980 तक इन्हें घटा कर 30 प्रति सप्ताह करने

महत्वपूर्ण प्रश्न

भाग 1—इंगलैण्ड (U. K.)

1. इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति की मुख्य विशेषतायें क्या थीं और इसका क्या प्रभाव पड़ा ?
2. इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम क्यों हुई इससे वहां की जनता के आर्थिक स्तर में क्या सुधार हुआ ?
3. 19वीं शताब्दी में इंगलैंड के औद्योगिक तथा व्यापारिक सर्वोच्चता के क्या कारण थे और 19वीं शताब्दी के बाद में क्यों गिरावट आई ?
4. "इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक लाभ सामाजिक समस्या से कम हो गये" इस कथन की विवेचना कीजिए।
5. इंगलैंड में 13वीं शताब्दी में तीव्र औद्योगिक परिवर्तन के क्या कारण थे ?
6. इंगलैंड के उपनिवेशीय विस्तार की मुख्य विशेषतायें क्या थी और इनका उसकी अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा ?
7. इंगलैंड में 1930 की आर्थिक मंदी में स्थिरिकरण के क्या २ प्रयास किये गये। उनकी आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।
8. इंगलैंड के पूर्ण रोजगार के लिए आर्थिक नियोजन पर एक विवेचनात्मक लेख लिखिये।
9. श्रम सरकार द्वारा रोजगार के लिए किए आर्थिक नियोजन की समीक्षा कीजिये।

भाग 2—अमेरिका (U.S.A.)

1. पश्चिमोन्मुख विस्तार से आप क्या समझते हैं ? इसके क्या कारण थे ?
2. पश्चिमोन्मुख विस्तार के राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रभावों का उल्लेख कीजिए। यह किस प्रकार बेकारी के लिए बीमा सिद्ध हुआ ?
3. अमेरिका में रेल, सड़क यातायात का विकास किस प्रकार आर्थिक विकास में सहायक हुआ ? सविस्तार वर्णन कीजिए।
4. "अमेरिका में खनिज और तेल साधनों के विकास में अमेरिकी अर्थव्यवस्था की काया पलट करदी", विवेचना कीजिए।

5. "अमेरिका में रेल यातायात का विकास वहां के आर्थिक विकास का इतिहास है", इस कथन की पुष्टि कीजिये ।
6. अमेरिका में आर्थिक मन्दी के क्या कारण थे और इसकी भीषणता से बचने के लिए किए गये प्रयत्नों का मूल्यांकन कीजिये ।
7. राष्ट्रपति रूजवेल्ट के नवीन कार्यक्रम (New Deal) की मुख्य विशेषतायें क्या थी ? यह कहां तक अमेरिकी अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान में प्रभावी सिद्ध हुआ ?
8. "अमेरिकी अर्थव्यवस्था को द्वितीय युद्ध ने पुनः शक्ति प्रदान की न कि नये कार्यक्रम (New Deal) ने." आप इस कथन से कहां तक सहमत है ?
9. "नये कार्यक्रम (New Deal) में पूंजीवाद से विचलन नहीं पर निर्बाध नीति का परित्याग था", इस कथन की विवेचना कीजिए ।
10. राष्ट्रपति रूजवेल्ट अमरीकी अर्थव्यवस्था की मूलभूत कमियों को समाप्त करने में असफल रहा, वह केवल इन दोषों का प्रारम्भिक उपचार ही कर सका" इस कथन के सन्दर्भ में नए कार्यक्रम (न्यू डील) की समीक्षा कीजिए ।
11. न्यू डील के अन्तर्गत कृषि तथा उद्योगों के पुनर्विकास के लिए अपनाई गई नीति का विवेचनात्मक विवरण दीजिए ।
12. अमेरिका के श्रमिक संघ आन्दोलन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए तथा उसके विकास की बाधाओं का उल्लेख कीजिए ।
13. "श्रमिक संघ औद्योगिक क्रान्ति की संतान है" इस सन्दर्भ मे अमेरिका के श्रमिक संघों के विकास का विवरण दीजिए ।
14. अमरीकी कृषि में अतिरेक की समस्या का उल्लेख कीजिए और यह बताइए कि इसके समाधान के लिए क्या २ प्रयत्न किए गये हैं ?
15. अमरीकी सरकार द्वारा कृषि में आय स्थिरीकरण तथा कृषि सहायता कार्यक्रमों से किस प्रकार कृषि समस्याओं का सामना करने में सफल हुई है ?
16. अमेरिका में पूर्ण रोजगार के लिए नियोजन की विवेचना कीजिये ।

भाग 3—जापान (Japan)

1. मेजी पुनर्स्थापन के कारण अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों की विवेचना कीजिए ।
2. "मेजी पुनर्स्थापन ने सदियों से एकत्र शक्ति के प्रभाव को खोल दिया" इस कथन के परिवेश में मेजी पुनर्स्थापन काल में अर्थव्यवस्था के विकास की समीक्षा कीजिये ।

3. जापान में कृषि विकास के क्रमिक विकास का आलोचनात्मक विवरण दीजिये।
4. 'जापान के कृषि विकास ने वहाँ के औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त किया," इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. जापान में भूमि सुधार कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए।
6. जापान में मेजी पुनर्स्थापन काल में औद्योगिक विकास का विवेचनात्मक विवरण दीजिए।
7. युद्धोत्तर काल में जापान में औद्योगिक विकास का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
8. जापान सरकार की औद्योगिकरण की नीति का मूल्यांकन कीजिए और बताइए कि हम उस से क्या सीख सकते हैं ?
9. जापान के प्रमुख उद्योग कौन कौन से हैं और उनकी वर्तमान स्थिति क्या है ?
10. जापान में लौह इस्पात या सूती वस्त्र उद्योग के क्रमिक विकास का वर्णन कीजिए तथा उसकी समस्याओं के समाधान के प्रयत्नों की समीक्षा कीजिए।
11. जापान की औद्योगिक संरचना में लघु उद्योगों की भूमिका को समझाइये। इस दिशा में हमारे को क्या शिक्षा मिलती है ?
12. 'जापान में लघु उद्योग वृहत उद्योगों के सहायक तथा पूरक है—प्रतिस्पर्द्धी नहीं', इस कथन की पुष्टि कीजिए।
13. जापान में लघु उद्योगों ने बड़े उद्योगों को विकसित होने का मार्ग प्रशस्त किया" इस सन्दर्भ में लघु उद्योगों की भूमिका बताइए।
14. जापान में विदेशी व्यापार की क्या विशेषतायें रही हैं ? विदेशी व्यापार किस प्रकार अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक हुआ ?
15. "जापान का विदेशी व्यापार कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन का प्रतिविम्ब है", विवेचना कीजिए।
16. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद में जापान के विदेशी व्यापार की प्रकृति तथा दिशा में हुए परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।
17. 'जापान का आर्थिक अस्तित्व उसके विदेशी व्यापार पर निर्भर है", आप इस कथन से कहां तक सहमत हैं ?
18. युद्धोत्तर काल में जापान के द्रुतगति से आर्थिक विकास के क्या कारण है और विकास की क्या प्रवृत्ति रही है ?
19. जापान के आर्थिक विकास में वहां की सरकार की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

5. "अमेरिका में रेल यातायात का विकास वहां के आर्थिक विकास का इतिहास है", इस कथन की पुष्टि कीजिये ।
6. अमेरिका में आर्थिक मन्दी के क्या कारण थे और इसकी भीषणता से बचने के लिए किए गये प्रयत्नों का मूल्यांकन कीजिये ।
7. राष्ट्रपति रूजवेल्ट के नवीन कार्यक्रम (New Deal) की मुख्य विशेषतायें क्या थीं ? यह कहां तक अमेरिकी अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान में प्रभावी सिद्ध हुआ ?
8. "अमेरिकी अर्थव्यवस्था को द्वितीय युद्ध ने पुनः शक्ति प्रदान की न कि नये कार्यक्रम (New Deal) ने," आप इस कथन से कहां तक सहमत है ?
9. "नये कार्यक्रम (New Deal) में पूंजीवाद से विचलन नहीं पर निर्बाध नीति का परित्याग था", इस कथन की विवेचना कीजिए ।
10. राष्ट्रपति रूजवेल्ट अमरीकी अर्थव्यवस्था की मूलभूत कमियों को समाप्त करने में असफल रहा, वह केवल इन दोषों का प्रारम्भिक उपचार ही कर सका" इस कथन के सन्दर्भ में नए कार्यक्रम (न्यू डील) की समीक्षा कीजिए ।
11. न्यू डील के अन्तर्गत कृषि तथा उद्योगों के पुनर्विकास के लिए अपनाई गई नीति का विवेचनात्मक विवरण दीजिए ।
12. अमेरिका के श्रमिक संघ आन्दोलन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए तथा उसके विकास की बाधाओं का उल्लेख कीजिए ।
13. "श्रमिक संघ औद्योगिक क्रान्ति की संतान है" इस सन्दर्भ में अमेरिका के श्रमिक संघों के विकास का विवरण दीजिए ।
14. अमरीकी कृषि में अतिरेक की समस्या का उल्लेख कीजिए और यह बताइए कि इसके समाधान के लिए क्या २ प्रयत्न किए गये हैं ?
15. अमरीकी सरकार द्वारा कृषि में आय स्थिरीकरण तथा कृषि सहायता कार्यक्रमों से किस प्रकार कृषि समस्याओं का सामना करने में सफल हुई है ?
16. अमेरिका में पूर्ण रोजगार के लिए नियोजन की विवेचना कीजिये ।

भाग 3—जापान (Japan)

1. मेजी पुनर्स्थापन के कारण अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों की विवेचना कीजिए ।
2. "मेजी पुनर्स्थापन ने सदियों से एकत्र शक्ति के प्रभाव को खोल दिया" इस कथन के परिवेश में मेजी पुनर्स्थापन काल में अर्थव्यवस्था के विकास की समीक्षा कीजिये ।

3. जापान में कृषि विकास के क्रमिक विकास का आलोचनात्मक विवरण दीजिये।
4. "जापान के कृषि विकास ने वहाँ के औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त किया," इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. जापान में भूमि सुधार कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए।
6. जापान में मेजी पुनर्स्थापन काल में औद्योगिक विकास का विवचनात्मक विवरण दीजिए।
7. युद्धोत्तर काल में जापान में औद्योगिक विकास का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
8. जापान सरकार की औद्योगिकरण की नीति का मूल्यांकन कीजिए और बताइए कि हम उस से क्या सीख सकते हैं ?
9. जापान के प्रमुख उद्योग कौन कौन से हैं और उनकी वर्तमान स्थिति क्या है ?
10. जापान में लौह इस्पात या सूती वस्त्र उद्योग के क्रमिक विकास का वर्णन कीजिए तथा उसकी समस्याओं के समाधान के प्रयत्नों की समीक्षा कीजिए।
11. जापान की औद्योगिक संरचना में लघु उद्योगों की भूमिका को समझाइये। इस दिशा में हमारे को क्या शिक्षा मिलती है ?
12. 'जापान में लघु उद्योग वृहत उद्योगों के सहायक तथा पूरक है—प्रतिस्पर्द्धा नहीं', इस कथन की पुष्टि कीजिए।
13. जापान में लघु उद्योगों ने बडे उद्योगों को विकसित होने का मार्ग प्रशस्त किया" इस सन्दर्भ में लघु उद्योगों की भूमिका बताइए।
14. जापान में विदेशी व्यापार की क्या विशेषतायें रही हैं ? विदेशी व्यापार किस प्रकार अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक हुआ ?
15. "जापान का विदेशी व्यापार कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन का प्रतिविम्ब है", विवेचना कीजिए।
16. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद में जापान के विदेशी व्यापार की प्रकृति तथा दिशा में हुए परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।
17. 'जापान का आर्थिक अस्तित्व उसके विदेशी व्यापार पर निर्भर है", आप इस कथन से कहां तक सहमत हैं ?
18. युद्धोत्तर काल में जापान के द्रुतगति से आर्थिक विकास के क्या कारण हैं और विकास की क्या प्रवृत्ति रही है ?
19. जापान के आर्थिक विकास में वहां की सरकार की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

20. "जापान की सरकार ने अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सदा से प्रभावी नीतियों का अनुसरण किया है' इस कथन की पुष्टि में सरकार की भूमिका का उल्लेख कीजिये ।

भाग 4—रूस (U.S.S.R.)

1. रूस की अर्थव्यवस्था में नवीन आर्थिक नीति (N.E.P.) की मुख्य विशेषतायें बताते हुए यह स्पष्ट कीजिये कि क्या यह एक संक्रमणकालीन मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की नीति थी ?
2. लेनिन के अनुसार नवीन आर्थिक नीति दो कदम आगे बढ़ने के लिये एक कदम पीछे हटने की नीति थी', इस कथन की विवेचना कीजिए ।
3 "नवीन आर्थिक नीति साम्यवाद की करारी हार थी" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? अपने पक्ष को कारण देकर समझाइये ।
4. 'नवीन आर्थिक नीति सामान्यरूप के समाजवाद और पूंजीवाद का एक अजीब मिश्रण था', समझाइये ।
5. नवीन आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए तथा इसकी सफलता की समीक्षा कीजिये ।
6. कैंची संकट के कारणों तथा प्रभावों का उल्लेख कीजिये । इस समस्या का कैसे मुकाबला किया गया ?
7. कैंची संकट क्या था और इस संकट का निराकरण करने के लिए सरकार ने क्या किया ?
8. रूस में प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्ण अर्थव्यवस्था की क्या स्थिति थी ?
9. सामूहिक कृषि से आप क्या समझते हैं । रूस में सामूहिकरण की समस्याओं के समाधान के लिए सरकार के प्रयत्नों का उल्लेख कीजिए ।
10. 'रूस में कृषि विकास का श्रेय सामूहिक कृषि को जाता है', इस कथन की विवेचना कीजिए ।
11. 1954 के बाद रूस की कृषि में क्या २ तीव्रगामी सुधार हुए हैं ? ये सुधार कहां तक उपयुक्त हैं ?
12. रूस में 1954 के बाद कृषि विकास का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए ।
13. रूस में तीव्र औद्योगिक विकास की समस्याओं का उल्लेख कीजिए । इन समस्याओं को कैसे दूर किया गया और हम उनसे क्या शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं ?

14. रूस के औद्योगीकरण में प्रारम्भिक बाधाओं का सामना कैसे किया गया ? आज इस क्षेत्र में क्या किया जा रहा है ?
15. रूस में नियोजन तथा आर्थिक विकास की आधुनिक प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिये । ये कहां तक मानव कल्याण की वृद्धि कर सकेंगी ।

विशेष अध्ययन सूची

(Bibliography)

भाग 1—इंगलैंड (U. K.)

1. Southgate—English Economic History.
2. L. C. A. Knowels—Industrial & Commercial Revolution in Great Britain during 19th Century.
3. L.C.A. Knowels—Econ. Dev. in 19th Century.
4. A Brine—An Economic History at the British Isles.
5. Hand Book—Britain—1968 and 1969.
6. Beales H. L.—The Industrial Revolution 1750—1850.
7. Blodgett & Kemmerer—Comparative Econ. Development.
8. Court W. H. B.—A Concise History of Britain.
9. Gibbons—Industrial History of British.
10. P. E. P.—British Economy Since the War.
11. Youngson A. J.—The British Economy 1920-1957
12. Waters—English History of England.
13. Toyanbee A.—Lecturers on Industrial Revolution.
14. Lewis Ben—British Planning & Nationalisation.
15. Lipson E.—Economic History of England (3 volumes)
16. Meredith H. O.—Economic History of England.
17. Walker, Gilbert—Economic Planning by Programme & Control in Great Britain.

भाग 2—संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.)

1. Kirkland E. C—History of American Economic Life.
2. Shanan F. A.—America's Economic Growth
3. Haris L.—The American Economy.
4. Graft, John Railey—Economic Development of U.S.A.
5. Blake—A Short History of American Life.
6. Bogart E. L.—Economic History of the United States.
7. Colm Gerhard—The Economy of American People 1958.
8. Faulkner H. W.—American Economic History.
9. Decline of Laissez Faire.
10. Economic History of U.S.A.

11. Freeman Ralph Erans—Post War Econmic Trends in United States.
12. Galbraith J. K.—The Affulent Society.
13. The Great Crash 1929.
14. American Capitalism
15. Kross, Herman Edward—American Economic Development.
16. Kemmerer & Jones—American Economic History.
17. Wright—Economic History of United States.
18 Williamson H. F.—The Growth of American Economy.

भाग 3—जापान (JAPAN)

1. J. E. Cohen—Japan's Post-War Economy.
2. Kino-Kanuja—Essays on Japanese Economy.
3. G. C. Allen—Japan's Economic Expansion.
4. J. B. Cohen—Economic Progress of Free Japan.
5. G. C. Allen—A Short Economic History of Modern Japan.
6. Govt. of Japan—Japan To-day.
7. G. D. Cowah—The Economic Dev. of China & Japan.
8. S. Tsuru—Essays on Japanese Economy.
9. Thomas C. Smith—Political Changes and Industrial Development in Japan.
10. W. W. Lockwood—Economic Development of Japan.
11. G. C. Allen—Japan's Economic Recovery.
12. Datt. Amlan—A Century of Economic Development of Russia and Japan.
13 Storry, Richard—A History of Modern Japan.
14. J. B. Cohen—Japan's Economy in War and Reconstruction.

भाग 4—रूस (U.S.S.R)

1. Shaffer—Soviet Economy.
2. A. Vacimich—Soviet Economic Institutions.
3. V. Kattoff—The Soviet Economy 1940-65.
4. Amisinov N.—Soviet Agriculture.
5. Blodgett & Kemmerer—Comperative Economic Development.
6. Schwartz Hanry—Russia's Soviet Economy.
7. Zhimerin D. G.—Economy of the Soviet Union Past and Present.

8. Dobb Maurice—Soviet Economic Development Since 1917.
9. Rothstein Andrew—A History of U.S.S.R.
10. Brutzkus B.—Economic Planning in Soviet Russia.
11. Baykov—The Development of Soviet Economic System.
12. Charques R. D.—A Short History of Russia.
13. Kuznets, Simons Smith—Economic Change.
14. Kulski W. W.—The Soviet Regime.
15. Kursky A—The Planning of the National Economy of the U. S. S. R.
16. Dallin David—The Changing World of Soviet Russia.
    „ The Real Soviet Russia.
17. Williaz Stantistan—The Economics of Soviet Block.
18. Watson Hugh Seton—From Lenin to Malenkor.